

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ संख्या	पृष्ठ संख्या
आमुख	३-५ संगीतलिपि चिह्न परिचय	६, ७
अनासदि क्रम से गीत सूची	६ सूक्ष्म स्वर-नामों की तालिका	७

प्रथम खण्ड

जाति	१-६१	शाङ्गदेव के परवर्ती ग्रन्थकार	६०-६१
'जाति' का अर्थ	१-२	उपसंहार	६१
मत्तनाल में 'राग'	२-४		
दशत्रिंश जातिलक्षण	४-१२	राग और राग वर्गीकरण	६१-१११
शुद्धा विकृता जातियाँ	१२-१६	नारद, भरत और 'राग'	६२-६३
संसर्गजा विकृता जातियाँ	१६-१६	भतय का राग वर्गीकरण	६४-६७
अष्टादश जाति लक्षण	१६-२३	शाङ्गदेव " "	६८
जातियों के स्वर-रूप	२४-५८	मध्ययुग की राग—	
शुद्धा जातियाँ (पञ्चमग्राम की)	२४-३२	वर्गीकरण व्यवस्था	
शुद्धा जातियाँ (मध्यमग्राम की)	३२-३७	राग-रागिणी-वर्गीकरण	६८-१०६
संसर्गजा विकृता जातियाँ	३८-५८	मेल पद्धति	१०७-१०८
जातिगत रसप्रकरण	५८-६८	षाट पद्धति	१०९-१११
जातिसाधारण	६८-७१	परिशिष्ट	
मतांग	७२-७६	भिन्न भिन्न प्रत्ययों की राग वर्गीकरण-तालिकाएँ	
शाङ्गदेव	७६-९०	'क' से 'ड' तक	११२-१२५

द्वितीय खण्ड

१- राग कोमल आसावरी	१-१४	ख्याल—'महारे डेरे' (विनयित एकताल)	२२-२३
शास्त्रीय विवरण	१-२	गीत 'साँची कहो तुम' (त्रिताल)	२४-२५
मुक्त भ्रालाप	३-५	(तालबद्ध) तानें	२६-३०
मुक्त तानें	६		
ख्याल—'एरो बीर' (विनयित एकताल)	७-९	३-राग गुर्जरी तोड़ी	३१-५२
गीत—'बढ़ैया सावो —(त्रिताल)	१०-११	शास्त्रीय विवरण	३१-३३
मुखड़े के प्रकार	११-१२	मुक्त भ्रालाप	३४-३६
(तालबद्ध) तानें	१२-१४	मुक्त तानें	४०-४१
२ राग देशी (देशी तोरी)	१५-३०	ख्याल—'मन्न मोरे राम' (त्रिषवाहा)	४२-४३
शास्त्रीय विवरण	१५-१६	गीत 'रंग जिन डारो' (त्रिताल)	४४-४५
मुक्त भ्रालाप	१७-२०	(तालबद्ध) तानें	४५-४६
मुक्त तानें	२१	ध्रुवपद—'तिरे मन मे' (सुलताल)	५०-५२

४—राग पूर्वी		५२-६७	७—राग चमत्
शास्त्रीय विवरण		५३-५६	शास्त्रीय विवरण
मुक्त आलाप		५५-५८	मुक्त आलाप
मुक्त तानें		५९	मुक्त तानें
दयाल—'नियरवा की बहि'		६०-६१	दयाल—'कृषी रो बघत' (निरवादा)
गीत—'घरो ए मैता' (त्रिताल)		६२-६३	गीत—'पगना रिब' (त्रिताल)
(तालबद्ध) तानें		६४-६७	(तालबद्ध) तानें
५—राग श्री		६८-९०	गीत—'एथी २ ग्थी २' (दुन एवताल)
शास्त्रीय विवरण		६८-७०	
मुक्त आलाप		७१-७६	८—राग परज
मुक्त तानें		७७	शास्त्रीय विवरण
दयाल—'गजरवा वाजा' (विलम्बित एवताल)		७८-७९	मुक्त आलाप
गीत—'एरो हूँ तो' (त्रिताल)		८०-८१	मुक्त तानें
(तालबद्ध) तानें		८२-८५	गीत—'बंसरी सू वचन' (त्रिताल)
ध्रुवद—'गीरा धरयाग' (मूलताल)		८६-८७	गीत—'मैं क्या गई जमुना' (११)
ध्रुवद—'प्रथम गार' (चौताल)		८८-९०	(तालबद्ध) तानें
६—राग पृथ्वीराज		९१-१०८	धमार—'ताल गुतात्'
शास्त्रीय विवरण		९१-९२	
मुक्त आलाप		९३-९४	९—राग ललित
मुक्त तानें		९६-९७	शास्त्रीय विवरण
दयाल—'डुला ला आना'		९८-९९	मुक्त आलाप
(विलम्बित आशाचीताल)		१००-१०१	मुक्त तानें
गीत—'डुह दे रे' (त्रिताल)		१०२-१०३	दयाल—'रैन वा सगना'
मुक्ते के प्रकार		१०४-१०६	(विलम्बित एवताल)
(तालबद्ध) तानें		१०७-१०८	गीत—'विद्यु विद्यु रटन' (त्रिताल)
तराना (त्रिताल)			(तालबद्ध) तानें
			धमार—'ताल हो बैचे'

आमुख

असार उलझने को सुलझते हुए, 'विघ्ने पुनः पुनरपि प्रतिह्वयमाना।' की उक्ति को पचाते हुए 'संगीताधिन' वा छठा भाग इष्टदेव श्रीराधेन्द्र के शृंगार-प्रसाद वा प्रकाश पा रहा है।

श्रद्धेय गुरुदेव पं० विष्णुदिगम्बर पतुन्दर के अमर आत्मा की असीम आशीष और महर्षि भरत की निमूठ प्रेरणा से यह ग्रन्थ प्रकृत होकर विघ्ने के सामने घनतरित हो रहा है। साथ ही जिनके घोर परिश्रम, धामसंयम और गुरुप्रेमा की भावना से इसका प्रकाशन संभव हो सारा है, वह मेरी नितान्त प्रिय छात्रा चि० डा० प्रेमलता शर्मा भी मेरे अन्य प्रकाशनों की भाँति इस प्रकारान के प्रेय को अप्रिकारिणी हैं। मुझ जैसे गुरु के कठोर विनयन (discipline) वा परिपालन, एक बार लिखे हुए को पुनः-पुनः संशोधित, परिवर्तित, परिवर्द्धित कराने की मेरी प्रवृत्ति में शिष्यजनोचित सहयोग—ये ब्रह्माधारण गुण मैंने इनमें पाए हैं। इतने दीर्घ काल के सहकार से अब मुझ में और उनमें इतना तादात्म्य-भाव स्थापित हो गया है कि विचार और वाणी में, भाव और भाषा में संपूर्ण अभिन्नता छा गई है। अतः मैं अब विद्यार्थियों के अपने-आपके अनुसन्धानकार्यों की विरासत उन्हें सौंप कर निरिचिन्त होता हूँ। मेरे जीवन के परचाव जो भी चार्ज शेष रहेगा उसे मैं शास्त्रीय सिद्धान्त-पक्ष को भविष्य बनाए रखते हुए, सफलतापूर्वक पूर्ण कर सकूँगी और मेरे जीवन-चार्ज को व्यापक तथा समृद्ध बना सकूँगी, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। अब भविष्य के प्रकाशन मेरे ही नाम से न होकर सुरम-नाम से होंगे, यह घोषित करते हुए मैं असार आत्म-का अन्तुभव कर रहा हूँ। यद्यपि इनको निष्काम गुरुभक्ति और सदैव सेवा भावना के कारण आशुतक कभी मेरी ओर से इस प्रकार के प्रस्ताव वा प्रसंग ही उपस्थित नहीं हुआ, तथापि अब मेरी हार्दिक इच्छा है कि मुझसे जो ज्ञान, विद्या और मेरे कार्यों में योगदान से जो योग्यता इन्होंने अर्जित की है, उसके लिए उचित भेद्य भी इन्हे मेरी ओर से आशीर्वाद स्वरूप प्राप्त हो। अतः आगामी प्रकाशन विषयक उपयुक्त घोषणा में अपने गुरुपद को पूर्णतः मान कर मैं असीम आत्म-गुण का अन्तुभव कर रहा हूँ।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत महाविद्यालय के पाठ्यक्रम के क्रमबद्ध प्रकाशन का यह छठा पुण्य है जिसमें श्री० मूड, (संगीतालकार) के पाठ्यक्रम की पूर्णता होती है।

इस ग्रन्थमाला के अन्य भागों की भाँति यह भाग भी दो खण्डों में विभक्त है—प्रथम खण्ड में राष्ट्रीय विवेचना और द्वितीय खण्ड में क्रियात्मक (Practical) पाठ्यक्रम के नौ रागों से सम्बन्धित विषय रखे गये हैं। द्वितीय खण्ड बहुत पहले मुद्रित हो चुका था और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राध्यापक तथा विद्यार्थी उससे लाभ भी उठाते रहे। विन्तु प्रथम खण्ड के पूर्ण होने में नाना विघ्न-बाधाओं के कारण इस ग्रन्थ का प्रकाशन दीर्घ काल तक टलता रहा। कुछ अनिवार्य कारणों में इसमें 'परिशिष्ट' वा समावेश नहीं किया जा सका है।

हमें यह कहते हुए नितान्त हर्ष होता है कि यह ग्रन्थमाला काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत महाविद्यालय के विद्यार्थियों की ज्ञानवृद्धि तथा क्रम-विकास का साधन बनने तक ही सीमित नहीं रही है, अपितु भिन्न २ परंपराओं के ब्रह्माधार, विभिन्न सत्प्राप्तों के अभ्यासक तथा विद्यार्थी एवं सामान्य संगीतलुसगी भी इससे विजुल माना में लाभ उठा रहे हैं। इतना ही नहीं, अन्य पदावलम्बियों ने भी इन मन्त्रों द्वारा प्रसारित सत्य के आलोक के सामने अपने पक्ष के आग्रह को त्याग कर इतना स्वागत किया है। इनकी उपयोगिता की इस स्वीकृति के लिए हम सभी के आभारी हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ के शास्त्रीय एण्ड में मुख्य प्रतिपाद्य विषय 'जाति' तथा राग-वर्गीकरण है। स्वर, धुनि, म्र, ऋषिया ने इन विषयों का जा प्रतिपादन किया था, वह यात्रक्रम से नितान्त कुछ ही हो गया था, और उनकी जलितता के कारण उसे प्राथमिक लक्ष्य से अतीत मान लिया गया था। निरु उन्हा भरतादि ऋषिया की श्रुता और प्रणय में उन सब विषयों को स्पष्ट और सुलभे हुए ढंग से इस ग्रन्थमाला में प्रस्तुत करने प्राथमिक लक्ष्य का प्राचीन परम्परा का साथ धरूँ सबन्ध स्थापित किया जा सक्ता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में विशिष्ट 'स्वर-सन्निवेश' के रूप में 'जाति' और 'रा' का परस्पर सम्बन्ध, 'जाति' का स्वर, राग और राग वर्गीकरण का ऐतिहासिक विवरण तथा भिन्न २ राग वर्गीकरण प्रणय का तुलनात्मक अध्ययन—ये विषय लिखे गये हैं। पश्चिम भाग में 'संगीत व शास्त्र ग्रन्थों का ग्रन्थ परिचय' शीर्षक व अन्त में जा सामग्री प्रस्तुत की गई थी, उस में प्राथमिक युग के ग्रन्थों का विवरण नहीं था और प्रस्तुत भाग में वह विवरण देने की योजना थी। किन्तु अनिवार्य कारणों से उसका समावेश आगामी भाग में प्रकाशन तब स्वगिन करना पडा है।

'जाति' के प्राचीन प्रयुक्त विवरण को स्पष्ट करने में, सुलभाने में, ग्राहक के लक्ष्य की भाषा में उसे प्रकाशित करने में हमें अगार कठिनाइयों का सामना करना पडा है। 'जाति' के विषय—प्रतिपादन की दृष्टि में, मतग के परवर्ती ग्रन्थकार (शास्त्रादेव स लेखक प्राथमिक युग तक के संगीत ग्रन्थ लेखकों) की वा श्रेणियों में रखा जा सकता है—एक व जिन्होंने भरत ग्रन्थों का मतग के जाति विवरण को ज्वा का र्था, किसी टीका टिप्पणी वा स्पष्टीकरण के अनुपयोग-वर्तियों को भरत मतग के बाद 'जाति' के विषय में कोई भावदर्शन या परम्परागत सूत्र उल्लेख नहीं किया है। इस परिस्थिति में प्राथमिक काल के इसलिए ग्राहक दो ही मार्ग सुलभ हैं कि या तो गतानुगतिक भाव से ग्रन्थ ग्रन्थों के विवरण जैसा वा जैसा उद्धृत करने में अथवा उसका भाषान्तर प्रस्तुत कर देना मात्र मे ही मान वक्तव्य की इतिश्री मान लें और या फिर इस विषय को out of the book (प्रकाशित) कह कर इसके संबंध में मोन मेवत करें। किन्तु हम इन सुगम मार्गों का अवलम्बन न से कर बीहड़ और सांख्यिक विफलताओं के प्रथम अवस्था तक विचारों के घेरे, स्वयं लिखे गये निर्णयों में पुन पुन शंका और स्वर उल्लेखित शक्यों के समाधान में मुग्ध वृत्त—इन सब कारणों से इस विषय को लेखक करने में हमें दीर्घकाल प्रतिपादित करना पडा है। इतना करन पर भी अभी हमन 'इतिश्री' कह कर किसी बात को 'अन्तिम' नहा बनाया है और अन्ते यज्ञ की 'इति' नहीं की है। जो भी सुलभ जैसी भी उपलब्ध हुई हैं, उन्हें भिन्न २ विवरणों के रूप में प्रस्तुत किया है। अनुपयोग-वर्तियों का इहां दिशाया में ध्यान भी विचार कर सकते हैं। जिनका भी मत सुष्ठु, संपूर्ण और सुगम होगा, उनके प्रतिपादित सिद्धांतों को विद्वज्जन धन्य स्वीकार करेंगे। हमारी ओर से इस विषय की विविध उल्लेखित सुल्लेख का यथानुप निष्कर्ष तथा उन्हा सुलभान का कुछ दिशासूचन—ये दो कार्य यदि विद्वज्जन संपन्न हुए समझें तो हम अपनी धायता को साध्य मानेंगे।

'जातिगत' के 'पुनरुद्धार' की बात ध्यानवत वहीं २ सुगम में धायती है। 'पुनरुद्धार' के नाम पर धायित कालांतर एवं सामान्य जनता की धबोधनस्था का लाभ उठा कर, स्वकलित बातों को भरतादि प्राचीनों के 'सिद्धांत' के रूप में प्रकाशित किया जाता भी देखने में आ रहा है। हम स्वर-धुनि-धाम-मूर्च्छता का अविच्छेद संयम हृदय से प्रतिपादन कर चुके हैं, उन्हा की आधारभूमि पर, विशिष्ट स्वर-सन्निवेश के निमाण की दिशा में 'जाति' का धारिर्भाव हुआ और उन्हा का 'राग' के रूप में विकास हुआ। अतः 'जाति' को परम्परा 'राग' के रूप में विकसित होकर धाय कि 'जाति' के धाम्य स्वरुप को समझ कर हम उन्हा निरुद्ध 'राग' के जननीत्व' को धनीभाँन पहचान सकें, उन्हा प्रथम प्राचीन पा मर्ने और भरत के 'यन्त्रिच्छिद्रोपते लोके तन्मय जातिषु स्थितम्'—इस वाक्य की साध्यता को आत्मसाध कर सकें। जातिगत के 'पुनरुद्धार' का साहस दे कर आत्म प्रचार करने से यह प्रयोजन निरुद्ध नहीं होगा।

'राग' के विदास वा संश्लिष्ट इतिहास दे कर हमने मतंग से लेकर आधुनिक बाल तब प्रचार मे बाई प्रमुख ल-वर्गीकरण-पद्धतियो वा तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है। साथ ही आधुनिक लक्ष्यगत रागो के शास्त्रीय वर्गीकरण के तए एक् सुसंगत, पूर्ण और वैज्ञानिक पद्धति की आवश्यकता को धोर भी संकेत किया है। यह अपेक्षित वर्गीकरण-प्रणाली मे 'प्रणव-भारती' के द्वितीय भाग (रागशास्त्र) मे प्रस्तुत करेगे।

द्वितीय (क्रियात्मक) खण्ड के विषय में दो शब्द। प्रस्तुत वक्ता के विद्यार्थियो के लिए 'राग' के स्वतन्त्र विकास का अनिवार्य महत्त्व है। इसके लिए मुक्त आलाप-तानो की विशेष उपयोगिता है। राग का नियमबद्ध टांचा उषा उसके अन्तर्गत स्वतन्त्र विकास वा मार्गदर्शन—प्रण्यप्ती विद्यार्थी को इन दोनो वा बोध देना, यही मुक्त आलापताना वा प्रयोजन है। तात्त्विक आलापतानो को इन कक्षा में स्थान नहीं है, फिर भी तात्त्विक तानो के विभिन्न उदात्त और मुखडे पकडने के विभिन्न प्रकारो के बारे मे मार्गदर्शन कराने के उद्देश्य से कुछ तात्त्विक तानो वा समावेश किया गया है। इस पूरी सामग्री से शिक्षक तथा विद्यार्थी लाभ उठाये ऐसा विश्वास है। भिन्न २ तानो और भिन्न-भिन्न लय विभागो मे इन मुक्त आलाप-तानो के आधार पर स्वतन्त्र विकास करने मे प्रस्तुत वक्ता के विद्यार्थी कोई कठिनाई अनुभव नहीं करेगे ऐसी आशा है।

राग विवरणो में स्वरों के मूढम भेदो के लिए तीयनर, अनिकीमल आदि संज्ञाया वा प्रयोग किया गया है। उन्हें समझने के लिए पाठक द्वारा स्वर-संज्ञाया की सारिणी देय लें।

इस ग्रन्थ-माला के आगामी दो भागो मे एम० म्मुञ्ज० (सगीताचार्य) वा पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया जाएगा। उक्त पाठ्यक्रम मे अनेक अप्रचलित रागो वा भी समावेश है। इन भागो के प्रकाशन के पूर्व प्रणव भारती के द्वितीय भाग (राग शास्त्र) वा शीघ्र ही प्रकाशन करने वा विचार है।

प्रथम खण्ड द्वारा प्रेष, वाराणसी में और द्वितीय खण्ड मरला, प्रेष, वाराणसी मे मुद्रित हुआ है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन मे अत्यधिक विलम्ब के अनेक कारण हैं जिनमे सरला प्रेष की शिथिलता वा अमुक्त स्थान है। फिर भी दोनो प्रेषा के संचालको तथा कर्मचारियो को हम धन्यवाद देते हैं।

लका, वाराणसी
शनिवार, पीयो पूणिमा
वि० सं० २०१८,
२० जनवरी, १९६२ ई०

निवेदक—

ओम्कारना ठाकुर

अकारादि क्रम से गीत सूची

संगीतलिपि चिन्ह परिचय

क्रम संख्या	गीत	पृष्ठ संख्या	१—त्रिस्थान के चिन्ह
			ररिगम मध्य स्थान सरिगम मद्र " " ररि'म तार " "
			२—विद्वृत (कोमल तीव्र) स्वर—रि, म
			३—वण या शार्श स्वर सारि नि
			४—आन्दोलन या कम्प*—ध्रु
			५—मोड—सां प
			६—ताल के स्तम्भ—मोटी लकी रेखा ताल के निम्न स्तम्भ को दिखाती है और पतली रेखा एवं मात्रा की श्रवणि को। यथा—
			रा रि ग म प य नि सां
			एक मात्रा के स्तम्भ में जितने भी स्वर लिखे हों, उर्ध्व संख्यानुसार वहाँ लय-की गति समझकर उच्चार करना होगा जैसे—यदि एन, दो, तीन, चार, छ, आठ, बाह्र व सोलह स्वर एवं मात्रा के स्तम्भ में लिखे हों तो क्रमशः १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२ लय विभाग समझना होगा। इनमें भी एन मात्रा के अन्तर्गत भिन्न भिन्न स्वरों अथवा गीत के धरारों या लय विभागानुसार मात्राश-मूल्य समझने के लिए (—) तथा (~ या ~) चिह्नों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। जैसे—
			स रि - ग म - प रि ग - म ग - म प - य ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ गरि ग म प रि ग म प ग म प नि म प य नि ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३
१—श्रव मोरे राम	४२-४३	१—त्रिस्थान के चिन्ह	
२—श्रये ए मैवा	६२-६३	२—विद्वृत (कोमल तीव्र) स्वर—रि, म	
३—एरी बीर यामनवा	७-८	३—वण या शार्श स्वर सारि नि	
४—एरी हू तो	८१-८२	४—आन्दोलन या कम्प*—ध्रु	
५—ऐएडी एगडी गैएडी गैएडी	१२२-१२३	५—मोड—सां प	
६—गजरवा वाबो	७८-७९	६—ताल के स्तम्भ—मोटी लकी रेखा ताल के निम्न स्तम्भ को दिखाती है और पतली रेखा एवं मात्रा की श्रवणि को। यथा—	
७—गौरी श्ररधाग	८६-८७	रा रि ग म प य नि सां	
८—तानो तवेरेना	१७-१०८	एक मात्रा के स्तम्भ में जितने भी स्वर लिखे हों, उर्ध्व संख्यानुसार वहाँ लय-की गति समझकर उच्चार करना होगा जैसे—यदि एन, दो, तीन, चार, छ, आठ, बाह्र व सोलह स्वर एवं मात्रा के स्तम्भ में लिखे हों तो क्रमशः १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२ लय विभाग समझना होगा। इनमें भी एन मात्रा के अन्तर्गत भिन्न भिन्न स्वरों अथवा गीत के धरारों या लय विभागानुसार मात्राश-मूल्य समझने के लिए (—) तथा (~ या ~) चिह्नों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। जैसे—	
९—तेरे मन में	५०-५१	स रि - ग म - प रि ग - म ग - म प - य ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ गरि ग म प रि ग म प ग म प नि म प य नि ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३	
१०—हुह दे रे	१००-१०१		
११—प्रथम नाद	८८-९		
१२—पियरया की ब्राह	६०-६१		
१३—पियु पियु रटत	१५१-१५२		
१४—पगवा त्रिज देलन	११८-११९		
१५—पूली रो वलन्त	११६-११७		
१६—बड़ैया लावो	१०-११		
१७—बुला ला भालो	९८-९९		
१८—धरारी लू ववन	१२९-१३०		
१९—म्हारे डेरे	२२-२३		
२०—मैं क्यों गई	१३१-१३२		
२१—रंग जिन डारो	४४-४५		
२२—रैन का रापना	१४९-१५०		
२३—सात तुनाल	१३७-१३८		
२४—सान हो मैंने	१५०-१५७		
२५—सानी बहो तुम	२४-२५		

ऋतुनुत ५५ के दो मध्य दो प्रेशों में मुद्रित होने से आन्दोलन का चिह्न दायां तरफ़ा म भिन्न २ लग है प्रत्युत चिह्न प्रथम मध्य का है। द्वितीय मध्य में अन्य भागा की भांति कम्परेणर चिह्न लगा है।

ऊपर जहाँ जहाँ) का उपयोग हुआ है वहाँ उस ब्रैकेट के अन्तर्गत दोनों स्वरों का एकत्र मूल्य तो $\frac{1}{4}$ ही है, परन्तु एक एक स्वर का पृथक् मूल्य $\frac{1}{2}$ है।

इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।

७—सम—x

८—ताली—o

९—ताली—जहाँ ताली है वहाँ ताल के उस उम विभाग की मात्रा सख्या निर्दिष्ट की गई है। जैसे त्रिताल में दूसरी ताली के लिए ५ और तीसरी ताली के लिए १३ की सख्या रखी गई है।

१०—एक ही स्वर के दोषोर्धार के लिए अवग्रह 5 का प्रयोग किया गया है। इस अवग्रह का मात्रा-मूल्य तो उस मात्रा के विभाजन पर निर्भर रहता है।

११—गोत के एक ही अक्षर का जहाँ दोषोर्धार करना हो, अथवा स्वरों में परिवर्तन होता हो, वहाँ उन स्वरों के नौवें अवग्रह के स्थान पर त्रि-डु का प्रयोग किया गया है। यथा --

प ध नि ना
का ० ० ०

सूक्ष्म श्वर नामों की तालिका

श्रुति सख्या	
१	कोमल निपाद
२	शुद्ध निपाद
३	तीव्र निपाद
४	पञ्च
५	अतिकोमल ऋषभ
६	कोमल ऋषभ
७	निध्रुति (इन्द्राजिब) ऋषभ
८	शुद्ध ऋषभ
९	अतिकोमल गान्धार
१०	कोमल गान्धार
११	शुद्ध गान्धार
१२	तीव्र गान्धार
१३	शुद्ध मध्यम
१४	तीव्र मध्यम
१५	तीव्रतर मध्यम
१६	तीव्रतम मध्यम
१७	पञ्चम
१८	अतिकोमल धैवत
१९	कोमल धैवत
२०	शुद्ध धैवत
२१	चतुःश्रुति धैवत
२२	अतिकोमल निपाद

शुद्धिपत्र तथा परिशिष्ट

पृ० ६७ तथा ६८ पर मनेज के दशो गगन-वर्गीकरण के सम्बन्ध में जो टिप्पण है उस कृपया निम्नलिखित सहायन तथा परिवर्द्धन व साथ पढ़ें ।

शुद्धा, मित्रा, गौरी, राग, छायाशरी—इन पांच गीतिया व अतः त्रि ग्राम राग कहने के बाद मत्स्य त मप निमाया वा प्रवरग पूर्ण का व 'अन परं प्रवक्ष्यामि देशीरागवदम्बनम्'—या वह पर 'देशी-राग' के निष्पन्न की प्रतिष्ठा की है । विन्तु ग्रन्थ का यह अर्थ शुद्धित सम्बन्ध में बहुत ही खिन्नन शक्यता में है । केचिद्वित्री, माङ्गलाती, हम्मापिता पुनि शिवा, वण्णि—इत्यादि कुछेक संज्ञाएँ और उनके द्विज मित्र जगण—यही सामग्री पृ० १७१ पर 'देशी राग' व सम्बन्ध में उल्लेख्य होनी है । विन्तु सशोत रत्नाकर २०११, २ वीं टीका में कल्पितवाय ने मतन का जो उद्धरण दिया है उसमें स्पष्ट होना है कि मत्स्य ने रागाङ्ग, भावाङ्ग और क्रियाङ्ग—इन तीनों के अन्तर्गत देशी रागा का विभाजन किया है और शाङ्गदेव ने इन तीनों के अतिरिक्त 'उपाङ्ग' के रूप में जो चौथा वर्गीकरण समूह स्वीकार किया है, उन्मा मत्स्य व रागाङ्ग में ही अन्तर्भाव कर दिया है ।

×

×

×

मत्स्य का काल आज सामा यक्ष्य से छठी-सातवीं शताब्दी ई० के आसपास माना जाता है, विन्तु 'मत्स्य' एक गौरागिन नाम है और इनकी वीरगणितता के प्रकाश में इसकी ऐतिहासिकता पुनः विचारणीय है । वात्मीनि समस्य (आर० रा० ७३२८, २६), रघुवरा (स० १ श्लो० ५३ १५) तथा महाभारत (सामा० अ० ८ श्लो० २६) में जिन मत्स्य गुनि का उल्लेख है उनका 'इहर्देशी' के रचयिता मत्स्य के साथ क्या सम्बन्ध रहा होगा यह अनुमान करने का विषय है । इसका सकेतमात्र ही यहाँ सम्भव है ।

समर्पण-पत्र

दादी माँ



श्रीमती मनुलाबहन चन्द्रशर (उफ नान भाई) दवे

माना धर्मपत्नी व निघन के बच्चापालन स प्रवीण, सामग्रत आनाया से आतङ्कित जनयित्री के रहन हुए भी मातृ-वात्सल्य मे वञ्चित एक एक सन्निकर स्नहा के लिए हुए बचन की पराङ्मुसता स दु खित होन के अवसर पर जिहान मुझ अपनी छाया प्रगल की जगत् की निष्ठा प्रशमा मन कर, गह कर निगल कर, मुझ शक्ति प्रदान की एसी—
या देवी सर्वभूतेषु दायारूपेण सत्पिता' या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण सन्पिता'
—मेरी दूची बचन' के वाक्य की नमस्तन्वय सन् यह प्रथम समर्पित है।

प्रथम खंड

(शास्त्रीय विवेचन)

॥ ॐ ॥

जाति

मूर्च्छना-प्रकरण^१ के बाद भरत ने जाति का निरूपण किया है। स्वर, श्रुति, ग्राम और मूर्च्छना के बाद 'जाति' को जान लेना क्रमव्रत ही है। भरत के काल में जो गान-क्रिया प्रचलित होगी, जिस प्रकार के गीत-प्रयोग नाट्य में व्यवहृत होंगे, वे सब प्रयोग नाट्यशास्त्र में जाति के अन्तर्गत विभाजित किए गए हैं। जिस प्रकार पाणिनि ने अपने 'शब्दानुशासन' में संस्कृत भाषा के अन्तर्गत भारत के विभिन्न प्रदेशों में बोली जानेवाली बोलियों के शब्दों का भी संग्रह (समावेश) किया है, तद्वत् भरत मुनि ने भी भारत और भारतेतर देश-प्रदेशों में जो किरौब स्वर-समूह प्रचार में होंगे, उन सबको एक ही जगह समाविष्ट करने के लिए और एक ही शास्त्र में नियमबद्ध करने के लिए जातियों का निरूपण किया है। यहाँ क्षम प्रकार का अनुमान भी हो जाता है कि भारतीय और भारत के संपर्क में आई हुई भिन्न-भिन्न मानव-जातियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वररूप विशेष प्रचलित होंगे, उन्हीं स्वर-रूपों को शास्त्रीय रूप देते समय उन्हें जाति संज्ञा देना शायद उचित समझा होगा क्योंकि भिन्न-भिन्न मानव-जातियों से वे स्वरवर्णियाँ संबंधित रही होंगी।

भरत की अपनी ही हुई 'जाति' की व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या उपलब्ध नहीं होती। फिर भी उस विषय पर मतंग के वचनों से जो प्रकाश पड़ता है वह निम्नोक्त है —

१. श्रुतिमहस्वरादिसमूहाज्जायन्त इति जातयः— (बृहदेशी पृ० ५१)

अर्थात्—श्रुति और महस्वरादि के समूह से जो जन्म पाती है उन्हें 'जाति' कहा है।

अथवा—

२. यश्माज्जायते रसप्रतीतिराभ्यते इति जातयः—

अर्थात्—जिसमें रसप्रतीति की उत्पत्ति अथवा आरंभ हो उसे जाति कहा है।

अथवा—

३. सकलरागादेर्जन्महेतुत्वान् जातयः—

अर्थात्—सब रागों के जन्म का हेतु होने के कारण 'जाति' कहा गया है।

अथवा—

४. जातय इति जातयः । यथा नराणां ब्राह्मण्यत्वाद्यो जातयः—

अर्थात्—'जाति' शब्द का सामान्य अर्थ लिया गया, जैसे कि मनुष्यों में ब्राह्मण्यत्वादि जातियाँ होती हैं।

कल्लिनाथ द्वारा रचित 'संगीत रत्नाकर' की टीका में 'जाति सामान्य' के लिए इस प्रकार कहा है:—

यथायोगं ग्रामद्वयाज्जायन्त इति जानय । अत एवानित्यतया साकल्येन सामान्यरूपजाति-
लक्षणाभावेऽप्यनेकगोव्यक्तिषु अनुवृत्तत्वमात्रेण गोत्वादिवजातय इति वा । गीतजातं तस्योपरञ्जनं चाऽभ्यो-
जातय इति जातय इति वा ।

[सं० रं० १।७।१ कल्लिनाथो टीका]

१. मूर्च्छना-प्रकरण 'संगीताञ्जलि' पत्रम भाग में द्रष्टव्य है।

अर्थात्—यथायोग दोनों प्राणों में उत्पन्न होती है, अतः जाति बहलती है। जिस वस्तु की उत्पत्ति हो मह अस्ति ही होती है। अतः 'जाति' अनिश्चय है। अर्थात् संगीत-शास्त्रक 'जाति' में 'मानव्य रूप जाति' का समान नहीं घट समता, क्योंकि 'जाति-सामान्य' तो निश्चय होती है। फिर भी अनेक भेद स्थितियों में (अर्थात् पुष्प-वृक्ष, गीत-प्रकारों में) अनुसृत होने के कारण अनेक गो-व्यक्तियों में अनुसृत गोत्व की भाँति इन्हें भी 'जाति' कहा जाता है। अथवा गीतसंग्रह की वागीनोत्तरण की इनसे उत्पत्ति होती है, इसलिए वे 'जाति' बहलती हैं।

नाम्येव ने जाति के लिए इस प्रकार कहा है:—

रसभायप्रकृत्यादिविशेषप्रतिपत्तयः। जायन्ते जातिभिर्यत्ताः ॥ [भरत कोष पृ० २२७]

अर्थात्—रस, भाव, प्रकृति आदि की विशेष प्रतिपत्ति जातियों से होती है।

अभिन्नगुण ने जाति की व्याख्या इन शब्दों में की है:—

स्वरा एव विविधा सन्निवेशभाजो रक्तिमदृष्टभ्युद्यच्च जनयन्तो जातिरित्युक्तः। कोऽसौ सन्निवेश इति चेत् जातिःश्रुणेन दशकेन भवति सन्निवेशः। (वही)

अर्थात् स्वर ही जब विविध वनवर धीर सन्निवेशगत होकर रंजना और अदृष्ट अभ्युद्यत् को उत्पन्न करते हैं, तब वे जाति बहलते हैं। सन्निवेश से क्या समझा जाय ? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि दश 'जाति' सन्निवेशों में 'सन्निवेश' बनता है।

'जाति' की व्याख्याएँ हमने पढ़ीं। जाति को रागों की जननी कहा गया है। इस उल्लेख से यह प्रसङ्ग उत्पन्न होता है कि भरत-काल में रागों का प्रचार था या नहीं ?

भरत-काल में राग

'अतः' स्वर के दश लक्षण देते समय भरत ने 'राग' शब्द का प्रयोग अवश्य किया है; यथा:—

यस्मिन्वसति रागरागु यरमाश्रयं प्रवर्तते। [ना० शा० २८७२]

वितु इतने उल्लेख मात्र से ऐसा नहीं हो बह सकते कि भरत के नाट्यशास्त्र में राग का निरूपण है, क्योंकि महा 'राग' शब्द स्पष्टरूप से रञ्जना के लिए प्रयुक्त हुआ है। साथ ही हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अगर उक्त 'राग' शब्द का प्रयोग जाति के लक्षणों के प्रकरण में आया है और उस प्रकरण में रञ्जना के सामान्य अर्थ के अतिरिक्त किसी अन्य विशेष अर्थ में 'राग' के प्रयोग का प्रसंग ही उपस्थित नहीं हुआ है।

अगर के उद्धरण के अतिरिक्त भरत के निम्नोद्धृत वचन से कुछ लोगों ने ऐसा अनुमान लगाया है कि भरत के युद्ध-कालों का कालोत्तरक प्रमाण है:—

नाट्यशास्त्र (चौदहवाँ संस्करण)

निर्णयवागर संस्करण

पूर्वरंगविधाने तु कर्तव्यो गानजो विधिः।

देवपूजाधिकारान्तु तत्र संप्रकीर्तित ॥

तत्रश्च वाग्यवन्धेषु नानाभावसमाश्रयम्।

.....स च पूर्वं प्रकीर्तितः ॥

* शब्दसमन्वित संगीत में शब्द के अर्थानुसार मानव-वृद्धियों का और भावों का उत्तर-वर्णन या उद्धान-पतन जीवन में होता रहता है; केवल स्वर-लय-समन्वित संगीत संगीत जन्मगामी ही होता है और मन, बुद्धि तथा आत्मा को सर्वत्र उत्पन्न पथ पर आरुढ़ करता है। शब्द अपनी अभिधा प्राकृतिक द्वारा स्थूल भूमिका को उत्पन्न करते हैं और स्वर, लय की गति सूक्ष्म-वेद या कारण-वेद की गुहा तक है। इसीलिए जाति के स्वर-सन्निवेश को अदृष्टभ्युद्यत्कारक कहा है। हमारे अज्ञानतन्त्र में, हमारी उपचेतनावस्था (Sub-conscious) में अदृष्ट अवचेतन (Unconscious) अवस्था में ही इन स्वर-सन्निवेशों द्वारा मन, बुद्धि और आत्मा का उत्पन्न होता रहता है। और उसी से 'अदृष्ट' अभ्युद्यत् की प्राप्ति होती है।

ग्रामद्वयं न क्तेर्व्यं साधारणाश्रयम् । च यथा साधारणाश्रयम् ॥
 मुखे तु मध्यमग्रामः पड्डजं प्रतिमुखे स्मृतः । पड्डजं भवेत् ॥
 साधारितं तथा गर्भेऽमर्शं कैशिकमध्यमः । विमर्शं चैव पञ्चमः ॥
 कैशिकश्च तथा कार्यं गानं निर्दहणे ध्रुवैः । गाननिर्दहणे ॥
 सन्धिधृत्ताश्रयञ्चैव रसभावसमन्विताः ।
 यथा रसकृता याः स्युः ध्रुवाः प्रकरणाश्रयाः । तथा ... 'नित्यं' प्रकरणाश्रिताः ॥
 नक्षत्राणीव गगनं नाट्यमुद्योतयन्ति ताः । नक्षत्राणीव ॥

(ना० शा० ३२।४१-५५)

(ना० शा० ३२।४३२-३६)

अर्थात्—नाट्य के पूर्वर्ग विधान में गान का विधिपूर्वक प्रयोग करना चाहिए । पूर्वर्ग विधान में देव पूजा (रंग देवता की पूजा) का आधिकार या प्रयोग बहा गया है ।

(गानविधि के) वाद्यवन्धो में ग्रामद्वय (पड्डजग्राम तथा मध्यमग्राम) का प्रयोग करना चाहिए; ये ग्राम नाना भावो और रसो के आश्रय हैं तथा स्वर साधारण भी इन ग्रामो के आश्रित है ।

मुखसन्धि में मध्यमग्राम, प्रतिमुखसन्धि में पड्डजग्राम, गर्भ में साधारित (यानी उभय ग्राम के स्वर-साधारण अर्थात् अंतर कान्ती युक्त स्वरावलि), अमर्श संधि में कैशिक-मध्यम (मध्यम ग्राम के कैशिक मध्यम से युक्त स्वरावलि) तथा निर्दहण-सन्धि में कैशिक* (कैशिक स्वर साधारण युक्त स्वरावलि) युक्त गान करना चाहिए । [दोनों ग्रामों में त्रिभुज अन्तरालों के बीच एक ध्रुति के सूक्ष्म स्वरो की जहाँ २ उपलब्धि होती है, उसी को भरत ने 'कैशिक' संज्ञा दी है । जहाँ सूक्ष्म स्वरो का प्रयोग यहाँ 'कैशिक' संज्ञा से अभिप्रेत है । इसके पूर्व 'अमर्श संधि' में 'कैशिक-मध्यम' के प्रयोग का जो विधान दिया गया है, उसमें मध्यमग्राम के 'म-प' के त्रिभुज अन्तराल में प्राप्त कैशिकमध्यम से अभिप्राय है जो कि पञ्चम से एक ध्रुति पूर्व स्थित है । इस प्रकार गानविधि नाट्य की संधियों के आश्रित है अर्थात् जहाँ जो सन्धि हो तदनुकूल रसभाव-समन्वित रहनी चाहिए । जो ध्रुवा-गीति रस के अनुसार प्रयुक्त होती हैं और प्रकरण के आश्रित रहती हैं, वे नाट्य रूपो गगन को नक्षत्रों की भाँति उद्योतित (प्रकाशित) करती हैं ।

मतंग के 'बृहद्देशी' में भरत के ऊपर लिखे श्लोक कुछ पाठभेद सहित उद्धृत किए गए हैं और इनमें कही गई संज्ञाओं को शुद्धा गीति के अन्तर्गत ग्राम रागों के नाम मान लिया गया है । यथा:—

मुखे तु मध्यमग्रामः पड्डजं प्रतिमुखे भवेत् । गर्भे साधारितश्चैवावमर्शं तु पञ्चमः ॥
 संहारे कैशिकः प्रोक्तः पृथैरङ्गे तु पाडवः । चित्रस्याष्टादशस्य त्वन्ते कैशिकमध्यमः ॥
 श्रुदानां चिन्तयोगोऽयं ब्रह्मणा समुदाहृतः । (बृहद्देशी पृ० ८७)

भरत के ध्रुवा प्रकरण में से ऊपर उद्धृत वचन में जो संज्ञाएँ उपलब्ध होती हैं, जहाँ में न्यूनाधिक परिवर्तन के साथ मतंग ने उनका शुद्ध ग्राम-रागों के साथ जो संबंध जोड़ दिया है, उसी के कारण कुछ लोग भरत के उन वचनों में भी ग्राम-रागों का अस्तित्व आरोपित करते हैं । वास्तव में तो भरत के वचनों में वही 'ग्राम राग' संज्ञा का प्रयोग न होने के कारण पड्डज ग्राम, मध्यम ग्राम इन ग्राम-नामों को अथवा 'पञ्चम' 'कैशिक' 'मध्यम' इन स्वर नामों को

* उभय प्रायिक अन्तर गान्धार, और वाक्पी निपाद से भिन्न, भरतोक्त कैशिक स्वर-साधारण की विशेष स्पष्टता 'संगीताज्ञानि' पञ्चम भाग पृ० ११३क पर दृश्य है । यह उल्लेख करते हुए रीद होता है कि शार्ङ्गदेवादि ग्रन्थकारों में 'कैशिक' स्वर-साधारण के प्रसङ्ग में अनेक अनर्थों की सृष्टि की है, जिनके सुदूरगामी दुष्परिणाम आज तक के हमारे संगीत शास्त्र में व्याप्त रहे हैं । इस विषय के विस्तार का यहाँ अवकाश नहीं है । अस्तु ।

कथना 'तापारित' 'भैरव' इन 'स्वर-विनोदणों' को 'गानराग' के रूप में स्वीकार करना सर्व-संगत नहीं है। परन्तु प्रसंगों के कथनों को पूर्ववर्ती प्रत्यक्षार के मत पर स्वीकारित करना समीचीन नहीं हो सकता। इन्ना ही स्पष्ट है कि भरत ने नाट्य की गद्य संधियों में अभिप्रेत संगीत प्रयोग के प्रकरण में उल्लेख संज्ञाओं का उल्लेख किया है। किन्तु इन संज्ञाओं का रागों में सम्बन्ध जोड़ना कैसे शीघ्र नहीं तक मनुविज्ञ ही होगा ? यदि भरत को राग का निरूपण करना ही अभिप्रेत होगा तो इन संज्ञाओं के साथ 'राग' का संबंध क्या न जोड़ने ? राग ही यदि उन्हें एक निरूपण ही समीचीन होगा तो यह केवल राग या ए. नामों के उल्लेख तक ही क्यों सीमित रहता ? राग ही यदि उल्लेखनीय है कि भरत के ऊपर उद्धृत कथनों के उक्त पहलवानों शब्द में भी 'राग' शब्द का 'रक्षण' के लिए प्रयत्न मिलता है। यथा,—

यथा वर्णादिते चक्रं शोभते न निवेशनम् । एयमेतं विना गानं नाट्यं रागं न गच्छति ॥

(मा० शा० ३२४५०)

इस प्रसंग में मतंग का निम्नलिखित कथन भी स्मरणीय है, जिसमें उन्होंने स्वयं कहा है :—
रागमार्गस्य यद्रूपं चक्रान्तं भरतादिभिः । तद्रमाभिर्निर्हण्यते लक्ष्यलक्षणसमुत्तम् ॥

[बृहद्देशी पृ० ८१]

अर्थात्—राग-मार्ग का जो रूप भरतादि ने नहीं बताया है, यह हम लक्ष्य-लक्षण से युक्त निश्चित करते हैं।

मतंग या यह कथन भी इस बात की पुष्टि करता है कि भरत ने रागों का उल्लेख नहीं किया है।

मतंग के ऊपर उद्धृत दोनों कथनों में स्पष्ट विरोधाभास है ; इसलिए भरतीक संज्ञाओं को शुद्ध प्रयत्न की सत्ता मानकर मतंग का जो उद्धरण मिलता है उसे प्रामाणिक स्वीकार करने में हम असमर्थ हैं। यह भी स्मरणीय है कि भरत ने ब्रह्मार्दसर्वे अध्याय में संगीत प्रकरण के आरम्भ में विषय-प्रतिपादन की विस्तृत प्रतिज्ञा दी है। उसमें 'राग' का कहीं भी नामोल्लेख नहीं है। इन सब प्रमाणों से हमारा स्पष्ट मत यह है कि भरत ने नाट्यकारों में 'राग' का निरूपण नहीं किया है। आशा है, जिन्होंने ऐसा अनुमान लगाया है उनके भ्रम का निरसन हो जाएगा।

हमने यह देख लिया कि भरत ने नाट्यशास्त्र में रागों का उल्लेख नहीं ही किया है ; उन्होंने केवल सात दृश और एकादश संसर्गजा विद्वता जातियों का ही निरूपण किया है। 'जाति' यह एक सामान्यार्थक शब्द है। किन्तु संगीतशास्त्र की भाषा में वैशिष्ट्ययुक्त स्वरावलियों के लिए जाति शब्द का प्रयोग हुआ है। ऊपर दी हुई जाति की व्याख्या से यह स्पष्ट है। जिससे रस-प्रतीति हो ऐसे विशिष्ट स्वर-सन्निवेश की जाति कहा है। इसका यह अर्थ हुआ कि कोई स्वरवल्लि केवल आरोहान्वयेह के यानी कोई विशिष्ट आकार धारण किए बिना किसी भाव या रस का चहल नहीं कर सकती। ऐसा वैशिष्ट्य प्रदान करने वाले तत्त्व क्या हैं ? भरत ने दश जातिलक्षण के रूप में वे तत्त्व बताए हैं जा निम्नोक्त है :—

दशविध-जातिलक्षणम्

महांशी तारमन्द्रो च न्यासोऽपन्यास एव च । अल्पत्वं च बहुत्वं च पादचौडविते तथा ॥

[मा० शा० २८१००]

अर्थात्—(१) बृह (२) अश (३) तार (४) मन्द्र (५) न्यास (६) अपन्यास (७) अल्पत्व (८) बहुत्व (९) पादवत्त्व और (१०) औटवत्त्व यही वे दश लक्षण हैं, जिनसे कोई स्वरावल्लि 'जाति' का रूप धारण करती है अर्थात् जिनसे विशिष्ट रसवाही स्वर-सन्निवेश का निर्माण होता है। अमश इन दश लक्षणों की व्याख्या भरत और मतंग को करते हैं।

(१) ग्रह

ग्रहस्तु सर्वजातीनामंश एव हि कीर्तितः । यत्प्रवृत्तं भवेद्गानं सोंऽगो ग्रहविकल्पितः ॥

[ना० शा० २८।७१]

तत्रादौ जात्यादिप्रयोगो गृह्यते येनासौ ग्रहः ।

[बृहदेशी पृ० ५६]

अर्थात्—सब जातियों का जो अंश स्वर है, वही ग्रह कहलाता है। जिस स्वर से गान की प्रवृत्ति होती है, या गान-प्रवृत्ति के आरम्भ ही में जिस स्वर का प्रयोग होना है, वह अंश स्वर ही विकल्प से ग्रह कहलाता है। जहाँ से जात्यादि प्रयोग आरम्भ किया जाए, उसे ग्रह कहते हैं।

(२) अंश—जाति के दश लक्षणों में दूसरा लक्षण है 'अंश'। उस 'अंश' के निम्नलिखित दश लक्षण भरत ने बताए हैं—

यस्मिन्वसति रागस्तु यस्माच्चैव प्रवर्तते । येन वै तारमन्द्राणां येऽत्यर्थमुपलभ्यते ॥
मन्द्रश्च तारविपया पञ्चस्वरपर गति । अनेऽस्वरसंयोगो योऽत्यर्थमुपलभ्यते ॥
अन्यच्च बलिनो यस्य संवादी चानुवाद्यपि ॥ ग्रहोपन्यासविन्याससंन्यासाभ्यासगोचरः ।
परिवार्य स्थितो यस्तु सोंऽशः स्यादशलक्षणः ॥

[ना० शा० २८ । ७२-७४]

अर्थात् (१) जिस स्वर में राग यानी रजकत्व रहता हो या जिस स्वर पर जाति का रजक स्वरूप अवलंबित हो (२) राग, रज्ज या रस के उत्पादन में जो स्वर मुख्यतः उपयोगी हो, या जो स्वर स्वयं राग, रज्ज और रस को उजजाता हो, (३-४) मन्द्र और तार सप्त में पाँच-पाँच स्वर तक जिसकी अपेक्षा गति हो, अर्थात् गान क्रिया में जिस स्वर की संवादरमव प्रवृत्ति नीचे और ऊपर पाँच-पाँच स्वर तक विस्तार पाई हुई हो, (५) जो अन्य स्वरों से वेष्टित हो, या अन्य स्वरों के संयोग से आवृत्त हो, (६) जिसके साथ संवाद और अनुवाद करने वाले अन्य स्वर भी उसके समान ही बलवान् हो (७-१०) ग्रह न्यास, अपन्यास और विन्यास का बार-बार उच्चार या अभ्यास होते समय भी जो स्वर निरन्तर दृष्टिगोचर होता हो, ऐसे दश लक्षणों से युक्त स्वर अंश कहलाता है।

अंश स्वर के दश लक्षणों की व्याख्या कुछ भिन्न शब्दों में मतलब इस प्रकार देते हैं—

अंशविभागः स दशषिधो बोद्धव्यः, यस्मिन्नंशे क्रियमाणे रागाभिव्यक्तिर्भवति सोंऽशः । यस्मादारभ्य गीतः प्रवर्तते न ग्रहस्वरितः । श्वांशा द्वितीया तारमन्द्राभिव्यक्तिहेतुः, र्शांशस्तृतीयः पञ्चमस्वरमारोहम्, तारं कदाचित् पञ्चस्वरावरोहण(म/पि तार । तारानियामरुमन्द्रनि-नामरुत्तरोऽप्यंशः सप्तस्वरावरोहणम् । यश्च षट्-प्रयोगतरः सोऽप्यंशः । यो रागस्य विषयत्वेनावस्थित स्वरः सोऽप्यंशः ।

[बृहदेशी पृ० ५७]

अर्थात्—अंश स्वर दश प्रकार से बनता है। यथा—(१) जिसमें रागाभिव्यक्ति हो, (२) जिससे गीत का आरंभ हो, किन्तु फिर भी जो ग्रह और स्वरित से भिन्न हो, (३-४) तार और मन्द्र स्थानों की अभिव्यक्ति का जो हेतु हो, (५) जिसके आगे पाँच या छः स्वरों तक तार में आरोह हो सकता हो, (६-७) तार और मन्द्र स्थानों का जो नियामक हो, (८) जिससे सात स्वर तक नीचे अवरोह ही सकता हो, (९) जिसका अर्थिक प्रयोग हो, और (१०) राग के विषय, अर्थात् वेदविन्दु के रूप में जो स्थित हो।

ग्रह और अंश के लक्षण हनने देना लिए। 'ग्रह' के लिए वह जो कहा गया है कि अंश ही विकल्प से ग्रह बनता है, उस बचन का स्पष्टीकरण अत्र क्रमशः है। 'अंश' को 'ग्रहविकल्पित' ऐसा जो कहा गया है उसकी

स्पष्टता के लिए यह उल्लेख आवश्यक है कि हमारे संगीतशास्त्रों में 'श्रंश' शब्द का तीन प्रकारों में भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग मिलता है। यथा:—

- (१) संवाद, विवाद तथा अनुवाद—स्वरो के इन त्रिविध सम्बन्धों के प्रकरण में।
- (२) जाति के दश लक्षणों के प्रकरण में जो हम अभी ऊपर देत चूके हैं।
- (३) अलंकार प्रकरण में।

इन तीनों प्रकरणों में 'श्रंश' शब्द के विभिन्न अर्थ अभिप्रेत हैं। उनका स्पष्टीकरण निम्नोक्त है:—

(१) संवाद-विवाद-अनुवाद प्रकरण में श्रंश

भारत में साम्प्रदायिक के नामोल्लेख के पश्चात् इन स्वरो को चतुर्विध बताया है—वादी, संवादी, विवादी और अनुवादी। संवाद, विवाद और अनुवाद—ये स्वरो के परस्पर सम्बन्धों के श्रोतक हैं। इन सम्बन्धों की व्याख्या के लिए दो-दो स्वरो को जोड़ियाँ बनाकर होती हैं। यदि भी अकेला स्वर निरपेक्ष भाव से संवाद, विवाद या अनुवाद का प्रतिनिधि नहीं हो सकता क्योंकि स्वरो के संवादादि सम्बन्धों नियत ध्वनियों के श्रोतक हैं और 'अन्तराल' की सिद्धि के लिए दो स्वरो को जोड़ो अनिवार्य है। इन दो स्वरो में से जिन स्वर को आधार मान कर दूसरे स्वर का संवाद, विवाद या अनुवाद सम्बन्ध स्थापित किया जाए, अथवा जाना जाए, उसी स्वर को 'वादी' कहा है। इसी 'वादी' को समझते हुए भारत ने कहा है.—'यो यत्र श्रंशः स तस्य (तत्र ?) वादी'। (ना० शा० २८)

अर्थात्—जब जिस स्वर को आधार मान कर दूसरे स्वर के साथ संवाद, विवाद या अनुवाद सम्बन्ध स्थापित किया जाए, वही आधार स्वर अथवा (Fundamental Note) है और वही वादी कहलाता है। उदाहरण के लिए 'सा-म' की स्वर जोड़ी में 'सा' को श्रंश या आधार मान कर चलने में 'सा' वादी और 'म' उसका संवादी बनता है और 'म-सा' की स्वर-जोड़ी में 'म' को श्रंश या आधार मानने में 'म' वादी और 'सा' उसका संवादी कहलाएगा। ऐसे ही अन्य संवादी, विवादी और अनुवादी स्वर-जोड़ियों के लिए भी समझना चाहिए।

इस प्रकरण में श्रंश स्वर के वास्तविक अर्थ को न समझने के कारण ही 'राग'-लक्षण में 'राग' के प्रमुख स्वर को वादी कहा जाने लगा, उससे अपेक्षाकृत कम प्रमुख स्वर को संवादी, सहायक स्वरो को अनुवादी तथा विरोधी स्वरो को विवादी कहा जाने लगा। राग-लक्षण के अन्तर्गत इन पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग से इनके स्वरांतराल-सम्बन्धी शास्त्रीय अर्थों की संगति नहीं रह पाई। उदाहरण के लिए प० भातखण्डे ने श्रीराम के कोमल रूपम और पंचम को वादी-संवादी बताया है और ऐसी ही अन्य स्वर-जोड़ियों को भी कई रागों में वादी-संवादी कहा है, जिनमें संवाद सम्बन्ध ही नहीं सकता। वास्तव में भारत में 'वादी' के पर्याय के रूप में जहाँ 'श्रंश' का प्रयोग यह कह कर किया है, "यो यत्र श्रंशः स तस्य वादी" वहाँ जाति या राग के प्रमुख या प्रधान स्वर से कोई सम्बन्ध नहीं है। इससे यह स्पष्ट है कि रागलक्षण में 'वादी संवादी अनुवादी विवादी' स्वर भाषा का प्रयोग शास्त्रीय है। भरतौक्त जाति के दश लक्षण या ही राग-लक्षण में प्रयोग शास्त्रीय दृष्टि से उचित और श्रेष्ठ है।

(२) 'जाति' के दश लक्षणों के प्रकरण में श्रंश

'श्रंश', जाति के दश लक्षणों में से अग्रतम है और उसे जाति या प्रधानभूत स्वर कह कर उसके जो लक्षण दिए गए हैं, वे हम ऊपर देत ही चुके हैं।

(३) अलंकार प्रकरण में श्रंश

मुद्देगल भलवाचों के लक्षण देते हुए भर्तृहरि ने अलंकार के अर्थक दुब्बे के आरंभक स्वर को 'श्रंश' कहा है। उदाहरण के लिए—

(व) 'तारमन्द्र-भ्रजन' अलवार का लक्षण देते हुए मतंग कहते हैं —

अशाश्रुतुर्थं पंचम वा स्वर गतना यत्र मन्त्रे पुनरागम्यते स तारमन्द्रप्रसन्न । यथा.—सारिगमप
सा, रिगमपध रि, गमपधनिंसा म^३ । (बृहदेशी पृ० ३७)

अर्थात्—'अश' से चतुर्थं या पंचम स्वर पर जाकर जब पुन मन्त्र^३ में लौट आया जाए तब 'तारमन्द्र प्रसन्न' अलवार होता है । यथा—'सा' से 'प' तक आरोह करके पुन अशस्वर 'सा' पर लौट आए ।

(ख) 'विधुत' अलवार का लक्षण बताते समय मतंग कहते हैं —

अशस्वर चतुश्चार्य तदनन्तरस्वरद्वयस्य द्रुतोनारणादनेनैव क्रमेणारोहणादेकरुलो विद्यत ।
सासा सासा रिग, रिरि रिरि गम, गागागागा मप, इत्यादि । (बृहदेशी पृ० ४२)

अर्थात् अश' स्वर का चार बार उच्चारण करके उसके बाद वाले दो स्वरों का द्रुत उच्चारण करने से 'विधुत' अलवार होता है ।

उक्त दोना उदाहरणों में अलवार के दुबड़ा के आरम्भक स्वर को 'अश' कहा है ।

'अश' शब्द का तीन प्रकारों में विभिन्न अर्थों में प्रयोग हमने देखा । इस विवेचन से यह स्पष्ट हुआ कि 'अश' शब्द में तीन प्रवृत्तियाँ या (Functions) निहित हैं—(१) 'वादी' के रूप में स्वरों के सवाद, विवाद या अनुवाद सम्बन्धा का वह (अश) आधार रहता है । (२) 'जाति' या 'रग' में वह (अश) केन्द्रस्व या प्राणस्वर रहता है । तथा (३) किसी विशिष्ट स्वर योजना में वह आरम्भ स्थान पाना है (यथा अलवार प्रकरण में) । 'अश' का यह विविध कार्य-क्षेत्र हमने ऊपर देखा, उन्नी प्रकार जाति लक्षणा में भी अश को तीन क्षेत्रों में व्याप्त बताया है । यथा —

(१) 'अश' को 'अद विफलित' कहकर उसे श्रद्धे के रूप में जाति के आरम्भ-स्थान का अविच्छिन्ना कहा है ।

(२) 'यस्मिन्व्यति रागस्तु' इत्यादि दश लक्षणा द्वारा 'अश' को 'जाति' के प्राण-स्वर या नेत्र के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है ।

(३) 'अश, वा सम्बन्ध 'न्यास' के साथ भी जोड़ा गया है । यथा —

अथ न्यास । अशसमाप्ती स चैत्रनिशतिविध । (ना० शा० २८)

अर्थात्—समाप्ति में आया हुआ अश ही 'न्यास' कहलाता है और वह इन्हीं प्रकार का है । 'अशसमाप्ती' का विग्रह मतंग न या किया है —

'अश समाप्ती कार्य', अर्थात्—जो अश समाप्ति में प्रयुक्त हो वही 'न्यास' है । (बृहदेशी पृ० ६०)

इस प्रकार आरम्भ स्थान, प्रधानता तथा समाप्ति-स्थान—इन तीन पहलुओं में 'अश' का व्यापकत्व बताया गया है ।

जाति के दो लक्षण 'प्रह' 'अश' हम देना चुके । अत्र तीसरा चौथा लक्षण ले लें ।

(१) इस शब्दकार के स्वर रूप का पाठ 'बृहदेशी' में अस्पष्ट भ्रष्ट है । यथा—सारिगम । सारिगमप । रिरिगमपध रिगमपधग । गमपधनिंसा मपधनिंसा । मपधनिंसा । त्रिन्दु मनगोच लक्षण के अनुसार उक्त अलवार का पुन रूप बनाकर ऊपर दिया गया है ।

(२) यहाँ 'मन्त्र' में मन्त्र स्थान का तात्पर्य नहीं अपितु यहाँ से आरम्भ किया हो यहाँ पर नीचे लौट जाने से तात्पर्य है ।

१-४) तार-मन्द्र—ग्रंश स्वर के जो दश लक्षण बताए गए हैं, उनमें तार और मन्द्र तत्-उपवी व्याप्ति की मर्यादा वा अस्त्वैव दृष्टा है। उसी को दोहराते हुए यहाँ स्पष्ट किया गया है कि इन जातियों का गान केवल मध्य सप्तम में ही मर्यादित नहीं है, अपितु तार-मन्द्र में भी उन्मथा प्रस्तार है। इससे सिद्ध होता है कि जाति-गान केवल मध्य-सप्तमा के प्रयोग में ही सीमित नहीं था, अपितु तार-मन्द्र स्वरों में भी उसकी व्याप्ति थी अर्थात् तीनों-सप्तमों में उसका प्रयोग होता था।

तार और मन्द्र की व्याख्या देते हुए भरत ने कहा है—

अथ पञ्चरसरा कण्ठ्यांशात् (?) तारगति । अशात्तारगतिं त्रिधादाचतुर्थरसरादिह ॥
पञ्चमं त्वथवा गन्धेत्ततोऽशविहितं त्विह । आपञ्चमात्सप्तमाद्वा० नातः परमिहेत्यते ॥

(ना० शा० २०६२-३)

त्रिविधा मन्द्रगति.—ग्रंशपरा न्यासपरा चेति अपन्यासपरा चेति वा ।

अर्थात्—तार की त्रिविध गति है—ग्रंश (न्यास तथा अपन्यास) स्वर से तेवर चौथे, पाँचवे अथवा सातवें स्वर तक तार की गति समझनी चाहिए। मन्द्रगति भी त्रिविध है—ग्रंशपरा, न्यासपरा और अपन्यासपरा। 'ग्रंशपरा' अर्थात् ग्रंश है परे जिसके अर्थात् ग्रंश के नीचे। उसी प्रकार न्यासपरा और अपन्यासपरा का भी यही अर्थ है कि जिसके परे न्यास अथवा अपन्यास हो।

जाति-गान में त्रिविधा तार-गति और त्रिविधा मन्द्र गति होती थी, ऐसा इन उद्धृत वचनों से स्पष्ट है। हमना अर्थ यही है कि जिस जाति में जो स्वर ग्रंश हो उस ग्रंश से अथवा न्यास और अपन्यास स्वर से चार स्वर, पाँच स्वर या सात स्वर तक ऊपर जाने की मर्यादा उन्हाने दी गई थी, तद्वत् त्रिविधा मन्द्रगति कही गई है, जिसे ग्रंशपरा, न्यासपरा और अपन्यासपरा कहा है। इसका भी स्पष्टार्थ यही है कि जिस जातिमें जो ग्रंश, न्यास अथवा अपन्यास स्वर हो, उससे चार, पाँच या सात स्वर तक नीचे यानी मन्द्र में जाना चाहिए। इससे अधिक मन्द्र में नहीं जाना चाहिए।

ध्यान रह कि यहाँ 'मन्द्र' 'तार' से 'मन्द्र-तार' स्थान अभिप्रेत नहीं है, अपितु 'ग्रंश', 'न्यास' या 'अपन्यास' से नीचे उतरने को 'मन्द्र' और ऊपर चढ़ने का 'तार' कहा गया है।

उपयुक्त त्रिविधा तारगति और मन्द्रगति में से 'ग्रंशपरा' के कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं।

वत्याणाम् में ग्रंश स्वर ऋषभ से चार, पाँच या सात स्वर मन्द्र में उतर कर पुत्रि रि, मुं ध नि रि, रि शु मुं ध नि रि, गो स्वरसप्तमत्तरे के अर्धे अन्तते हैं, तद्वत् 'तार' में भी अर्धे के चार, पाँच या सात स्वर उक्त अर्धे आरोह किया जाता है, यथा—रिगमप रिगमपनि, रिगमपनिरिं। इस प्रकार रागरूप के निदर्शन के लिए ग्रंश से सात स्वर नीचे तक मन्द्रगति और ग्रंश से सात स्वर ऊपर तक तारगति पर्याप्त होती है। इस मर्यादा के बाहर 'तारगति' या 'मन्द्रगति' में रागरूप का पुनरावर्तन ही होता है। उसी प्रकार हमीर में ग्रंश स्वर धैवत में मन्द्र में जाकर गमप, सरिगमप, त्रिगागमप, इस प्रकार मन्द्रगति में सञ्चरण किया जाता है और 'तार' में गमनिरिंसी यों लेते हुए ग्रंश स्वर से 'तारगति' पूर्ण की जाती है। जयजयवन्ती में ग्रंश स्वर ऋषभ से मुख्य मन्द्रगति पुत्रि रि भी चार स्वर तक होती हैं, तद्वत् रिगमप यो तारगति का प्रथम चरण लिखा जाता है। वैसे ही गौडगारंग के ग्रंश स्वर गान्धार से मन्द्रगति में 'त्रिसागरिमा' यो मुख्य रूप से स्वरप्रस्तार का स्पष्ट प्रयुक्त होता है। 'तार' में सात स्वर तक आरोह की मर्यादा इस रागरूप के लिए भी पर्याप्त है।

* नाट्यशास्त्र के चौलस्य्या संस्कृत सीरीज़ के संस्करण में 'आपञ्चमात्सप्तमाद्वा' यह पाठ है। वृहदरसो में उद्धृत इसी श्लोक के पाठानुसार यहाँ संशोधन कर लिया गया है।

जैसे यह 'अशरणा' तारगति और मन्द्रगति हमने देखी, वैसे ही 'न्यास' या 'अपन्यास' के सबन्ध में भी इस द्विविध 'गति' को गुणितन स्वयमेव समझ सकते हैं, क्योंकि यह सब कुछ प्रत्यक्ष क्रिया से संबन्धित है।

तार-मन्द्र की मर्यादा आज भी हम राग-गान में विस्र प्रकार प्रयुक्त करते हैं इसके कुछ अन्य उदाहरण भी यहाँ प्रासंगिक होंगे। क्रिया-बुद्धि युगी जानते हैं कि कुछ राग ऐसे हैं कि जिनकी तार-सप्तक की मर्यादा बंधी हुई है, और कुछ राग ऐसे हैं, जिनकी मन्द्र सप्तक की मर्यादा बंधी हुई है। उन मर्यादा की लोरी को लपना, रागरूप को बिगाड़ना है। इसके कुछ उदाहरण समझने से यह बात अधिक स्पष्ट हो जाएगी। यथा दरवारी कान्हडा, इसकी तार मर्यादा बंधी हुई है। यदि दरवारी में चार-चार तार-सप्तक में संचार क्रिया जाए तो वहाँ दरवारी न रहकर भडाणा का दर्शन होने की पूरी सम्भावना है। दरवारी के मन्द्र सप्तक में जिनना भी बाम करना चाह कर सकते हैं, किन्तु तार में नहीं। यह जैसी तार सप्तक की मर्यादा बंधी हुई है, वैसे ही सोहनी, भडाणा, देशकार इत्यादि रागों की मन्द्र मर्यादा भी बंधी हुई है। सोहनी में प्राय मध्य गान्यार तक ही उतरने की मर्यादा है, चाहे कभी-कभी मध्य पडज को छू लेते हैं, किन्तु अधिकतर मध्य गान्यार तक ही उसकी मर्यादा है, मन्द्र में तो बिल्कुल ही नहीं। तद्वत् भडाणी में भी अधिकांश से अधिकांश उतरने की मर्यादा मध्य पडज तक है। गुणितन जानते हैं कि सोहनी में तार पडज ही बंध स्वर है और अडाणा में भी वही नियम है। सोहनी में पाँच स्वर तक उतरने की मर्यादा बनाई गई है और अडाणा में सात स्वर तक उतरने की मर्यादा दिखाई गई है। जैसे इन रागों के निदर्शन के लिए इन मर्यादाओं का पालन आवश्यक है, वैसे ही भरतकालीन जातिगान में भी इन्हीं मर्यादाओं का पालन आवश्यक माना गया था और इसी को समझाने के लिए त्रिविधा तार-गति और त्रिविधा मन्द्र-गति का जाति के लक्षणों में उल्लेख किया गया, ऐसा नियमपूर्वक कहा जा सकता है।

५-६, न्यास अपन्यास—ये शब्द ही अपने अर्थ को स्पष्ट करते हैं। अर्थात् जहाँ गान समाप्त किया जाए अथवा गान के बीच में जहाँ मुकाम किया जाए, जाति गान की इन क्रियाओं के निदर्शन के लिए ऊपर. न्यास-अपन्यास इन शब्दों का प्रयोग हुआ है।

"न्यासो ह्यंशसमाप्तौ" इस वचन में 'न्यास' के उक्त अर्थ के अनिर्दिष्ट जो अधिक व्यापक अर्थ निहित है, उसका विस्तृत विवेचन जाति के शुद्ध विकृत प्रकरण में द्रष्टव्य है।

७-८, अल्पत्व एवं बहुत्व—इस सम्बन्ध में भरत ने कहा है:—

द्विविधमल्पत्व लङ्घनादनभ्यासाच्च। गीतान्तरमार्गमुपगतानां पाड्वीडवितकरणत्वमंशानाञ्च^३
स्वराणां लङ्घनादनभ्यासाच्च सकृदुच्चारण यथाजाति, तद्वत् बहुत्वमल्पत्वनिपर्ययात् द्विविधमेपामन्येपामपि
यलिनां सञ्चार ।

अल्पत्वञ्च बहुत्वञ्च यथापूर्वं विनिश्चयान्। जातिस्वरैश्च नित्यं स्यात् जात्यल्पत्वं विधोनतः ॥

संचारोऽशान्तस्थानमल्पत्वं दुर्वेलेषु च। द्विविधोऽन्तरमार्गस्तु जातीनां व्यक्तिकारकः ॥

[ना० शा० २८।१०-१]

अर्थात्—मल्पत्व द्विविध है—एक लङ्घन द्वारा अर्थात् छोड़ देने से और दूसरा अनन्यास द्वारा यानी चार-चार आवृत्ति के अन्त में। गीत के अन्तर मार्ग में अन्तेवानी (जातियों की) पाड्वीडवित क्रिया में जिन अश स्वरों का

३ ऊपर के उद्धरण में मध्य क 'कचिद्वा अनंशो विनाल्प' इस वचन को देखने हुए यदि भरत के ऊपर उद्धृत वचन में 'अशान्ताश्च स्वराणां' के स्थान पर 'अनशानाश्च स्वराणां' पाठ लिया जाए तो उस गद्य का निम्नोक्त अर्थ होगा:—गीत के अन्तमार्ग में आद्य हुए जो अनंश स्वर हों, जो स्वर (जातियों के) औद्भवपाठक प्रकार याने में साधन हों, उनके लंघन या अनन्यास में अल्पत्व होता है।

लघन या अनभ्यास द्वारा अंतरांतर होता है, उगे अल्पत्व कहते हैं और दमके विपर्यय से यानी अर्धघन और अन्त्याम से बहुत्व होता है।

दो प्रकार के अन्तरमार्ग से जानियों को अभिव्यक्ति होती है—१, अंश या चन्द्रानु स्वर के सञ्चरण से, और २, दुर्बल स्वरों के अन्त्य से। इन विषय में मर्ग्य कहते हैं:—

अन्त्यस्थं बहुत्वं च द्विविधो संन्यासादिगणो भवेत् तदान्तरमार्गणिति । अन्तरमार्गस्य लक्षणं यथा जातिषु क्वचिद्वा अन्तरो विनाल्पः । [गृहदेशी पृ० ५६]

अर्थात् अल्पत्व और बहुत्व दो प्रकार का होता है। हम ऊपर कह चुके हैं कि लघन और अनभ्यास से अल्पत्व द्विविध होता है, तद्वत् अर्धघन और अनभ्यास से बहुत्व भी द्विविध है। ऐसा द्विविध अल्पत्व और बहुत्व जय सन्यासादिगत होता है यानी जब स्वरों का न्यास, अनभ्यास आदि अन्त्याम के अनुसार अन्तर-बहुत्व होता है, तब वह अल्पत्व-बहुत्व अन्तरमार्ग द्वारा हुआ समझना चाहिए। कभी-कभी जातियों में अर्धराज के बिना ही अल्पत्व होता है यानी अर्धराज तो स्वयमेव एक प्रकार का दीर्घत्व या अल्पत्व है ही, किन्तु उम प्रकार के अल्पत्व में यहाँ कोई अभिप्राय नहीं है, बल्कि उस अल्पत्व में अभिप्राय है जो अर्धराज पर निर्भर नहीं है।

इन अल्पत्व-बहुत्व को हम आज के लक्ष्य की भाषा में समझ लें। हमारे वर्तमान प्रचलित संगीत में भी किस स्वर पर कितना टहरा जाए, या कौन सा स्वर कितना लंबाया जाए, इन बातों की मर्यादा पाई जाती है। जानि-गान के युग में भी गान-क्रिया के ध्रुव पर जिस स्वर का अल्प स्पर्श किया जाता होगा अथवा बहुत्व से जिनका अल्पोच्चार होता होगा, या अन्य स्वरों की छाया में जो ढका हुआ रहता होगा, जिसका लघन या अनभ्यास होता होगा, ऐसे स्वरों का अल्पत्व बढा गया है और जो स्वर ग्रह, अंश या न्यास न होते हुए भी गान में अधिक प्रयुक्त होता है, उसी स्वर का बहुत्व बढा गया है। आज हमारी गान क्रिया में अल्पत्व और बहुत्व का जो प्रयोग होता है, वह उसी प्राचीन परंपरा का धोतन है। आज के कुछ रागा के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

जैसे केदार में गांधार प्रयुक्त होते हुए भी दीर्घोच्चरित मध्यम की छाया में टका रहता है और उसका केवल शुभ उच्चारण होता है, यह एक अल्पत्व का उदाहरण हुआ, तद्वत् मल्हार (मियां मल्हार) का धैर्य तथा शंकरा का धैर्य वक्रगति के अल्पत्व के उदाहरण हैं। बिहाग में ऋषभ धैर्य का आरोह में वर्जन होना है, यह लघन के अल्पत्व का उदाहरण है और शंकरोह में ऊही ऋषभ-धैर्य की 'निस धनु' और 'गड रिनुसा'-यह क्रिया स्वरों के उच्चार में दीर्घत्व के अभाव का उदाहरण है। निर्लंग में ऋषभ का नियमदुर्क आरोहावरोह में प्रयोग नहीं होता, किन्तु क्वचित् तार सप्त में ऋषभ लिया जाता है। धन. अनभ्यास यानी बारंबार प्रयोग न करने के अल्पत्व का यह उदाहरण है और ऐसे ही अन्य अल्पत्व के प्रकार भी भिन्न-भिन्न रागों में सन्निहित हैं, जो विद्वज्जन से अवगत नहीं हैं।

जो स्वर राग में ग्रह, अंश, न्यास न होते हुए भी बल पाता है, उसका 'बहुत्व' माना जाता है। जैसे कि कल्याण में गान्धार। ध्यान रहे कि कल्याण के अंश और उदाशः ऋषभ-पंचम ही है, गांधार निवाद नहीं। कारण कि ऋषभ-पंचम के बिना कल्याण के कल्याणत्व का ही लोप हो जाएगा; किन्तु गांधार का बहुत्व प्रयोग होने पर भी उमने बिना कल्याण का कल्याणत्व नष्ट नहीं होता, यह गुणजन जानते हैं। कल्याण के पूर्वार्ग में ऋषभ और उत्तरार्ग में पंचम के बिना उसका रागत्व कैसे नष्ट होना है यह निम्नोक्त उदाहरण से स्पष्ट होगा। यथा :—

* यहाँ सप्तक के पूर्वार्ग और उत्तरार्ग में स्थित अंश स्वरों के चिह्न ही अल्प. 'उं' और 'उपं' इत संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है।

- सा ऽ, नि सा ग, धु नि सा ग, नि ध सा नि ग, म ग, म ध नि सा ग, म ग, ध म ग, नि ध म ग, म ध म ग, सा, नि ध सा ।

इन प्रकार इन स्वरव्यतियों में गान्धार का बहुत्व दिखाने पर भी कल्याण का दर्शन नहीं होता, परन्तु—

नि रे-सा, धु नि रे-सा, म धु नि रे-सा, अथवा उत्तराग में प म धे-न, प म ध ऽ प, म प म ध-न, म ध नि ध-न, म ध ऽ प, म रि ऽ, रि म ध नि ध ऽ प, म ध ऽ प रि ऽ, सा नि रि ऽ ऽ सा । इस प्रकार गुणैज्जन देख सकते हैं कि पूर्वाग में ऋषभ और उत्तराग में पञ्चम का प्रयोग करने से ही कल्याण का कल्याणत्व प्रकट होता है, निखर आता है । इसमें स्पष्ट है कि कल्याण में गान्धार का लयन करने पर भी कल्याण का कल्याणत्व पूरी तौर से विद्यमान रहता है ।

शुद्ध-कल्याण, भ्रू-कल्याण, जयल-कल्याण आदि में कल्याण का अग 'परि' सगति पर ही निर्भर रहता है और पूर्वकल्याण में पंचम पर ही कल्याण दिखाई देता है, तदनु जहाँ-जहाँ नि रे-सा, म ध-न या प रि लगे, वहाँ-वहाँ कल्याण का दर्शन होगा । इससे सिद्ध है कि कल्याण का कल्याणत्व 'प-रि' पर ही भ्रवलम्बित है, गान्धार पर नहीं, जैसा कि पं० भानुलाल ने कल्याण में 'ग' को वादी बता कर अपने ग्रन्थों में कहा है ।

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट है कि कल्याण में ऋषभ और पंचम ये ब्रह्म स्वर हैं और गान्धार उभयमें ब्रह्म न होने पर भी बल पाता है । इसी को बहुत्व कहा गया है क्योंकि 'बहुत्व' द्वारा ऐसे स्वरों का सूचन किया जाता है, जो कि ब्रह्म न होने हुए भी बल पाते हैं ।

बहुत्व का एवम उदाहरण भी देना लें । देश और सौरठ में हम जानते हैं कि पूर्वाग में ऋषभ पर और उत्तराग में पंचम पर मुकाम करता अनिवार्य है, आरोह अवरोह दोनों ओर से बार-बार ऋषभ और पंचम का दीर्घाचार साहित प्रयोग आवश्यक है । ऋषभ पंचम के इस बहुत्व से यह भ्रम होना स्वाभाविक है कि इन रागों में 'ऋषभ-पंचम' ब्रह्म हैं । इसी भ्रमवश प० भातखण्डे ने ऋषभ को वादी और पंचम को सवादी कहा है । वास्तव में इन रागों के अवरोह में धैवत और गान्धार का प्रयोग अल्प दिखते हुए भी इतना अनिवार्य है कि उनके वगैरे इन रागों का रागत्व ही संसूचा नष्ट हो जाता है । यथा —

रि म ऽ रि, नि सा रि म ऽ ऽ रि, रि म प ऽ म रि, रि म प नि ऽ प म रि, प म नि ऽ प म रि, रि म परि म नि ऽ प म रि, म नि सा ।

ऊपर के उदाहरण में स्पष्ट है कि जिना गान्धार धैवत के देश या सौरठ के स्थान पर सारंग आनिर्भूत होगा है । बिन्दु इनके स्वरों के अवरोह में गान्धार धैवत का अल्प प्रयोग होते ही देश या सौरठ की प्रतिष्ठापना निम्नोक्त रूप में होगी —

रि म ऽ गरि, नि सा रि म ऽ गरि, रि म प रि म ऽ गरि, रि म प नि ऽ प, ध ऽ म गरि प म नि ध ऽ प, ध ऽ म गरि, रि म प रि म नि ध ऽ ऽ प, रि म ऽ गरि, ग नि ऽ सा ।

यह उदाहरण किसी भी शक्ति मनुष्य को निश्चय बना सकता है कि देश या सौरठ में गान्धार धैवत का अन्वय न होने पर भी ब्रह्म है क्योंकि उनके जिना राग का स्थानता ही भ्रमभर है और ऋषभ पञ्चम का ब्रह्मत्व न होने हुए भी बहुत्व है ।

दा दो उदाहरणों से ही सुस्पष्ट बहस का पद-पद बतव पा सकते और अन्य रागों में इनकी प्रतुष्टि से सकते ।

६-१०) पाण्डवस्य-श्रीडवरज-सम्पूर्ण गमन के भीतर से एष स्वर निवालेने से पाण्डव शीर दो स्वर निवालेने से श्रीडव प्रवार बनते हैं, यह समो जाते हैं। इस नियम में भरत ने कहा है।—

पंचस्वरमौडयित चिञ्चयं द्वाविधं प्रयोगम् ।

पट्स्वरस्य प्रयोगोऽय तथा पट्स्वरस्य च ॥

चतुस्वरप्रयोगोऽपि देशापेक्ष प्रयुज्यते ॥

[ना० शा० २०१६५]

अर्थात्-पांच स्वरों के प्रयोग से श्रीडव प्रवार बनते हैं। ऐसे से श्रीडव प्रवार दशविध हैं। जैसे पाण्डव में छ और श्रीडव में पांच स्वरों का प्रयोग होगा है, तद्वत् चार स्वरों का प्रयोग भी देशों समीत में प्रचलित है।

भरत की ऊपर उद्धृत कारिकाओं के अन्तिम भाग में जातिगान में चार स्वरा के प्रयोग का जो उल्लेख मिलता है, उससे श्रुति प्रचलित मातृश्री, ध्वलश्री जैसे रागों का आधार मिल जाता है। कुछ लोगों ने राग के स्वरों को न्यूनतम संख्या पांच मानकर इन रागों में तीस मध्यम का प्रयोग करके इन्हें श्रीडव बनाने का यत्न किया है। किन्तु ऊपर उद्धृत भरत के वचन के अनुसार ऐसा यत्न घनावरण ही नहीं, अर्थात् शास्त्र विरोधी होने के कारण अनुचित भी ठहरता है, क्योंकि चार स्वरा के रागों का प्रयोग भी विहित है, निषिद्ध नहीं है।

शुद्धा विकृता जातियाँ

अब हम इन जातियों के भेद-प्रभेदों के प्राचीन-ग्रन्थोक्त विवरण को समझ लें। जानि के दो मुख्य भेद हैं। यथा—१) शुद्धा २) विकृता।

शुद्धा जातियाँ

शुद्धा जातियाँ सात माने गई हैं, जिनके नाम सप्त स्वरों पर से रखे गए हैं। यथा—पाण्डवो, आर्षमी, गान्धारी, मध्यमा, पंचमी, धैवती और तीरादी यथा निपादवती। इन सात शुद्धा जातियों में से चार पञ्चमराग की हैं, यथा—पाण्डवो, आर्षमी, धैवती और निपादवती तथा तीन मध्यमराग की हैं, यथा—गान्धारी, मध्यमा और पञ्चमी।

ये तो पञ्चमराग और मध्यमराग की चौदहा मूर्च्छनाओं को ग्रह, श्रंग, न्यासादि नियम लगाने से जातियाँ बनाई जा सकती थीं। किन्तु भरत ने दोना प्राणों में कुल मिलाकर सात ही शुद्धा जातियाँ बहोई हैं। दोनो प्राणों की मूर्च्छनाओं के स्वर-रूप देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि चौदहा मूर्च्छनाओं के स्थान पर केवल सात ही मूर्च्छनाओं को शुद्धा जातियाँ का रूप देने के पीछे भरत का क्या हेतु रहा होगा। हम जानते हैं कि दोना प्राणों की मूल स्वर व्यवस्था में इतना ही अन्तर है, * कि पञ्चमराग में 'म-न' अन्तर चतुःश्रुति तथा 'प-ध' त्रिश्रुति है और मध्यमराग में 'म-प' त्रिश्रुति और 'प-ध' चतुःश्रुति है। इन दोनो प्राणों की मूर्च्छनाएँ यदि बीजात् पर निकाल कर देखी जाएँ तो उनकी स्वरावलियों में, श्रुति व्यवस्था के सूक्ष्म भेदों को छोड़ कर, साम्य पाया जाता है। अर्थात् स्थूल रूप से दोनो प्राणों की मूर्च्छनाओं द्वारा समान रागों का ही सन्नेत मिलता है। ये स्वर-समक पुनराद्भूत न हैं, संभवतः इसीलिए भरत ने शुद्धा जातियों के लिए दोनो प्राणों में से केवल सात मूर्च्छनाओं को ही चुना है।

॥ नान्यदेव ने कहा है —

यदाऽन्यो-यविपर्यस्तश्रुती पञ्चमधैवती । तदा तं मध्यमरागं तदन्त मतेषिणः ॥

अर्थात् जब पञ्चम धैवत का भावप में श्रुतिविकार होता है तो मध्यमराग माना जाता है। पञ्चम धैवत की चार श्रुति पञ्चम की मिल जाती हैं, तब मध्यमराग कहा जाता है।

इन द्वैधार्थिक सात शुद्धा जातियों के नाम सात स्वरो पर से रखे गए हैं। यथा—पङ्क ने पाङ्गी, ऋषभ से भार्पभी, गान्धार से गान्धारि, मध्यम से मध्यमा, पचम से पचमी, धैवत से धैवती और निषाद से निषादवती। इन शुद्धा जातियों के लक्षण भरत ने इस प्रकार निरूपित किए हैं—

(१) 'अन्यूनस्वरा'—अर्थात् जिनके आरोहावरोह संपूर्ण हैं।

(२) 'स्वरसंश्लेषप्रवृत्त'—अर्थात् जिस स्वर पर स जिस जाति का नाम रखा गया हो, वही स्वर उसका प्रह, अश और न्यास भी हो। उदाहरण के लिए पङ्कग्राम की पाङ्गी जाति का प्रह पङ्क हा और पङ्क ही उसका अंश और न्यास भी हो। इसी प्रकार दोनो ध्रुवों की सभी शुद्धा जातियों को समझना चाहिए अर्थात् ये लक्षण सभी पर पटित होते हैं।

(३) 'न्यासविधावप्यासां मन्द्रो नियमान् भवति शुद्धासु'

अर्थात्—शुद्धा जातियों में न्यास स्वर नियम से मन्द्र में होना चाहिए।

भरत के इस वचन में 'मन्द्र' का अर्थ मन्द्र सप्तक नहीं अर्थात् जिस स्वर पर मन्द्र सप्तक पूर्ण करते हैं, उसमें, यानी मध्य पङ्क से अधिप्राय है। आज भी जब हम गान क्रिया और वादन क्रिया करते हैं, तब अधिवादन रागों को छोड़कर प्रायः सभी रागों में हम मध्य पङ्क पर ही पूर्ण न्यास करते हैं। यानी गान-क्रिया, आलाप क्रिया, तान-क्रिया उसी मध्यपङ्क पर पूर्ण होती हैं। ऐसा ही नियम जाति गान के लिए भी प्रयुक्त होता था, यह उपर्युक्त वचन से स्पष्ट है। सामान्य बोलचाल में अस्पष्टता, प्रथ, उद्गार और पूर्णविराम के उच्चारों की भिन्नता देगने से स्पष्ट होता है कि पूर्णविराम का वाचिक स्वर मध्य स्थान में ही होता है। जा वाग्व्यवहार में पूर्णविराम कहलाता है, उसे ही संगीत में न्यास वा पूर्ण न्यास कहा जाता है। अतः संगीत में भी उसका प्रयोग तार में नहीं, अर्थात् मध्य स्थान में किया जाता है। इसी तथ्य को निदर्शन करने के लिए भरत ने यह कहा है कि शुद्धा जातियाँ न्यास मन्द्र में ही होना चाहिए।

त्रिभुजा जातियों

शुद्धा जातियाँ की व्याख्या देखने के बाद अब हम जानियाँ क दूसरे मुख्य भेद त्रिभुजा का देख लें। भरत ने कहा है—

एभ्योऽन्यतमेन द्वाभ्या बहुभिर्मा लक्ष्णैरिन्द्रियैरुपगता न्यासवर्जं त्रिभुजा भवन्ति।

अर्थात्—शुद्धा जातियों के लक्षणों में न्यास के दो अङ्कों पर दो या उससे अधिक लक्षणों में विकार आने से त्रिभुजा जाति बनती है। उनके न्यास स्वर में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता यह ध्यान देने की बात है।

इसका स्पष्टार्थ यही हुआ कि त्रिभुजा जातियों दो प्रकार से बनती हैं—(१) पूर्णत्व-सम्बन्धी नियम को भंग करने से यानी श्रीधर पाठ्य प्रकार बनाने से और (२) जिस स्वर पर से जिस शुद्धा जाति का नामकरण हुआ हो, उसी स्वर को अंश, प्रह, यन्त्यास मानने के नियम का उल्लंघन करने से। हाँ, केवल न्यास स्वर के नियम का भंग उल्लंघन नहीं होता।

यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि शुद्धा और त्रिभुजा जातियों का पार्थक्य बनाने हुए भरत ने 'न्यास' शब्द का यहाँ दो अर्थों में प्रयोग किया है—(१) जाति के स्वर रूप का नियामक, तथा (२) विराम, ठहराव या मुक्ताम।

हम पहले ही देख आये हैं कि 'मध्य' का भिन्न २ प्रकारों में भिन्न २ अर्थों में प्रयोग हुआ है। उसी प्रकार यहाँ 'न्यास' से दो अर्थ अभिप्रेत हैं। ऊपर उद्धृत भरत के वचन में 'गान' के द्विविध अर्थों की स्पष्टता निम्नोक्त विवरण से प्राप्त होगी।

भरत व निम्नलिखित वा मात्राशा में 'न्यास' का प्रथम धर्म या तो 'जाति' के स्वर रूप का नियामक स्वरूप होता है।

(क) शुद्धा अन्यूनररा स्वरान्प्रह्न्यासा ।

(ग) षष्ठ्योऽन्यनमेन द्वान्या त्रहुभिर्वा लक्षणे वक्रियामुपगता न्यासत्रजे विवृतसंज्ञा भवन्ति ।

अर्थात् शुद्धा जतिया में ता उभा नम स्वर ही प्रह, अरा और न्यास होना है। इन लक्षणा में ग न्यास के नियम का छोड़कर अथ लक्षणों में ग एक दो या अधिक का भंग करा ग जानिया के विवृत भेद बनते हैं। यहाँ 'न्यासवज' यह कह कर 'न्यास' को अपरिवर्तनशील बताते हुए भरत ने इस सिद्धान्त को स्वरूप दिया है कि उन-उन जातिया का न्यास स्वर ही उनके स्वर रूप का नियामक है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जाति के न्यास स्वर से उचित मूच्छता ग प्राप्त स्वरवलि की बनाए रखने हुए ग्रह-भरा अन्त्यास के परिवर्तन से तथा सपूर्ण व भग करने औटव पाडव रजा व निर्माण से शुद्धा जानिया व विवृत भेद बनाने की विधि भरत ने बही है।

यहाँ कुछ प्रश्न हो सकते हैं। ग्रह या अरा को जातिया के स्वर-रूप का नियामक क्यों न माना जाए? गान को प्रवृत्ति के प्रवर्तक 'ग्रह' का अथवा प्रधानीभूत या प्राणस्वरूप 'अरा' का जाति के स्वर रूप का अर्थात् मूच्छता का नियामक क्या न माना जाए? 'न्यास' को ही क्या माना जाए? 'न्यास' को नियामक मानने के प्रामाणीभूत कारण क्या हैं? उत्तर निम्नोक्त है —

(१) शुद्धा जातिया व अतर्गत विवृत भेद बनाने के प्रसंग में भरत का 'न्यासवज' यह विधान है। यदि एक जाति के अतर्गत अथ विवृत भेदा का निर्माण करना है तो उस जाति की मूल स्वरवलि को स्थिर रखना ही होगा, उसे अपरिवर्तनशील रखते हुए ही उसी स्वरवलि के अतर्गत ग्रह, अरा का परिवर्तन करके तथा औटव-पाडव आदि भेद बनाकर विवृत भेद उजाए जा सकते हैं। तभी वे सब विवृत भेद एकता के मूल में आवद्ध रहेंगे और किसी जाति विशेष के अतर्गत समाविष्ट रह सकेंगे।

(२) भरत ने १८ जातियों में कुल मिलाकर ग्रह अरा की सख्या ६३ कही है, किन्तु न्यास केवल २१ ही बताए हैं। यदि इन विपुलसंख्यक ग्रहों अथवा अरा का जातियों के स्वर रूप का नियामक मान लें और उन उन स्वरों से मूच्छताएं बनाएं तो नैसा अरा पुनरुचित दोष खडा होगा? ग्रह-अरा को यह विपुल सख्या कितनी धार अव्यवस्था की खिष्ट करेंगी?

(३) हमें यह स्मरण करना चाहिए कि प्रायः प्रत्येक जाति में एक से अधिक स्वरों को ग्रह और अरा का स्थान दिया गया है। यदि प्रत्येक ग्रह-अरा में मूच्छता बना कर जातियों के स्वर रूप बनाने लगेंगे तो कितनी भी जाति का कोई निरिचत रूप ही नडा रह पाएगा, नियम का सर्वथा अभाव हो जाएगा और धीरे धीरे अराजकता की-सी स्थिति उत्पन्न हो जाएगी।

(४) इसीलिए अपवाद स्वरूप एक दो जातिया को छोड़कर प्रत्येक जाति में न्यास स्वर एक ही एक बताया गया है, साथ ही उसे अपरिवर्तनशील भी कहा है। जो मर्यादा अपरिवर्तनशील है, वही अचल है और वही नियामक हो सकता है, अथ नहीं।

ऊपर किन कारणों में यह स्पष्ट है कि न्यास स्वर ही जातिया के स्वररूप का नियामक है और उसे उसी रूप में ग्रहण करने से ही जातियों के सुगमन, नियमित, व्यवस्थित और स्थिर रजा का निर्माण हो सकता है अन्यथा नहीं। जिस प्रकार 'अरा' ही विरल्य से 'ग्रह' बनना है वैसे ही 'अरा' ही न्यासवज को प्राप्त हाता है। ग्रह अरा व

'ग्रहत्व' और 'ग्रंश'व' परिवर्तनशील है। किन्तु उसका न्याम'व' अपरिवर्तनशील है। इस दृष्टि से भी न्यासत्व को प्राप्त ग्रंश ही जाति का नियामक बन सरता है।

श सन्वचन से स्पष्ट है कि जो ग्रंश है, वही न्यास है।

अथ न्यासः। अशरामासौ स चैरुचिदतिविधः। (ना० शा० २८)

इसी वचन को मतंग ने यो उद्धृत किया है—

न्यासो ग्रंशसमाप्तौ स चैरुचिरातिविधो विवातच्यः। (बृहद्देशो ४० ६०)

इसी 'ग्रंशसमाप्तौ' का विग्रह मतंग ने यो किया है—'अश समाप्तौ वादः।' अर्थात् जो अश समाप्त में प्रयुक्त किया जाये वही न्यास है।

इससे यह स्पष्ट है कि जो अश न्याम'व' को प्राप्त होता है वही जाति के स्वरा का नियामक बनता है, अन्य ग्रंश नहीं। इसलिए नियामकत्व 'न्यास' में ही निहित है, अश में नहीं। इसीलिए ग्रह-अशरि में परिवर्तन विहित है, न्यास में नहीं। न्यास की अपरिवर्तनशीलता एवं 'अश' का 'न्यास'त्व को प्राप्त होना, इन दोनों 'न्याम' की विशेषताओं में यह जाति के स्वरो का नियामक है। इस अर्थ को स्पष्टता और पुष्टि हम ऊपर 'निये' वचनों में देकर आए हैं। अथ 'न्यास' शब्द में दूसरा अर्थ जो सन्निहित है, उसको देख ले। उसके लिए भरत कहते हैं—

'न्यासविधानप्यासां मन्द्रा नियमान् भवति शुद्धासु विहृतास्वनियमान्।

अर्थात् 'न्यास' विधि में भी शुद्धा जातिया में न्यास गर्भदा (नियम से) मन्द्र में जाता है, किन्तु विहृताओं में ऐसा कुछ नियम नहीं है।

शुद्धा जातिया के विहृत भेद बताते समय न्यास किस अर्थ में अपरिवर्तनशील रहता है, और जातियों के स्वरों का नियामक बनता है वह हम ऊपर देख चुके हैं, किन्तु इन्हीं विहृत भेदों में 'न्यास' किन भिन्न अर्थ में अपरिवर्तनशील बनता है, उसको स्पष्टता भरत के उपर्युक्त वचन में प्राप्त है।

'न्यास' का यह भिन्न अर्थ है—ठहराव, मुकाम या विराम।

न्यास सम्बन्धी भरत के ये दो विधान आपातत परस्पर विरोधी दिखाई देते हैं। एक ओर तो 'एभ्योऽन्यतमेन द्वाभ्यां बहुभिर्था लक्षणौर्विक्रियामुपगता। न्याससर्जने विहृतसंज्ञा भवन्ति इव वचन में 'न्याससर्जने' कहकर 'न्याम' की शुद्ध विहृत भेदों में 'अपरिवर्तनशील' कहा है और दूसरी ओर 'विहृतास्वनियमान्' कहकर विहृत जाति-भेदों में 'न्याम' को अपरिवर्तनशील भी बताया है। किन्तु इन विरोधाभास की संगति तभी बैठ सकती है जब 'न्याम' के जो दो भिन्न भिन्न अर्थ भरत को अभिप्रेत हैं, उन्हें यथासंभव रूप से समझ लिया जाय। इन अर्थों की स्पष्टता के अभाव में ही विरोध दिखाई देता है वास्तव में भरत के वचनों में कोई विरोध नहीं है।

ऊपर के पूरे विवरण का निष्कर्ष यह है कि 'न्यास' को जहाँ 'न्याम'वर्त' कह कर अपरिवर्तनशील कहा है वहाँ उसने जाति के स्वरो का नियामकत्व अभिप्रेत है और नियामक का अपरिवर्तनशील होना अनिवार्य है, दूसरी ओर 'विहृतास्वनियमान्' कह कर 'न्याम' की जब 'अपरिवर्तनशील' बताया है तब उसने ठहराव या मुकाम या विराम ही अभिप्रेत है और विराम की अपरिवर्तनशीलता से न्याम में निहित जाति के स्वरा का नियामकत्व किसी प्रकार से मान्य नहीं होता।

शुद्धा जातियों में तो एक ही स्वर, ग्रह, अश और न्याम होना है। वहाँ ग्रह का 'प्रवर्तकत्व', अश का 'प्रधानत्व' तथा न्यास का नियामकत्व एवं 'समाप्तित्व'—ये सब कुछ एक ही स्वर में अन्तर्हित रहते हैं।

किन्तु शुद्धा जातिया के अन्तर्गत विहित भेदा में ताम्र मरुत म मित्र मित्र ब्रह्म, अश्रा, अणायाम आदि का प्रयोग विहित है। इन विहित जाति-भेदा में भी 'नियामन' नाम तो अपरिवर्तित ही रहता है किन्तु उद्धार विद्या, मुक्त्या के रूप में न्यास परिवर्तित हो सकता है यही अर्थ मन्त्र व 'विद्यात्म्यनियामन' शब्द वचन में निहित है।

इस ब्रह्म अश्रा परिवर्तन के लिए क्षेत्र नियामन वचन व निमित्त हो शुद्धा जातियों में एक स मयिन अश्रा (अश्रा) बताए हैं। ध्यान रहे कि प्रत्येक जाति का न्यास मरुत उसी अश्रा (ग्रहों) में ही एक है। इसीलिए यहाँ कहा गया है कि जो अश्रा समाप्ति म प्रयुक्त है, वही न्यास है।

शुद्धा जातिया के अन्तर्गत विहित भेदा की सम्पत्ति निर्दिष्ट करने हुए भी भरत मुनि ने इन भेदों की रचना की मर्यादा निर्धारित कर दी है। जिस प्रकार अश्रा-अश्रा की सख्या निर्दिष्ट करके ब्रह्म अश्रा परिवर्तन का क्षेत्र निर्धारित कर दिया है, तद्वत् श्रौच पाठन भेदा की रचना का भी नियमन कर दिया है। 'रत्नाकर' वार ने जा विहित भेद गिनाए हैं, उनकी सम्पत्ति नीचे की मारिणी म प्रस्तुत है —

जाति नाम	कुल विहित भेद सख्या	विहित के प्रकार	
		श्रीटमपाठवादि भेद	ब्रह्म, अश्रा, अणयाम के नियम भग से वने भेद
१—पहली	११	८	७
२—आर्षिभी	२३	१६	७
३—गान्धारी	२३	१६	७
४—मध्यमा	२३	१६	७
५—पचमी	२३	१६	७
६—षष्ठी	२३	१६	७
७—निष्ठावती	२३	१६	७
कुल सख्या	१२३	१४	४६

संसर्गजा विकृता जातियाँ

शुद्धा जातिया व अपरिवर्तित विहित भेदा के अनिश्चित अन्य एकाग्र संसर्गजा विकृता जातियाँ प्रयुक्त रूप से बही गई हैं। इन संसर्गजा विकृता जातिया के समय में भरत, मतल तथा शाङ्गदेव के वचन इस प्रकार हैं —

भरत—तत्रैतादश जातयोऽधिकृत्या परस्पर संयोगादेकादश निर्वर्तयन्ति । यथा —

शुद्धा विहृताश्चैव समयायाजातयस्तु जायन्ते । पुनरेषांशुद्धकृता भवन्त्येकादशान्यास्तु ॥
तामा या निवृत्ता मरुतेष्वथोषु च जाति । ता वक्ष्यामि यथामन् सत्तेषुण क्रमेणोद् ॥

[भा० शा० २८।४३, ४४]

अर्थात् एकादश जातिया का अब अधिकार (प्रकरण) है। (शुद्धा जातियों के) परस्पर संयोग से एकादश जातियाँ निष्पन्न होती हैं ।

“जातियाँ शुद्धा और विवृता होती हैं ।”

[यहाँ 'विवृता' स शुद्धा जातियो के विवृत भेदो से तात्पर्य है । इन 'विवृता' जातिया के अतिरिक्त अथ एकादश समर्गजा विवृता जातियों के लिए भरत ने कहा है “समवाय द्वारा पुन अशुद्ध भी हुई जातियाँ एकादश होती हैं । इन एकादश जातियो म से जो जाति (ससर्गजा) जिन जिन अशर स्वरो तथा जिन जातियो (के समवाय) से निर्मात होतो है, उसे उसी प्रकार सक्षेप स क्रम सँ बताया जाएगा ।”

मतंग—तत्र शुद्धाना जातीना शुद्धत्व विवृतत्वं च रूपद्वयमस्ति, एकादशाना विवृतोद्भवत्वाद् विवृतत्वमेव रूप भवति ।

[बृहदेशो पृ० ५४]

अर्थात् शुद्धा जातिया के तो शुद्ध और विवृत यो दो रूप होते हैं, किन्तु एकादश (ससर्गजा) जातिया का उद्भव विवृत जातिया म होन के कारण उनका विवृत ही रूप होता है । अर्थात् ये निरप विवृता हैं ।

इस विषय म शाङ्गदेव का वचन निम्नोक्त है —

विवृताना तु ससर्गाज्ञाता एकादश स्मृता । [स २० १।७।२]

अर्थात् विवृताओं के ससर्ग से एकादश जातियाँ उत्पन्न होती हैं ।

जगर उदत इन तीनों वचनो का मूल अभिप्राय यह है कि ससर्गजा जातियाँ विवृत ही होती हैं, उनका शुद्ध रूप नहीं होता । किन्तु भरतोक्त 'पुनरेवाशुद्धकृता', 'समवायात्' तथा 'अयास्तु' ये शब्द इस सम्बन्ध मे विशेष विचारणीय हैं । 'शुद्धा' जातिया के प्रथम अशर परिवर्तन तथा षोडश-पाडव भेद निर्माण से उनके (शुद्धा-जातिया के) जो विवृत भव बनते हैं, उनसे ये एकादश जातियाँ विलकुल भिन्न हैं, इसीलिए 'अयास्तु' कहा है । हम यह जानते हैं कि ससर्गजा जातियो का विवरण देते समय उनम 'शुद्धा' जातियो का ही 'ससर्ग', 'सयोग' या 'समवाय' कहा गया है । उदाहरण के लिए 'पाडवी' 'आपनी' आदि शुद्धा जाति-नामो का ही 'ससर्ग' 'सयोग' या 'समवाय' के प्रसंग में उल्लेख किया गया है । और कहीं भी यह संकेत नहीं दिया गया है कि अशुद्ध शुद्धा जाति के अशुद्ध विवृत भव का 'ससर्ग' में उपयोग करना अभिप्रेत है । हम देख आए हैं कि एक एक शुद्धा जाति के अनेको विवृत भेद बनते हैं । अत किसी निश्चय सकेन के बिना कित आचार पर यह निर्धारित किया जा सकता है कि विवृत भेदा की विपुल संख्या म से कहीं कौन से विवृत भेदो का उपयोग करना है । अत यह कहना गलत होगा कि शुद्धा जातियो के विवृत भेदो से ससर्गजा जातियो का उद्भव हुआ है । इसीलिए यह स्पष्ट है कि भरत को इन विवृत भेदा का ससर्ग अभिप्रेत नहीं था, अन्यथा उन्होंने अभीष्टान विवृत भेदो का अवश्य उल्लेख किया होता । ऐसी अवस्था मे 'पुनरेवा-शुद्धकृता' यह वचनार्थ बहुत महत्वपूर्ण है । इसको 'समवायात् पुनरेवाशुद्धकृता' या समवायात् के साथ रखकर देखने मे यह अर्थ स्पष्ट होता है कि 'समवाय' द्वारा अर्थात् 'समूहरचना' द्वारा जिन शुद्धा जातियो को 'अशुद्ध' बनाया जाता है, व ही 'अशुद्धकृता' जातियाँ समूहगत हो कर अथ एकादश बनती हैं । इसका अर्थ यह हुआ कि शुद्धा जातियो को ही जब निश्चय समूहगत रूप से प्रयोग म लाया जायगा अर्थात् जब एक से अधिक शुद्धा जातियो को पृथक् या स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त न करके उनके समवाय या समूह की रचना की जायगी तब उनकी शुद्धावस्था नहीं रह जायगी । यह जो समवायत अशुद्धावस्था है वह पूर्वोक्त विवृत भेदो से पृथक् है । इसीलिए विवृता न कह कर 'पुनरेवाशुद्धकृता' कहा है । ध्यान रहे कि यहाँ 'पुन' से दुबारा अर्थ नहीं है, अपितु पूर्वोक्त विवृत भेदा से ब्यावर्तक के रूप मे उसका प्रयोग हुआ है ।

१—'ता एव शुद्धविवृता' (ना० शा० चौथम्या संस्करण)

ऊपर निचे विवरण से यह स्पष्ट है कि मंत्रों के 'विद्वृतोद्भवत्वात्' तथा शास्त्रों के 'विद्वृताणां संसर्गाज्जाता' इन शब्दों से यद्यपि ऐसी भ्रान्ति हो सकती है कि शुद्धा जातियों के 'विद्वृत' भेदों के संसर्ग से वे एकादश जातियाँ बननी हैं, तथापि ऊपर प्रतिपादित सिद्धान्त को देखते हुए ऐसा अर्थ समाना न तो भरत-गम्मत है और न सर्वसंगत ही।

इस प्रकार हमने देखा कि शुद्धा जातियों के विद्वृत भेदों के संसर्ग से एकादश संसर्गजा जातियों की निर्णय मानना उचित नहीं है, क्योंकि:—

(१) शुद्धा जातियों के अग्रान्तर विद्वृत भेदों की संरक्षा विगुल है, उनके परस्पर 'संसर्ग' से विगुलतर संसर्ग रूपा का निर्माण हो सकता है, किन्तु भरतोक्त एकादश संख्या में मर्यादित संसर्ग रूपा के साथ इन अग्रमर्यादित संसर्गों का सम्बन्ध जोड़ना भरत-सिद्धान्त के प्रतिकूल है।

(२) एकादश संसर्ग रूपा के निर्माण में विस शुद्धा जाति के विस 'विद्वृत' भेद का संसर्ग में उल्लोप करना है, इसका कोई भी संबन्ध नहीं हो उपलब्ध नहीं है।

(३) भरतोक्त 'पुनरेवाशुद्धात्ता' (समवायात्) से भी यही अर्थ निकलता है कि 'शुद्धा' जातियों के विद्वृत भेद बनाने की जो विधि बताई गई है, उससे भिन्न विधि द्वारा एकादश 'अन्य' जातियों का निर्माण अभिप्रेत है और यह भिन्न विधि यह है कि 'समवाय' द्वारा 'शुद्धा' जातियों को समूहबद्ध करके उनके 'शुद्धत्व' को भंग दिया जाए। अस्तु। जिन जातियों के संसर्ग से एकादश संसर्गजा जातियाँ निष्पन्न होती हैं उनका विवरण भरत ने इस प्रकार दिया है।

स्यात् पङ्कजमध्यमाभ्यां निवृत्ता पङ्कजमध्यमा जातिः।

पाङ्गीगान्धारीभ्यां धैवत्याश्चापि या दिनिष्पन्ना ॥

संसर्गाद्वा विज्ञेया पङ्कोदीन्त्रया जातिः।

पाङ्गीगान्धारीभ्यां सम्भूता पङ्ककैशिकी जातिः ॥

पाङ्गीगान्धारीभ्यां धैवत्याश्चापि मध्यमया वा।

निवृत्ता या जातिः सा मध्यमोदीच्यवा नाम्ना ॥

गान्धारीपञ्चमीभ्यां नैपादीमध्यमाभ्याञ्च।

रक्तगांधारो नाम जातिः स्याच्छ्रुत्सामित्वाभिः ॥

गान्धारीपङ्कजाभ्यां संसर्गाज्जायते चाश्री।

गान्धारीपञ्चमीभ्यामार्षभीभ्यां चैव नन्द्यन्ती तु ॥

गान्धारीपञ्चमीभ्यां जाता गान्धारपञ्चमी जातिः।

नैपाद्यार्षभीभ्यां पञ्चम्यारचैव संसर्गात् ॥

वामार्षी नाम्ना जातिः पूर्णा हि भवति चैयम्।

धैवत्यार्षभीहीना पञ्चाद्या, कैशिकी कुर्युः ॥

[ना० शा० २८।४५-५२]

नीचे दी हुई तालिका से यह विवरण स्पष्ट हो जायगा ।

संसर्गजा विद्वता जातियाँ	ग्राम	निम्न शुद्धा जातियों के संसर्ग से बनी हैं ?
१—पड्जमध्यमा	पड्ज	पाड्जी + मध्यमा
२—पड्जोदीच्यवा	”	पाड्जी + गान्धारी + धैरती
३—पड्जकैशिकी	”	पाड्जी + गान्धारी
४—गान्धारोदीच्यवा	मध्यम	पाड्जी + गान्धारी + धैरती + मध्यमा
५—मध्यमोदीच्यवा	मध्यम	गान्धारी + पञ्चमी + धैरती + मध्यमा
६—रक्तगान्धारी	मध्यम	गान्धारी + पञ्चमी + नैपादी + मध्यमा
७—आन्धी	मध्यम	गान्धारी + पड्जा
८—नन्द्यन्ती	मध्यम	गान्धारी + पञ्चमी + आर्षभी
९—गान्धारपञ्चमी	मध्यम	गान्धारी + पञ्चमी
१०—कार्मारवी	मध्यम	नैपादी + आर्षभी + पञ्चमी
११—कैशिकी	मध्यम	पाड्जी + गान्धारी + मध्यमा + पञ्चमी + नैपादी

अष्टादश जातियों के लक्षण

जाति के दश लक्षणों पर हम विस्तार से विचार कर चुके हैं। साथ ही जातिया के शुद्ध विकृत भेदा तथा संसर्गज विकृत भेदों की परस्पर भिन्नता भी हम देख चुके हैं। अब अष्टादश जातियों के ग्रह-अंश न्यासादि लक्षणों का विवरण क्रमप्राप्त है। पाठका के सौकर्य के लिए हम भरत, दत्तिल, मतंग, नान्यदेव तथा शाङ्गदेव के अनुसार सभी जाति-लक्षणों का एक ही सारिणी के अन्तर्गत प्रस्तुत कर रहे हैं। इसमें एक ही दृष्टि में इन ग्रन्थकारों का मूल्य ग्रन्थवा मतभेद स्पष्ट हो जाएगा। जहाँ सबका मतैक्य है, वहाँ कोई संकेत नहीं दिया गया है। किन्तु जहाँ नहीं जिस किसी ग्रन्थकार का मतभेद है, वहाँ १० = दत्तिल शा० = शाङ्गदेव म० = मतंग ना० = नान्यदेव इन सप्त संकेता के साथ मतभेद दिखा दिया गया है। भरत का मत प्रत्येक कोष्ठक में संश्रयण दिया है, मत भरत के लिये प्रायः किसी संकेत का प्रयोग नहीं किया गया है। जहाँ कहीं एको भिन्नति है कि कोई लक्षण केवल भरत में ही प्राप्त होता है वहाँ 'अ०' संकेत रखा गया है। जहाँ नाट्यशास्त्र के निर्णयसागर संस्करण तथा काशी संस्करण में पाठभेद के कारण लक्षणों में भिन्नता पाई गई है, वहाँ क्रमशः 'नि०' तथा 'वा०' इन संकेता का उपयोग किया गया है। विशेषज्ञों के स्तम्भ (कॉलम) में मूच्छ्रनाम्ना का जो उल्लेख है, उसे मतंग तथा शाङ्गदेव के जाति प्रकरण के अन्तर्गत स्पष्ट किया जायेगा।

इस प्रकार अष्टादश जातिया में ६३ ग्रह-अंश, २१ न्यास, ५६ अपन्यास तथा अत्यन्त बहूव भादि अम लक्षण निम्नोक्त सारिणी में एकत्रित रूप से प्रस्तुत हैं।

१ पाठवी पङ्क मध्यम गान्धार पङ्क पञ्चम, धैवत ।

म० ऋषभ-निपाद वा अल्पत्व, म० पङ्क, गान्धार और पङ्क, धैवत का सञ्चार ।

'मि' लोप से पाठ्य, 'नि-य' लोप से श्रोडव ।

शा० जब गान्धार ऋत तत्र निपाद वा लोप नहीं । म० जब संगुणः तब ऋषभ, पञ्चम-बी-निपाद-पञ्चम का श्रद्धाल-शा० म० मूर्च्छेता धैवतादिका ।

२ कौर्षवी पङ्क ऋषभ निपाद, धैवत । ऋषभ ऋषभ, निपाद, धैवत ।

निपाद वा अल्पत्व, ना. गान्धार-निपाद वा बहुत्व, पञ्चम का श्रद्धाल, म० निपाद-पञ्चम वा श्रद्धाल, म. ऋषभ-गान्धार की संगति

निपाद हीन पाठ्य निपाद-पञ्चम हीन श्रोडव म ना. पङ्कहीन पाठ्य, पङ्क-पञ्चमहीन श्रोडव ।

शा० म० मूर्च्छेता पञ्चमादि ।

३ गान्धारी मध्यम पङ्क, गान्धार मध्यम गान्धार पञ्चम निपाद ।

पङ्क, पञ्चम म० पङ्क मध्यम द० पङ्क, पञ्चम ।

ऋषभ, धैवत वा श्रद्धाल, म० द० धैवत से ऋषभ पर जाए" (?)

ऋषभ लोप से पाठ्य ऋषभ धैवत लोप से श्रोडव, ना० शा० द० ऋषभ, पञ्चम लोप से श्रोडव ।

शा० जब पञ्चम ऋष, तब पूर्णावस्था, जब निपाद, पङ्क, मध्यम ऋष, तब श्रद्धाल श्रोड पाठ्य, जब गान्धार मंत्र तब पूर्ण पाठ्य (?) म० ऋषभ धैवत की संगति । शा० म० धैवतादि मूर्च्छेता ।

४ मध्यमा ऋ पङ्क, ऋषभ मध्यम मध्यम पञ्चम, धैवत ।

पङ्क, श्रद्धाल, मध्यम पञ्चम, धैवत ।

म. शा. द. पङ्क, मध्यम वा बहुत्व तथा गान्धार वा श्रद्धाल ।

गान्धार लोप से पाठ्य, गान्धार-निपाद लोप से श्रोडव ।

शा० मूर्च्छेता ऋषभमादि ।

- ५ पञ्चमी " ऋपम, पञ्चम म. पाठ पञ्चम (नि) पञ्चम, निपाद (ना.) निपाद, पञ्चम, ऋपम, ना शा म पञ्चम, ऋपम, म. पाठभेद—'प म' । निपाद वा अल्पत्व, शा न. द. म. पङ्ज गांधार मध्यम का अल्पत्व, पञ्चम, ऋपम का बहुत्व । गांधार लोप से पाठ्य, शा० जब ऋपम अंतर, तब औडवातस्या नहीं, शा० पूर्णवित्या में 'ग-नि' संगति, पाठवातस्या में नहीं । म 'नि-म' संगति । शा. मूर्च्छना ऋपमादि । म० पाठभेद—'रि-म' संगति ।
- ६ धैवती पङ्ज ऋपम, धैवत । धैवत ऋपम, धैवत, मध्यम । पङ्ज, पञ्चम वा अल्पत्व म. धारोह में धैवत ऋपम का लपन । पङ्ज-पञ्चमीन औडव, शा म. पञ्चमहीन पाठ्य ।
- ७ नैपादी " निपाद, ऋपम, गांधार । निपाद ऋपम, गांधार । शा० स म प ध' का अल्पत्व । पङ्ज-पञ्चम लोप से औडव ।
- ८ पङ्ज-मध्यमा पङ्ज साता स्वर मध्यम । सातो स्वर । निपाद लोप से पाठ्य, जब 'ग' अंतर न हो तभी 'नि' का अल्पत्व, म. पूर्णवित्या में नि गा. का अल्पत्व । शा. म. मूर्च्छना गांधारि ।
- ९ पङ्ज-धैरि-की पङ्ज, गांधार, पञ्चम, गांधार । ऋपम धैवत वा अल्पत्व, शा. म. ऋपम मध्यम का अल्पत्व, धैवत, निपाद वा 'अल्प-बहुत्व', द. ऋपम का अल्पत्व । शा. म. मूर्च्छना गांधारि ।

शाम	शब्द-संज्ञा	न्याय	उपन्यास	अप्याय-बहुत्व	पाठ्य-क्रीडन-भेद	विशेष
१०	पङ्क्तौ दीर्घा	पङ्क्त, मध्यम, निपाद, धैवत	मध्यम धैवत ऋषभ ना. म. द. धैवत पङ्क्त ।	गान्धार का बहुत्व, शा. द. मन्द्रगान्धार का बहुत्व ।	ऋषभ लोप से पाठ्य, ऋषभ-यञ्जम लोपसे श्रौडव ।	शा. पङ्क्त, ऋषभ वा तारुण्य में मूर्च्छनायोग, तारुण्य ऋषभ वा बहुत्व, मन्द्रगत-ऋषभ वा मध्यम, जब धैवत संज्ञा, तब पाठ्य नहीं । शा. म. मूर्च्छना गान्धारदि ।
११	कैरिक्ती मध्यम	पङ्क्त, धैवत, निपाद ना. म. द. (?)	गान्धार, मध्यम गान्धार निपाद, धैवत, निपाद कभी २ वं० भी (जब 'धनि' भरा, तब ऋषभ भ्रमण्यस । भरा, हो)ना. गान्धार शा.म. द.गा. वृ.नि.	ऋषभ, धैवत का दौर्बल्य, शा. ऋषभ का दौर्बल्य, प. नि. का बहुत्व, म. प. व. का बहुत्व, भ. सब स्वरों का संसार ।	नित्यपूर्णा शा. म. ऋषभ लोप से पाठ्य, म. धै. लोप से श्रौडव ।	
१२	हार्मो-रती	पङ्क्त, मध्यम, निपाद, धैवत द. पङ्क्त के स्थान पर मध्यम	पङ्क्त, मध्यम, निपाद, धैवत ।	गान्धार वा बहुत्व ।	नित्यपूर्णा	शा. म. मूर्च्छना पङ्क्त-जादि ।
१३	श्रीमी	पङ्क्त, मध्यम, निपाद	पङ्क्त, मध्यम, गान्धार निपाद ।	गान्धार-ऋषभ की संगति । म. धैवत, निपाद की भी संगति ।	पङ्क्त लोप से पाठ्य ।	शा. म. मूर्च्छना मध्य-मादि ।
१४	रक्त गान्धरी	पङ्क्त, मध्यम, गान्धार मध्यम, निपाद, ना. द. पङ्क्त के स्थान पर पङ्क्त शा.प.मं.म.प. नि. म.प.प.मं.म.नि.	मध्यम, ना. पङ्क्त पङ्क्त, मध्यम भी, जब धै. नि. मध्य, तब पङ्क्त अन्वयाय, कभी ऋषभ भी ।	म. शा. व. नि. धै. का बहुत्व, म. व. पङ्क्त-गान्धार का शब्दा, मं० मूर्च्छना में ऋषभ धैवत वा मध्यम ।	ऋषभ, लोप से पाठ्य ऋषभ, धैवत लोप से श्रौडव ।	शा. जब पङ्क्त संज्ञा तब पाठ्यकव नहीं । शा. म. मूर्च्छना ऋष-मादि ।

१३ मध्यमो मध्यम
दीर्घवा

प्रद्व-अंश
न्याय

असत्यार्थ

पञ्चम, शा. पङ्ख, मध्यम न. म. ना. पङ्ख वैवत ।
मध्यम

गाव्यार का बहुत्व शा.
ऋषभ का असत्य, मन्द्र
स्वान में गाव्यार का
बहुत्व ।

म. ऋषभ रचित पाठ्य
शा. म. नित्यपूर्ण ।

शा. म. सूक्ष्मता मध्य-
मादि ।

१६ गाव्यार
पञ्चमी

पञ्चम गाव्यार ऋषभ, पञ्चम ।

गाव्यार, पञ्चम ठार
संवार ।
शा. 'रि-म' संगति ।

म. नित्यपूर्ण शा. ना.
द. १ (?)

शा. म. सूक्ष्मता गाव्या-
रादि ।

१७ गांधारो
दीर्घवा

पङ्ख मध्यम म. मध्यम
पाठ्येदे में संश पञ्चम (?)

म० गाव्यार का बहुत्व ।
ना. ऋषभ वा झल्ल, मन्द्र
स्वान में गाव्यार
का बहुत्व ।

ऋषभ लोप से पाठ्य ।

शा. म. सूक्ष्मता ऋषभरादि

१८ गन्ध-
पत्नी

गां. ऋ, वं. संश, ना. गाव्यार
पञ्चम प्रद्व अंश ।

म० 'ऋ गां.' तथा
'धै. नि.' का सञ्चार, म.
द शा. मन्द्र ऋषभ वा
वाहुत्व, 'म.' मन्द्र ऋषभ
का लक्षण (?) द. क्वचित्
मन्द्र ऋषभ का लक्षण ।

पङ्ख लोप से पाठ्य ।

शा. म. सूक्ष्मता हृष्यका

जातियों के स्वर-रूप

शुद्ध जातियाँ

भरतोक अष्टादश जातियों के स्वर-रूप निम्न प्रकार से दिए शुद्ध जातियों और संसर्गा विस्तार जातियों पर प्रथम-पृथक् विचार करना आवश्यक है। प्रथम शुद्ध जातियों को ले लें।

शुद्ध जातियों के लक्षणों में से केवल न्यास-स्वर ही अपरिवर्तनशील होने के कारण वही उनके स्वर-रूप का नियामक है यह हम ऊपर (पृ० १४, १५ पर) देख चुके हैं। इसी सिद्धान्त के अनुसार पङ्कप्राम की चार और मध्यमप्राम की तीन शुद्ध जातियों के सक्षिप्त स्वर-रूप नीचे प्रस्तुत हैं।

इन जातियों के जो स्वर-विस्तार नीचे दिये जा रहे हैं, उनमें मिस्र २ ग्रह-अक्षरों का विनियोग करने में विशेष दृष्टि यह रखी गई है कि ये स्वर-विस्तार उन्हीं प्रकार गायन-वादन-उपयोगी बन सकें जिस प्रकार कि हमारे आज के रणों में ग्रह-अक्षर-मैद के अनुसार मिस्र-भिस्र रूप बनते हैं।

पङ्कप्राम की शुद्ध जातियाँ

१. पाङ्गी

पाङ्गी का शुद्ध रूप पङ्कप्राम के पङ्क को ही ग्रह, अक्षर, न्यास तथा अक्षरन्यास मानने से बनता है। 'पङ्क' न्यास होने से पङ्कप्राम की मूल स्वरवलि का हो इससे उपयोग होगा जो कि काफी सट्ट है। 'सट्ट' कहने का तात्पर्य यह है कि काफी में अक्षर चतुःश्रुति और गान्धार-निषाद पट्टश्रुति हैं, किन्तु इसमें अक्षर विभ्रुति और गान्धार निषाद पञ्चश्रुति हैं। यदि इसी स्वरवलि को तानपुरे का पहला तार पञ्चम में मिलाकर प्रयुक्त करेंगे या बीणा पर पङ्कप्राम के मध्यम को परंपरानुसार पङ्क मानकर वादन करेंगे तो बृहह्म आधुनिक काफी के ही स्वरांतर प्राप्त हो जाएंगे। इन दोनों स्वरवलियों में श्रुत्यन्तर का भेद होने पर भी सुनने में स्पष्ट मान से दोनों एक ही प्रतीत होंगे। इसीलिए 'सट्ट' कहा है। अतः पाङ्गी के शुद्ध रूप का स्वर-विस्तार निम्नोक्त है।—

सा, सारिषा, सारिण्, सारिषा, रिषागृरिण्, सारिषा, सारिगृमगृरिण्, सारिषा, सारिषमगृरिण्, सारिषा, गृरिण्-सारिषमगृरिण्, सारिषा, सारिगृरिण्, सारिषमगृरिण्, सारिषा, सागृमप गृरिण् सारिषा।

अथवा

सा ऽऽ नि० छ सा, सा ऽ नि० छ प, छ प छ सा, छ नि० छ सा, प छ प सा ऽऽ नि० छ सा, सारिण् सा रि ग ऽऽ सा, प छ सा रि ग ऽऽ रि गृ ऽ सा, सारिषम ऽ सा रि गृ ऽ सा, प छ सा रि गृ ऽ सा रि गृ ऽ सा, सारिषम गृ ऽ सा रि गृ ऽ सा, नि० छ सा ऽऽ गृ रि गृ ऽऽ सा रि गृ ऽ सा, सा नि० छ प छ सा रि गृ ऽ सा रि गृ ऽ सा, गृरिण् सारि गृ ऽ सा रि गृ ऽ सा।

सागृमप गृ ऽ गृमप गृ, पमप गृ ऽ निषा ऽ धमप ऽ पमप गृ, मप गृ ऽ प ध गृ, पमप गृ ऽ पधम गृ सा रि गृ ऽ सा।
सा ऽऽ गृमपपसा, सा नि० छ सा, सा नि० छ प सा ऽऽ सा ऽऽ नि० पमप ऽ धमप गृ, सागृमप ऽ धमप गृ ऽ गृ ऽ सा रि गृ ऽ सा।

अथवा

सा ऽ नि॒ घ सा, सा नि॒ घ प घ सा, घ प घ म् प घ सा, नि॒ घ सा, प घ प सा ऽऽ नि॒ घ सा, सारि^म ग्^ऽ सा,
प घ सा रि^म ग^ऽ सा, सा नि॒ नि॒ घ घ प घ सा सारि^म ग्^ऽ सा, ग्^ऽ रि^म सारि^म ग्^ऽ सा, ग्^ऽ रि^म सारि^म ग्^ऽ प घ सा रि^म ग्^ऽ सा ।

पाइजी में 'सागमपघ' से पाच ग्रह अंश बड़े गए हैं। शुद्धा जातियों के लक्षणों में से किसी एक, दो या अधिक लक्षणों के परिवर्तन से उनके विकृत रूप बनते हैं। क्रियाकुशल गुणियों को यह समझने में कठिनाई नहीं होगी कि एक ही स्वरावली में भिन्न २ स्वरो पर कम या अधिक ठहराव करने से, इन स्वरो को बहुल या अल्पत्व देने से उमी एक में से जितने भिन्न-भिन्न रूप बनते हैं। विनेणो, टंकी, रेवा, विमास अथवा देशकार, भूप, शुद्धकल्याण, जैतकल्याण आदि राग इस प्रकार के परिवर्तन से बनने वाले भिन्न-भिन्न रूपों के उदाहरण-स्वरूप, गुणियों को विदित हैं। उसी प्रकार इस शुद्धा पाइजी जाति के ग्रह अंशों के परिवर्तन से, पाडव-भेद से, अपन्यास बदलने से भिन्न-भिन्न रूप बनेंगे जिन में हमारे आज के प्रचलित रागों से निरन्तरतम साम्य दिखाई देगा। इस के कुछ उदाहरण निम्नोक्त हैं:—

गांधार को ग्रह अंश मानने से—

ग्^ऽ रि^म सारि^म ग्^ऽ, रि^म रि^म सारि^म ग्^ऽ, सानि॒ घ प घ सा रि^म ग्^ऽ, साग^म ग्^ऽ प म प ग्^ऽ, साग^म ग्^ऽ, प^ऽ नि॒ साग^म,

प^ऽ नि॒ साग^म प ग्^ऽ, ग्^ऽ स प नि॒ सा ग^ऽ ऽ म ग्^ऽ, घ प घ ग्^ऽ, ग्^ऽ प ग्^ऽ प ग्^ऽ सारि^म ग्^ऽ सा ।

मध्यम ग्रह-अंश मानने से

ग्^ऽ साग^म म, सानि॒ रि^म सा^म, मग्^ऽ रि^म ग्^ऽ म, ग्^ऽ रि^म सारि^म ग्^ऽ सा म, प^ऽ नि॒ घ सा नि॒ रि^म सा म, ग्^ऽ रि^म रि^म रि^म रि^म सा म,
सुवनि॒ सा म, मपघम, घपघम मग्^ऽ रि^म ग्^ऽ पघम नि॒ घपघम, मपघ पपनि॒ घम, मग्^ऽ रि^म सा म, मग्^ऽ रि^म सा ।

पञ्चम ग्रह-अंश मानने से

सारि^म ग्^ऽ प, प^ऽ घ सारि^म म, प म ग्^ऽ रि^म सारि^म ग्^ऽ प, प म प, घ म प, म प प, ग्^ऽ म प, म ग्^ऽ सा ग्^ऽ म प, प म ग्^ऽ सा ग्^ऽ म प,
प म प प, प म प, सानि॒ रि^म सा म ग्^ऽ प, मग्^ऽ रि^म सा ।

धैरत ग्रह-अंश मानने से

प^ऽ नि॒ सा ऽ प^ऽ नि॒ घ ऽ ऽ नि॒ घ मा ऽऽ घ नि॒ घ, घ नि॒ रि^म सा ऽऽ घ नि॒ घ, घ नि॒ रि^म ग्^ऽ प^ऽ नि॒ घ, प^ऽ नि॒ सारि^म ग्^ऽ सा ऽ प^ऽ नि॒ घ,
प^ऽ घ सारि^म ग्^ऽ सा ऽ प^ऽ नि॒ घ, प^ऽ घ ऽ प^ऽ घ नि॒ घ स प घ ऽ प^ऽ घ नि॒ घ, घ सारि^म ग्^ऽ रि^म सारि^म ग्^ऽ घ, घ नि॒ प प, घ नि॒ प प,
म प घ नि॒ घ, म प घ प घ नि॒ घ, ग्^ऽ म प घ प घ नि॒ घ, रि^म ग्^ऽ म प घ प घ नि॒ घ, घ नि॒ प सा ऽ घ नि॒ घ, सानि॒ वन म ग्^ऽ रि^म सारि^म ग्^ऽ प,
प^ऽ नि॒ सारि^म ग्^ऽ सा ।

यहाँ यह प्रश्न ही गजता है कि 'गमपघ' के भिन्न-भिन्न ग्रह-अंश होने पर भी प्रस्तुत स्वर-रसों का धारण प्रायः सा' से ही क्यों किया गया है? उत-उत स्वर में क्या नहीं किया गया? इतना उत्तर यही है कि पञ्च वा प्रथम उधार तो किसी भी स्वरपत्नी के धारण में स्वरो के परस्पर अनुराग नियंत्रण करने के लिए आवश्यक होता है। बिन्दु पञ्च वा यह प्रथमोधार उत ग्रह के रूप में स्थापित नहीं करता, क्योंकि प्रस्तुत स्वरविशेष के निर्माण में जो स्वर प्रथम स्थान पाता है तथा वेन्द्रबिन्दु बनता है, यही ग्रह भव है। 'सा' वा प्रथमोधार (स्वर-सप्त) के नियामक के रूप में) होने पर भी यही ग्रह-अंश ही ऐसा आवश्यक नहीं है। आज के रागों के एक दो उदाहरणों से यह बात स्पष्ट ही जाएगी।

'सा' ता तो सभी रागा में प्रयुगोच्चार अनिवार्य होगा है, किन्तु जवजवय-गी में 'सुनि'रि' इस रागवाची स्वरयोक्ता ५ आरम्भ स्वर 'सु' है, तदनु पदवाण म मात्र निपाद आरम्भ स्वर हाता है। पूरा पाठनी के निम्न २ प्रह भरों प निवार करें ता यह कहना होगा कि यदि 'गुग्म' को प्रमथ पदज का स्थान दो नमोंगे ता प्रथम बार स्वररूप यदा जायेंगे। किन्तु यहाँ ता एज ही स्वररूपको में से (स्वरतराल आदिप्रतिष्ठ रगने हुए) केचन प्रह प्रथ पदवाण ५ परिवर्तन स या पाठन औद्य भेद न निम्न २ विद्वत भेद बनाना वांछित है।

पाठन भेद

पाठनी क लक्षण म श्रपम निपाद का अन्तरय महा है और निपाद वा वर्ग्य पर के पाठव रूप बनाने का विधान है। तदनुसार पाठनी का पाठन रूप कुछ इस प्रकार हागा —

साधुप्रधुता, धुयारिणा धुयारिणा, धुयारिणुधुता सारिमपध, पधसां, सांघ, पधमा, रिंसांघप, मगृसा, धनरिं।

पाठनी का औद्य रूप 'प नि' वर्ग्य कर ने बनाने का विधा है। तदनुसार आभोगी वाट्टा जैसा निम्नलिख रूप बनेगा —

सा, धु सा, धसारिणु ५ रि ५ सा सारिण ५ म गृमरि ५ सा सारिणुध, धमगृ ५ मरि ५ सा धारिणु मधसा, सांघ ५ मधसा मगृरगृमधसा माघ ५ म, पधसांघ ५ म गृमधसांघ ५ म, रिगृमध ५ म, गृमरि ५ सा।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अल्पत्व वा वदुत्व प्राय सवादी स्वर जोडिया का ही होता है। 'रि-नि' बर्न सवादी जोडी नहीं है। किन्तु 'पाठनी' म यही दो स्वर ऐंम है जो प्रह प्रथों में स्थान नहीं पाए हैं। समवत इति-इहाँ का अल्पत्व बहा गया हो। यदि श्रपम के साध-माध उमके सगाध धैवत वा अल्पत्व बना जाता तो आज क र रागरूप प्राप्त हो जाते। यथा भीमपनासी, सुहा धानी आदि। किन्तु 'रि नि' के अल्पत्व का निधान हान स इत का रागरूप को यहाँ स्थान नहीं दिया जा सका है। यदि श्रपम के अल्पत्व का नियम न होता ता काफी, शुद्ध धैवत के बहो सिधुता आदि कई अय रागरूप भी प्राप्त होते। जा भी हो, हमन प्र या में उल्लिखित नियमानुसार यथासभव श्रपम-नि' का अल्पत्व रख कर स्वर विस्तार बना दिए हैं।

२. आर्षभा

इयवा न्यास स्वर पदजग्राम का श्रपम है। उस श्रपम से प्राप्त मूर्च्छना का रूप इस प्रकार है —

रि-ग-म-प-ध-नि-सा-रि
२-४-४-३, २-४-३

श्रपम को पदज मानने से नीचे लिखा भैरवी का मा रूप प्राप्त होगा —

सा-रि-ग-म-प-ध-नि-सा
२-४-४-३-३-२-४-३

प्रह अश-पदजग्राम की मूल स्वररवि के अनुसार श्रपम धैवत निपाद को इस जाति मे प्रह-अंश बनाया गा है। प्रस्तुत मू उना मे यही स्वर क्रमश 'सा' 'प' और 'ध' का स्थान पाते है। अत 'सा' 'प' 'ध' इस जाति में प्र अश बनेगे।

अ-पद-इस जाति म पदजग्राम के पश्चम का अल्पत्व बहा गया है। प्रस्तुत मूर्च्छता म 'पञ्चम' हो 'मध्यम' बन जाता है। अत मध्यम का इम जाति म अल्पत्व होगा।

यहाँ यह प्ररन हो सनता है कि 'आपभी' के प्रह-अंश 'श्रपम धैवत निपाद' का पदजग्राम की मूल स्वररवि के साथ तादात्म्य क्यो स्थानित किया गया है ? 'याम स्वर श्रपम से जो मूर्च्छना बन, उमम जो 'श्रपम धैवत निपाद'

प्राप्त हो, उन्ही का ग्रहण क्यों न किया जाए ? पङ्कजग्राम की मूल स्वरारवली के 'श्रपम-धैवत-निपाद' प्रस्तुत मूर्च्छना में क्या स्थान पाते हैं, यह क्यों देखा जाए ? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि जिस प्रकार न्यास स्वर का ग्राम के मूल स्वर विशेष के साथ तादात्म्य स्थापित किया जाता है और उसी स्वर से मूर्च्छना बनाई जाती है, उसी प्रकार ग्रन्थस्व ग्रह-अंशों का स्थान भी ग्राम के मूल स्वरों में ही समझना चाहिए। और तदनुसार उस मूर्च्छनाविशेष में उनका स्थान निर्धारित करना उचित है। 'न्यास' को तो ग्राम के मूल स्वरों में से एक मानना ही होगा क्योंकि ऐसा माने बिना उसे 'जाति' के स्वर-रूप के निषामक का स्थान नहीं दिया जा सकता। यही नियम 'ग्रह-अंश' के लिए भी लागू करना उचित है। इसे एक उदाहरण से समझ लें। शुद्ध जातियों की शुद्धानस्था में उनका नाम स्वर ही 'ग्रह', अंश, न्यास होता है। आर्षभी के शुद्ध रूप में ऋषम हो ग्रह-अंश, न्यास होगा। ऋषम के न्यासत्व के कारण हमने पङ्कजग्राम के ऋषम को मूर्च्छना से प्राप्त स्वरारवली को आर्षभी जाति के स्वर-रूप का आधार मान लिया। अब नियमानुसार ऋषम को ही 'ग्रह-अंश' भी बनाना है। तन्निमित्त पङ्कजग्राम के मूल ऋषम का ही यहाँ भी ग्रहण करना होगा, तभी एक ही स्वर (नाम स्वर) में न्यासत्व तथा ग्रह-अंशत्व की प्रतिष्ठा हो सकेगी। चिन्तु यदि ग्रह अंश ऋषम को ग्राम की मूल स्वरारवली में से ग्रहण न कर के मूर्च्छना के ऋषम को ग्रह-अंश का स्थान देंगे तो एक ही 'नामस्वर' को 'न्यास' 'ग्रह' 'अंश' बनाने का नियम नहीं रह पाएगा। क्योंकि 'न्यास' (ग्राम का मूल ऋषम) तो मूर्च्छना का पङ्क बन चुका है। इसीलिए 'न्यास' तथा 'ग्रह अंश' को ग्राम के मूल स्वरों में से ही श्रव्यतम मान कर प्रस्तुत मूर्च्छना में उनका स्थान निर्धारित करना उचित है। इसी नियमानुसार ग्रन्थन्यास तथा अलख-बहुत्व का भी प्रस्तुत मूर्च्छना में स्थान-निर्धारण किया गया है। और इसी प्रकार अन्य जातियों में किया जाएगा।

आर्षभी का शुद्ध रूप

पङ्कजग्राम के ऋषम को ही ग्रह, अंश, न्यास मानने से जो रूप बनेगा, वही इस जाति का शुद्ध रूप है। (ऋषम ही इस में पङ्क का स्थान पाता है।)

सारिखा, सारिग ऽ सारिखा, सारिगिः ऽ सारिखा, सारिः घृसा, सारिगम मर्गिःसा, सारिगमग ऽ सारिखा, सारिगम रिगमन गमपघप, मगऽ सारिखा, सापमघऽ मगऽ सारिखा, सारि सागऽ साम गऽ साघ पमगऽ सारिखा, सारिगमनघऽ पमगऽ, पघनिऽसां सांनिघऽ घ्रमगऽ पमगऽ ऽ मर्गिःसा। सारिगमनघनिऽसां सांनिघपमगऽसा सा सां निघप मर्गिःसा। सारिः रिखा गिः मगऽ पम घऽ निघ सांनिघऽसांनिघऽ मर्गिःसा।

ग्रह-अंश-परिवर्तन से निष्पन्न विकृत रूप

(क) पङ्कजग्राम का धैवत यानी आर्षभी का पञ्चम ग्रह-अंश

साऽऽघऽघ, पघऽघऽघ, पघनिऽघऽघ, पघनिऽसाऽ पघऽघ, पघमऽ पघऽसा। पघनिऽसा ऽ सारिघऽघ, पघनि सारिखाऽ निघऽघ, पघऽमर्गिःसा ऽ निघऽघ, पघमऽ ऽ पघमघऽ ऽ मर्गिःसा, साऽ, घऽपमघऽ, पघनिऽघ, पघमघऽ, पघनिऽसां ऽ पघऽ, पघमगऽ पमगऽ मर्गिःसा।

(ख) पङ्कजग्राम का निपाद यानी आर्षभी का धैवत ग्रह-अंश

निऽघऽ घऽ निघऽ, घसा ऽ घऽ घऽ रिऽ निघऽ, घसारिमऽ मर्गिःनिऽघऽघऽ सारिमनऽ ऽ घमर्गिःनिऽघऽसा। घसाघ सारिमनऽ घनिऽसारिमनऽ, घनिऽसारिमनऽ, घसाऽ निऽ रिऽ सागऽरिमऽगऽपमघऽऽमनऽ, पघनिऽघऽमनऽपघऽ पमगऽ निऽ घऽ मर्गिःघऽ, घा रिघऽ घन घन निघऽ घऽमर्गिः निऽ रिऽसा।

पाठ्य-श्रीछन्द-भेद—आर्षभी में पाठ्य-श्रीछन्द भेद बनाने के लिए क्रमशः पङ्कज और पङ्कज-धैवत का स्थान बदले की दृष्टि, मर्ता और नाथदेव ने कहा है, और भरत के वर्तमान टागवर पाठ में 'निः' के स्थान का विधान

मिलता है। संभवतः यह पाठ भ्रष्ट होगा और मतगुणितन तथा गान्यवेव श्री भरत वा शुद्ध पाठ मिला होगा। यहाँ यह स्मरणीय है कि प्रीडव रुन बनाने के लिए विभिन्न जानियों में जिन-जिन स्वर-जोडियों का त्याग करने को कहा है, वे सवादी जोडियाँ ही होती हैं। 'प-नि' कोई सवादी जोडी नहीं है। इसलिए दक्षिण, मर्तग और गान्यदेव ने जो 'सा-न' कहा है उसी को प्राय मान कर हम हम जाति के पाठव-प्रीडव रुन दे रहे हैं। पड्डग्राम के 'सा-न' ही आर्षभो जाति में 'नि-म' बन प्राते हैं। तदनुसार 'नि' वर्ज्य पाठव और 'नि-म' वर्ज्य प्रीडव रुन निम्नोक्त हंगे।

पड्डग्राम के 'सा' यानी आर्षभो के 'नि' लोप से पाठव रूप

सा-धसा, सुसारिसा, सारिवः रिःरिःसा, पःसारीगः रिःरिःसा, सारिः मःरिःरिःसा, सारिः मः रिःसा रिःरिःसा साधन धःरन, पवःपवः, धः मःरिःरिःसा। सारिवः धसा, धसा रिः र सा पः मःरिःरिःसा।

पड्डग्राम के पड्डव को यानी आर्षभो जाति के निपाद को, जैसा ऊपर दिखाया है, वर्ज्य करने से वर्तमान विलासखानी तोडी चदश रुन स्पष्टतया अविभूत होगा। 'सदृश' बहने वा तात्पर्य यहाँ है कि विलासखानी में निपाद का प्रयोग होना है और यहाँ निपाद वर्ज्य है। तदनु पड्डग्राम के पड्डव-अक्षर यानी आर्षभो जाति के निपाद-मध्यम के त्याग से भूपाल तोडी का पूर्ण रूप हमारे सामने खडा होगा। यथा :—

सारिः रः सा, साधन पःरिःसा, सारिः मः पः रिःरिःसा, सारिः रिः मः रिःपः मः रिःरिःसा, सारिःपः, रिःरिःसा वः रः, पःसा रिःरिःसा रिः रः सा, धसा रिः रिः रः सा, धसाधः पः रिःरिःसा।

३. धैवती

धैवती में धैवत न्यास, ऋषभ धैवत ऋह-अंश और ऋषभ-धैवत-मध्यम ऋषभन्यास है। न्यास-स्वर धैवत के अनुगार निम्नलिखित मूर्च्छना बनेगी—

धैवत से आरंभ मूर्च्छना—अ नि सा रि ग म प ष
धैवत को पड्ड मानने से सा रि ग म र ध वि सा
प्रास स्वरावलि २ ४ ३ २ ४ ४ ३

ऋह-अंश—धैवत-ऋषभ। पड्डग्राम का धैवत इस जाति की मूर्च्छना में पड्ड बनता है और प० ग्राम वा ऋषभ इनमे शुद्ध मध्यम बनता है। इस प्रकार पड्ड और मध्यम इनमें ऋह-अंश है।

धैवती का शुद्ध रूप

पड्डग्राम के धैवत को ही ऋह, अंश, न्यास, ऋषभन्यास बनाने से धैवती का शुद्ध रूप बनेगा। यथा—
सा ऽऽ रिःसा, सारिवः ऽऽ रिःरिःसा। सातनु धः सारिः, मःरिः मः रिः सा। सारिःमः मः मः मः रिः सा, सारिवः मः मः मः रिः सा, सारिवः मः मः मः रिःसा, सारिवः धः मः रिःसा, सारिवः धः रिः मः रिः सा।

अथवा

सारिःमः रिः मः रिः मः रिःसा, सारिःमः मः रिःमः रिः मः रिःसा। सारिःमःपः ऽऽ मःरिःमः ऽऽ मःधः, मःरिःमःपः, मः मः रिः मः धः ऽऽ मः मः रिः मः सारिःमःपः ऽऽ मः रिःसा। सारिःमःपः, सारिः रिः सा, सारिःमः रिःसा धः रिःमः, धः रिः सा रिः सा धः रिःसा, मः रिःमः रिःसा धः रिःसा, सारिः रिःसा धः रिःसा, मः रिःसा धः रिःसा, मः रिःसा धः रिःसा, मः रिःसा धः रिःसा, सारिः रिःसा मः रिःसा।

अथवा

सारिर्ग ऽऽ सारिर्सा, घ्नित् सारिर्ग ऽऽ सारिर्सा, सारिर्ग ऽऽ मग् ऽऽ सारिर्सा, रिसा गूर् मग् ऽऽ सारिर्सा, सारिर्ग
सारिर्मा ऽऽ सारिर्सा, मग्ध ऽऽ मूर् रिर्गम्ध् ऽऽ मग्, म्धु रिर्गम्ध् ऽऽ मूर्, गूर् रिर्गम्ध् ऽऽ मग्, गूर्सारी म्ग् ऽऽ म् ऽऽ

सारिर्सा, सारिर्गम्ध् ऽऽ म्धु ऽऽ म्धुसांनि ध, सां नि नि ध, घ्नित् रिंसां ऽऽ निधु ऽऽ घ्निसारिर्सांनिर्सांऽऽनिधु ऽऽ निधुसां
निर्सां ऽऽ सारिर्सां ऽऽ निधु ऽऽ घ्नग्धु ऽऽ मूर्, रिर्गम्धु ऽऽ मूर्, रिग् ऽऽ सारिर्गु ऽऽ मग् ऽऽ सारिर्सा ॥

जैसे ह्य् जानते हैं कि वसन्तपुरारी नाम के राग के पूर्वी में भैरवी और उत्तराग में भैरवी के स्वर प्रयुक्त होते हैं, तद्वत् यहाँ धैरवी जाति के जो दो 'शुद्ध' रू दिए गये (द्वितीय और तृतीय) उनमें निम्नोक्त रागाग स्पष्ट दिखाई देते हैं। एक में पूर्वाग में तोड़ी और उत्तराग में भरवी और अन्य में पूवाग में भैरवी और उत्तराग में तोड़ी दिखाई देती है। साथ ही, दो मध्यम जहाँ-जहाँ 'मन्म' के रू म एक साथ प्रयुक्त हों, वहाँ उनके समय के त्रिपलित वा आभास भी हो सकता है। यद्यपि आज के हमार प्रचार में ऐसे कोई मिश्र रागरू नहीं हैं, फिर भी धैरवी के स्वरों में ये रूप ऐसे निस्तर रह हैं कि गुणिजन इस प्रकार के मिश्रण की मधुरता और प्रियता को देखते हुए उसे प्रचारित करें तो कोई बाधक्य नहीं। आजकल नवीन रागा के निर्माण अथवा प्रचार के मोह में अनेक संवादहीन राग अस्तित्व में आ रहे हैं, उनकी अपेक्षा तो विषण की उपयुक्त रीति अधिक समुचित और प्राण है। म्त्वु।

धैरवी के विकृत रूप

पह्जप्राम का 'ऋपम' यानी धैरवी का 'मध्यम' ग्रह-अंश

सा, सारिर्मऽ, घ्नित् रिऽमारिम, म गूर् रिऽ म, म ध् मग्, रिमऽ मग्, रिमऽ रिमऽ म्धु मग्, मग्धु म्धु म्धु म्,
मग् म्धु नि धुऽ ध् म् म्, रि मऽ रि मऽ रि घऽ रि घऽ नि घऽ म् म्, मग् म्धु ऽ निधुऽ ध् म् ऽ घ् म्, म् गूर् रिऽ म्,
गूर् रिऽ सा। सारिर् मऽ मग् ऽ म्धु सा, नि र् रिं सां, ध नि गूर् रिं सां, सां नि रिं ऽ निधु, म्धु ऽ निधुऽ मग् म्,
गूर् रि मऽ गूर् रिऽ म् गूर् रिऽ म् म्, म् मऽ मऽ मग्, म् गूर् रिऽ सां सा घ् ध् नि गूर् रिऽ सा।

ध्यान रह कि जहाँ २ वण स्वरों का प्रयोग दिखाया गया है, वहाँ-वहाँ तदनुसार ही प्रयोग किया जाए, तभी वांछित रूप प्राप्त होगा।

पाठ्य-औड-भेद—यह उल्लेखनीय है कि इस जाति की मूर्च्छता में मध्यम के दो रूप और पञ्चम का अभाव होने से यह स्वर-रूप वास्तव में पाठ्य ही है और ममवत् इमोलिए भरत ने इसका पाठ्य रूप बनाने का विधान नहीं दिया है। केवल प० प्राम के 'सा-प' (मूर्च्छता के 'गु-नि') वर्ण्य परके औडव रूप बनाने को कहा है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि पाठ्य-औडवित इन जाति-लक्षणों का स्पष्टीकरण करते हुए भरत ने जानिया में "चतु स्वरप्रयोगोऽपि देशापि प्रयुज्यते" यह कहकर चार स्वरों का प्रयोग भी विहित माना है। इस प्रकार प्रस्तुत रूप का औडव नामकरण होते हुए भी यह चार स्वरा की ही विशेष (विशेष) रचना है।

औडव (चतु स्वर) रूप

सा ऽ घसा, घ सारिऽ सा, घ् घ् सां, घ सारिऽ सा, सारिर् मऽ रिऽ सा, घ सा सारिऽ रि मऽ रिऽ सा,
घ सारिऽ सा सारिऽ रिऽ म्, मग्धु ऽ रिऽ मऽ मग्, मग्धु ऽ घ म्, रिऽ मऽ मऽ मऽ मग् म्धु ऽ घ् म् घ् म्, मग्
मग्धुऽ घ् सांघुऽ म्धु सारिऽ रिं सां ऽ सांघुऽ घ् म् मग्, रि म् मग्, रि ऽऽ सा।

- इस स्वर-रूप को बुन्दराजन में प्रयुक्त करने में गान्धोगोत्री पार्वसपीत द्वारा भावाभिव्यञ्जना में इसका विशेष उपयोग हो सकेगा। इस प्रकार के प्रयोग के एत नवने के रूप में इन स्वरवृत्ति का निम्नलिखित सप्तवद्ध रूप प्रस्तुत है।

सा	—	—	ध्	—	—	—	सा	—	—	—	ध्	—	सा	—	
रि	—	सा	—	ध्	—	ध्	—	—	—	—	ध्	—	सा	—	
रि	—	सा	—	सा	रि	—	—	म	—	—	म	—	रि	—	
—	—	सा	—	ध्	—	सा	—	सा	—	रि	—	रि	—	म	—
—	—	—	—	म	—	रि	—	—	—	सा	—	ध्	सा	रि	सा
मा	रि	म	रि	म	—	—	—	म	म	म	—	रि	—	म	—
म	—	म	—	म	म	ध	म	—	ध	म	—	रि	—	म	—
म	—	म	—	सा	—	रि	—	म	—	रि	—	रि	—	म	—
म	—	म	—	म	म	म	ध	—	ध	म	—	ध	म	—	म
म	—	—	—	रि	—	म	—	म	—	म	—	म	—	ध	—
सा	—	—	—	सां	ध्	—	—	म	म	—	—	म	ध्	सां	ध
ध	सां	रि	सां	रि	सां	—	—	सां	ध्	—	—	ध	—	म	—
म	म	—	—	रि	—	म	—	म	—	म	—	म	—	रि	—
—	—	सा	—	ध्	सा	रि	सा	रि	—	म	—	रि	—	सा	—

४. नैपादी

इस का न्यास स्वर प० ग्राम वा निपाद है। तदनुसार निम्नलिखित मूर्च्छनात्मक बनेगा:—

नि - सा - रि - म - म - प - ध - नि
 सा - रि - म - म - प - ध - नि - सां
 - ४ - ३ - २ - ४ - ४ - ३ - २ -

अर्थात् सरल आरोहावरोह रूप यह होगा — सारिगमपनिशां सांनिधपमगरिसा।

ग्रह अंश—पङ्कजग्राम के 'निरिग' के तीन स्वर इन के ग्रह अंश हैं। यही स्वर प्रस्तुत जाति की मूर्च्छना में क्रमशः 'सागम' का स्थान पाते हैं। अतः क्रमशः 'सागम' को ग्रह-अंश बताना होगा। यही तीन स्वर अपन्यास भी हैं।

अल्पस्व—पङ्कजग्राम के 'सा-प' अर्थात् नैपादी के 'रि-ध' वा मत्वस्व है।

पाहव-ओडव रूप—पङ्कजग्राम वा 'सा' अर्थात् नैपादी का 'रि' वर्ज्य कर के पाहव रूप बनेगा और पङ्कजग्राम वा 'सा-प' अर्थात् नैपादी का 'रिध' वर्ज्य कर के ओडव रूप बनेगा।

नैपादी का शुद्ध रूप

पङ्कजग्राम के निपाद को ही ग्रह अंश न्यास मानने से नैपादी का शुद्ध रूप बनेगा। (निपाद ही इस जाति में पङ्कज का स्थान पाता है)

सा ऽ रिपरिसा, रिगम ऽ रिपरिसा, सारिगम प ऽ मग ऽ रिपरिसा, सागम ऽ धपमग रिग, गमप गमपग मगरिसा, सा ऽ ममपनिशां, सांनिधप मगरिसा, मगरिममनिशां, सा ऽ निपसां, धमपनिशां, धमप निशां, गमप ऽ रिधर्षां, सां ऽ निधपमगरिसा।

अथवा

सा ऽ सान्निभाग ऽऽ रिता, सारिसान्निभा ग ऽऽ रिता, सान्निभ्या ग ऽऽ रिता, - सान्निभागमग ऽ रिता, सान्निभा
गमग गमर ऽऽ मग, सागमग ऽऽ मग, साग गम मगग ऽऽ रिता, सागमग ऽ म, गमपनि ऽऽ धृप ऽ म, पगमपनि ऽ धपम,
सागमपनिसा ऽ पवपम ऽ, रिता ऽ निवपम ऽ, गमपम ऽ गमवपम ऽ, गमनिवप ऽ म, सागमग ऽ प ऽऽ मग, पम ऽ पग ऽ
मग ऽ रिता ।

अथवा

हेमकल्याण सदृश रूप

सापु ऽ सारिसा प ऽ धृ ऽ पु, सा ऽऽ निता, साग ऽ मरि ऽ सा ऽ पु ऽ धृपु सा, सा ऽऽ गम गप ऽ पु ऽऽ मरि ऽऽ
सा पु धृ ऽ पुसा, सागमप ऽ धर ऽ सा ऽ प ऽ धर, ग ऽ मरि सा पु ऽ धृपु ऽ सा ऽ निता ।

अथवा

सावनीकल्याण सदृश रूप -

सा ऽ रिता सा रिता ऽ सा, ग सा रिता ऽ सा, साग सा रिता ऽ सा, ममग रि ग ऽ सा, गगरिसारि ग ऽ सा,
साधनिपुनि ऽ रिरिसान्निभा ऽ ग सा रिता ऽ सा, नि धृ नि ऽऽ पु, पन्निताग ऽ सा रिता ऽऽ सा, पधपप ऽ गमरिग ऽ सा
सारिन्निभा ऽ पधपप ऽ सारिन्निभा ऽ पधपप ऽ गमरिग ऽ सा रिता ऽ सा, पुनि धृ नि सा साग सा रिता ऽऽ सा, सागमपनिसा ऽ
नि धृ नि ऽऽ प, धपप ऽ गम रि ग ऽ सा रिता ऽ सा ।

प्रह-अंश-परिवर्तन से प्राप्त विकृत रूप

पङ्कजग्राम का श्रेष्ठम यानी नैपादी का गान्धार प्रह-अंश

सा, गमपनिष्ठा, गमपनिष्ठा गऽऽरिन्निभा, गऽऽनिताग, गरिसान्निभाग, गसा गनि गऽऽरिन्निभा, ग^पमगऽ रिन्निभा,
गमपगमग, गमगसागमग ऽऽ गमग, पुनितागमगऽ गमग, गवरानि ऽऽ धरन ऽ गमग गमर सा ऽ नि धपप ऽ गमग, गम गप
गनि ऽ धरप ऽ गमग, गमपनिसागं ऽऽ रिन्निभा ऽ धपप ऽ गमग ऽ मग ऽ रिन्निभा ।

पङ्कजग्राम का गान्धार यानी नैपादी का मध्यम प्रह अंश

सा, मपनि ऽ सा धृनि ऽ सा ऽऽ धृपु ऽ म, मपु मपनि ऽऽ धृनि ऽऽ सा ऽऽ धृपु ऽ म, म पु सा नि रिता ऽ धृपु
ऽ म, मपु धृपु ऽ म, मपु मपुसा ऽ सारि निता ऽ धृपु ऽ म, मपु मपनि ऽ सा धृनि ऽ सा, मपुनिता धृनि ऽ सा, साम,
सान्निरिता म, मपु सा नि रिता म, म ऽऽ म रि ऽ सा ऽ धृपु ऽ म, मपुनिता म, मगप ऽ म, सामगप ऽ म, मपु धप-
ऽ म, ममम धपप ऽ म, मपधनिमां ऽ धप ऽ म, मप पनि नितां ऽ धप ऽ म, मप पम धप ऽ म, सारिन्निभा म ऽ मरि
सा ऽऽ धृपु ऽ म, पुनि ऽ सा ऽ धृनि ऽ सा ।

इन स्वरावतियों में 'मज्झा वेदार' का आनिर्भाव दिखाई देता है।

मध्यम या 'अपन्यासत्व' स्पष्ट करने से प्राप्त रूप

सा ऽऽ रिगम ऽऽ म^{रि} ग ऽ रिता, सा ऽ रिगमप ऽ म, ममगरिगमप ऽ म, ममपसागमप ऽ म, गमग सागमप ऽ म,

धप ऽ धम ऽऽ म, मपयनिसा ऽऽ धप ऽ म, मग^{रि} ग ऽ रिता ।

ऐसा 'गौड़' का (गौडमहहार का बुद्ध आभास देने वाले गौड़ का) इस स्वरावली में दर्शन होगा ।

अथवा

ग^{सा} ऽऽ गमप ऽ ध^ग ऽऽ म, धप ऽ धम ऽ म, सागमप^{धप} ऽ धम ऽ म, गमपनिसा ऽऽ धप ऽ धम ऽ म, साप^{गमगमप} ऽ धम ऽ म, रि^ग ऽऽ रिता ।

कौमल निपाद-रहित लच्छासाह की इन स्वरावतियों में भ्रंजी दिखाई देगी ।

पाडव रूप

पड्जग्राम का पड्ज अर्थान् नैपादा का ऋषभ धर्ष्य करने से

सा ऽऽ सानिसा, सानिधनि ऽ सा, सानिधपु ऽ धनि ऽ सा, सानिधुनिसाग ऽ म, मग ऽऽ सा, निधु सानि गता^{मग} ऽ म, मग ऽऽ मा, निधु सानि गता मग पम पम पम पम ऽ म, पमगसा ऽऽ निधुनिसाग ऽऽ म, पमधपनि ऽऽ सानिवा^{सा} ऽऽ म, सानिधर ऽऽ मग, ममनिसानिधप ऽ मग, धनिसा ऽऽ निधपमग सागमग ऽ मग ऽ सा ।

पड्जग्राम का पड्ज पञ्चम अर्थान् नैपादा का ऋषभ धैवत धर्ष्य करने से औडव रूप

सा, सानिसा गऽश्वा, सानिपनिसा ग ऽऽ सा, गसा मग ऽऽ सा, साग मग ऽऽ सा, पम पम ऽऽ सा, गदा^ग ऽऽ सा, सागमपनिप ऽ पम ऽ पम ऽ सा, गसा मग पम निर सानि पम ऽ पम ऽऽ सा, सानिसा ग ऽऽ निपनिसा ऽ सानिर्ग^{गऽमे} ऽ मी ऽ सा, सानि ऽऽ प मग ऽऽ सा, पनिसा गमपनिसा नैपादा ऽऽ गमर्गो ऽऽ सा निरानि ऽऽ प गमग ऽऽ मा ।

पड्जग्राम की चार शुद्धा जातियों के बाद अब मध्यमग्राम की तीन शुद्धा जातियों का विवरण क्रमशः दिना जा रहा है ।

मध्यमग्राम की शुद्धा जातियाँ

५. गान्धारी

न्यास—गान्धार—

मध्यमग्राम के गान्धार की मूर्च्छना से निम्नलिखित स्वर-रूप प्राप्त होता है जो आधुनिक 'बल्याण-महारा' है ।

ग - म - प - ध - नि - सा - रि - ग

- ४ - ३ - ४ - २ - ४ - ३ - २ -

सा - रि - ग - म - प - ध - नि - सा

ग्रह अंश—मध्यमग्राम के 'सा - ग - म - प - नि' यही स्वर प्रस्तुत मूर्च्छना में क्रमश 'घ - सा - रि - ग - प' का स्थान पाते हैं । अत मूर्च्छना के 'घ' 'सा' 'रि' 'ग' 'प' को क्रमश प्रह-अराय देना होगा ।

अल्पत्व—मध्यमग्राम के 'रि - घ' यानी गाधारी के 'नि - म्' या अल्पत्व है ।

पाडव औडव—'रि' या तो 'नि' लोच से पाडव और 'रि - घ' यानी 'नि - म्' तोप से औडव रूप बनेंगे ।

गान्धारी का शुद्ध रूप

मध्यमग्राम के गान्धार को प्रह, अश, न्यास मानने से गान्धारी का शुद्ध रूप प्राप्त होगा । गान्धार ही यहाँ पडज स्थान पाता है ।

सा ऽ निधसा, मु धानिधसा, प्रतिसा निरि ऽ सा, सानिरि ऽ सा, रिगि ऽ सा, गरि ऽ म्गरिऽसा, सारिगम्नऽम्गरिऽसा, सारिगम् ऽ प धम्गरि ऽ सा, सारिसाग साम्साप साघ ऽ पम्गरि ऽ सा, सारिगम्नधनिध ऽ प ऽ म्गरि ऽ सा, सारिगम्न (निधनिसा, सानिधप'म्गरिऽसा ।

अथवा

मध्यमग्राम के 'रि घ' यानी 'नि म्' को अल्पत्व देने से भूपकल्याण वा-सा रूप खडा होगा ।

यथा —

सा ऽ निधसा, पुधसा, सा^प नि^ध सा^ग रि^ध, निध सा ऽ नि^ग रि^ध, गरि ऽ सा, सा^ग रि^ध ऽ ग, सानि गरि^ध ऽ ग, गप ऽ म्ग ऽ, ग^ग रि^ध ऽ ग प ऽ म्ग ऽ रि^ध ऽ सा, सा^ग रि^ध ऽ ग ध^प सा^घ ऽ ऽ प ऽ म्ग, ग^{सा} ध^प ऽ निधप^ऽ म्ग, सारिगपघसा^ऽ निधप^ऽ म्ग, रिग सारिगपघसा^ऽ निधप^ऽ म्ग, गरि ऽ गप ऽ म्ग^ऽ रि^ध ऽ रिग^ऽ रि^ध ऽ सा ।

अथवा

मध्यमग्राम के 'घ' यानी 'म्' का अल्पत्व करने से शकत सदश रूप का निर्माण होगा । सा, गरि गप रि^ध ऽ रिधा, रि^ध सानि गरि, गप रि^ध ऽ रिधा सा ऽ गरि^ध ऽ ग ऽ प, गानिधसानि ऽ धन्प^ऽ ग, गपनिधसा, सानि ऽ धन्प^ऽ ग रि^ध गधरिधा ।

ग्रह-अंश परिवर्तन से ग्राम विकृत रूप

मध्यमग्राम का पडज यानी गान्धारी का धैरत प्रह अश

धनिसागऽ म्गरिऽसा, धनिसा धनिसागऽ म्गरिऽसा, धनिध धुवानि ऽ धनिध ऽ म्गरिऽसा । धनिसागम्नऽ म्गरिऽसा । निधा गन्धा^ऽ म्गरिऽसा, धनिसा गन्ध^ऽ प^ऽ धन्म^ऽ म्गरिऽसा, धनिसागम् धनिध^ऽ धनिसागम् धुनिसा^ऽ निधप^ऽ म्ग^ऽ म्गरिऽसा । निधु सा^ऽ धनिधा^ऽ धनिध^ऽ धनिध^ऽ धन्म^ऽ म्गरिऽसा । धुसानिध धरिमानि^ऽ धगरिधा^ऽ धन्म^ऽ रि^ध धन्प^ऽ धनिध^ऽ सानिध^ऽ धरिसानि^ऽ धुग^ऽ रि^ध सा^ऽ सानिध^ऽ धन्म^ऽ म्गरिऽसा ।

मध्यमग्राम का मध्यम यानी गान्धारी का अष्टम प्रह-अश

ग^ग रि^ध सा^ग रि^ध, रिग^{रि} रि^ध ऽ ग^प रि^ध रिग^{रि} गप^{सा} ध^प रि^ध रिग^ग प^घ ऽ ऽ म्ग^ऽ रि^ध, रि^ध ग^प सा^घ सा^{नि} रि^ध ऽ रिग^{रि} रि^ध निधप^ऽ ग^ग रि^ध, रिग^{रि} रि^ध ।

इस प्रकार शुद्धवल्ग्याण-मदृश रूप खडा होगा। शुद्धवल्ग्याण में 'निम्' गण्यं वर्ज्यं करने 'सारियावर्षा' स्त्री स्वरान्तली से ऋषभ वा प्राक्त्व प्रौर 'परि' संगति वा धम्यास रखा जाता है। किन्तु यहाँ 'निम्' का भी अल प्रयोग दिखाया गया है। इसीलिए 'शुद्धवल्ग्याण-मदृश' कहा है।

मध्यमग्राम का पञ्चम यानी गान्धारी का गान्धार प्रह अंश

नेऽ^१ निऽसाग, गन्धगम्ऽग, गन्धिसाम्ऽसाग गरिऽमा। गऽ गम्^१ म् गन्धगन्धिसाम्ग, गम्गऽ सात्तिष्वर^१ ग्
गम् धनिऽ निसाम्ग गन्धगम्ऽग गन्धिसाम्गम्ऽ ग, गन्धिसाम्गानिऽ धम्गम्, पऽम् धम्गम्, साऽनि रिऽनिऽ धम्ग
म्, पम्धऽ धम्गम् गऽ गम्धगम्ऽग रिऽसा।

इस प्रकार पूरिया-वल्ग्याण- जैसा रूप इस स्वरान्तली से खडा होता है।

मध्यमग्राम का निपाद यानी गान्धारी का पञ्चम प्रह-अंश

पऽ पवगपऽ पऽसात्तिऽपऽ पऽगप, पधधनिधपऽ पवगप, पधसारिगिऽ सात्तिधपऽ पऽगप, पम्धऽ
पऽसात्तिऽ, पम्गारिसानिऽपऽ ग पऽपऽपऽ, पवगऽ पम्गऽ म्पऽ प, गगारिसानिऽपऽ पऽप, पध धसा सात्ति
रिऽ गरिसानिऽपऽ पधगप।

पहाडों में गाई जाने वाली 'पहाडों' सदृश यह रूप है।

पाडव-रूप

मध्यमग्राम या ऋषभ यानी गान्धारी का निपाद वर्ज्य करने से प्राप्त पाडव रूप

गान्धारी के शुद्ध रूपों में 'निपाद मध्यम' का अल्पव रखते हुए कुछ रूप प्रस्तुत किए गए हैं। उसी प्रकार निपाद का संपूर्ण त्याग करके पाडव रूप भी बनाया जा सकता है।

गान्धारी के औडव रूप के लिए विशेषोल्लेख

शुद्ध जातियों के एकाधिक प्रह-अंशों के अनुसार हम ने ऊपर उन-उन जातियों के विद्वत भेदों का निर्माण किया। अब इन एकाधिक प्रह अंशों पर एक अर्थ दृष्टिकोण से भी विचार कर लें।

हम जानते हैं कि भरत ने अष्टादश जातियों का निर्माण मुख्यतः नाट्य में रस-भावानुकूल अभिव्यक्तता के लिए किया है। यदि हम दृष्टिकोण से विचार करें तो यह कहना होगा कि भरत को नाट्य की विभिन्न परिस्थितियों में उचित गति में परिवर्तित होनेवाले भावों की अभिव्यक्ति के लिए जातिगत भिन्न भिन्न प्रह-अंशों से उचित स्वरान्तियों का उपयोग अनिवार्य रहा होगा। इन दृष्टिकोण के उदाहरणार्थ गान्धारी के पाँच प्रह-अंश पर तथा उनके औडव रूप पर विचार करें।

गान्धारी में मध्यमग्राम के 'स-ग-म-प-नि' के पाँच स्वर प्रह अंश बताए हैं। न्याय स्वर गांधार के उचित मूर्च्छना में यही पाँच स्वर क्रम-भेद से 'स-रि-ग-प-ध' का स्थान पाते हैं। ऊपर हम गांधार की मूर्च्छना

* कुछ लोग वल्ग्याण को ही पूरियावल्ग्याण कहते हैं, किन्तु वास्तव में ये दोनों राग भिन्न हैं। पूर्ववल्ग्याण में ऋषभ कोमल और शुद्ध धैवत के साथ तीव्रतर मध्यम के योग से वल्ग्याण का पूर्वरूप दिखाया जाता है, किन्तु 'पूरियावल्ग्याण' में 'पूरिया' के स्वर में शुद्ध ऋषभ के प्रयोग से 'पूरिया' में 'वल्ग्याण' का दर्शन कराया जाता है। चारिखित स्वरान्तली में ऋषभ का भी अल्प प्रयोग दिखाया गया है, अतः इन 'पूरिया-वल्ग्याण' मदृश कहा गया है।

से प्राप्त 'कल्याण-सदृश' स्वरावली में इन पाँच ग्रह-अंशों के अनुसार गांधारी के अन्तर्गत विवृत भेद बना कर दिखा चुके हैं। अब यदि ऊपर दिये हुए प्रथक् प्रथक् विवृत भेदों के स्थान पर गांधारी की मूल स्वरावली (जो कल्याण-सदृश है) को आधार मान कर 'सरियाघ' इन पाँच ग्रह अंशों के क्रमशः भिन्न भिन्न मूर्च्छनाएँ बनाई जाएँ, तो उनके निम्नोक्त रूप सामने आएँगे—

१	'सा'—ग्रह अंश—	सा - रि - ग - प - घ - सा - रि - ग - प - घ -
		४ ३ - ६ - ३ - ६ - ४ - ३ - ६ - ३ -
	'रि'— " —	सा - रि - म - प - नि - सा
		३ - ६ - ३ - ६ - ४
	'ग'— " " —	सा - ग - म - घ - नि - सा
		६ - ३ - ६ - ४ - ३
	'प'— , —	सा - रि - म - प - घ - सा
		३ - ६ - ४ - ३ - ६
	'घ'— " " —	सा - ग - म - प - नि - सा
		६ ४ - ३ - ६ - ३

(स्मरण रह कि गांधारी में मध्यमप्राय के ऋषभ-धैवत यानी 'नि-मू' का अलंकार है और उन्हीं के स्थान पर ऋषभ रूप का निर्माण करने को कहा गया है। अतः ऋषभ रूप 'सा-रि-ग-प-घ' बनता है और यही पाँच स्वर इसमें ग्रह अंश भी हैं।)

गांधारी के ऋषभ रूप को ऊपर दी हुई मूर्च्छनाया का नाट्य में नावानुसूय प्रयोग इस प्रकार हा सकता है कि मूल गांधारी जाति की कल्याण सदृश स्वरावली का गायन या वृत्तपदान्त हो रहा हो, उसके बीच में कभी भूपाली का आतिर्भाव करने पुन कल्याण पर लीग जाय कभी सारंग दिवाया जाए, कभी मानसोर्ग, दुगा या भीम का आतिर्भाव किया जाए और पुन मूल स्वरावली पर सांग घ या जाइ। इनो भाति अथ जानिया में भी वृषजन प्रयोग कर सकते हैं। इस प्रकार नाट्य प्रया में धाण-गण बदलने हुए भावा की अभिव्यक्ति और तानुनून सतीत-योगना करने के किर् भरत ने एक ही जाति में अनन्य ग्रह अंशों को स्थान दिया हो ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

उद्युक्त दृष्टि से विचार करते हुए यह कल्पना हो आता स्वभाविक है कि समस्त भरत को यात शुद्धा आतिरिया से एकदिक ग्रह अंश कटव के छोड़े कुछ एकर हा मित्रियोग अतिरेन रहा हो। यह स्वरणीय है कि उदाले शुद्धा जानिया के विवृत भेदों सब्बा का वहा निर्देश नही किया है, एतना ना यह कल्पना हो आती है कि शायद ग्रह अंश आद्याय के परिवर्तना से उह एत ही मून स्वरावति के रप्या पट पर भिन्न भिन्न नावों के अनुसूय अम्पयोरेन से सचरण करनेवाले भिन्न भिन्न मूर्च्छना प्राप्त कता का प्रयाग अभ्युत् रहा हा और इमोकि उदाले विवृत भेदों की स्वतंत्र पाठा स्वीकार न का हो और उनको संख्या न जितार हो।

इस दृष्टि से विचार करने पर भा 'व्याघ' का नियामकर अद्युत बना रहता है क्वाकि जाति की रपायी या पापारमून स्वरावति का निर्माण यहाँ भी 'व्याघ' से हा हाता है।

६. मध्यमा

इत्या 'गग हरर मध्यमप्राय का मध्यम है। अनुगार निम्नवित्तन प्ररररना बोना —

म प्राय के 'म' की मूर्च्छना

म - प - प - रि - ग - म

'म' को 'सा' मानते में प्राप्त स्वरस्यली

गा-रि-ग-म-प-य-नि-सं।

-३-४-२-४-३-२-४-

यहां यह पुन उल्लेखनीय है कि पञ्चमराग या पञ्चम तथा मध्यमप्राग वा मध्यम दोना वा वागा पर एक ही स्थान है। किन्तु मध्यमप्राग म ध्रियत चतुःश्रुति होने के कारण उसने मध्यम की मूर्च्छना में समाज सदृश स्वरसंज्ञि प्राप्त होती है, जब कि पञ्चमप्राग की पाइजी में बाणा के उसा स्थान स गापा तन्त्र स्वरसंज्ञि उपलब्ध होती है। 'समाज मध्य' यहन वा यहाँ तादाय यही है कि इसम प्रापम त्रिश्रुति है जब कि बाणा के बाज के तार वा परमारागुसार मध्यम मन्तर यादन करन से तथा तानगुरे के पहले तार की पचम में गिलाकर गायन करन म समाज में श्रुत चतुःश्रुति ही प्रयुक्त होता है। ध्यान रहे कि भरत न उभयप्राग वा सान शुद्धा जातिया में स मध्यमप्राग की मध्यमा और पञ्चमी इन दो जातिया में स्वर साधारण वा प्रयाग निर्दिष्ट माना है। हम जानन है कि भरत ने उभयप्राग की मूर्च्छनाओं क भेद बनान समय पूर्ण, पाठ्या, शीर्षवा और साधारणीकृता ऐन चार भेद कहे हैं। 'साधारणीकृता में अन्तर वा नी के प्रयोग वा विधान है। किन्तु, यहाँ पञ्चमप्राग की शुद्धा जातिया में स्वर-साधारण न कहे पर केवन मध्यमप्राग का ही दा जातिया में उगा विनन दिया है। तदनुसार हम मध्यमप्राग की इन दा जातिया के सोमिन क्षेत्र में ही स्वर साधारण वा उपयोग कर रहे हैं। 'मध्यमा का 'स्वर साधारण सहित स्वर रूप निम्नलिखित होगा —

म - प - घ - नि - वा नि - सा - रि - ग - म - प - य - नि - सं गा. - म
सा - रि - ग - म - प - य - प - नि - नि - सा
- ३ - ४ - २ - २ - २ - ३ - २ - २ - २ - २ -

इस रूप में बतयाए अग, समाज श्रंग और बिलावन श्रंग के सभी प्रायुनिन राग का पूर्ण समावेश हो सकता है इस जाति के भिन्न २ ग्रह-अंशा से बननवाले रूपा का विस्तार न देकर यहाँ इन तीना अंशा के कुछ रागों के नामा का उल्लेख करना ही पर्याप्त होगा। यथा —

बिलावल अग—(दो मध्यम, दो निपाद वाले, अथवा एक मध्यम, दो निपादवाले राग) यमनी बिलावन, दर्शनि बिलावन, सरपदा बिलावन अर्थात् बिलावल लच्छसाय, शुक बिलावल ककुम बिलावन, नट बिलावल इत्यादि।

कल्याण अग—(दो मध्यम दो निपादवाले अथवा एक मध्यम दो निपाद वाले अथवा दो मध्यम एक निपाद वाले राग) केदार, विहाग, हमीर, कामोद, छामानट, विहागडा, मारुविहाग, गोडसारंग श्यामनक्याण, यमनकल्याण, पन्निहाण नटनामोद, नदबल्याण नटकेदार, मछुहाकेदार इत्यादि।

समान अग (एक मध्यम दो निपाद वाल राग) समाज देश, तिलककामोद, मिन्कोटी, रामेनी, सम्भाकी निगण, गौडमल्हार इत्यादि।

इनके अनिश्चित, इस मूर्च्छना में दो मध्यम, दो निपाद प्राप्त होने से शारंग अग के वृन्दावनी शारंग, मयमा (मध्यमादि) शारंग, सामत-भारग, दुद्धसारंग इत्यादि राग वा भी इसीमें समावेश हो सकता है।

मध्यमों म मध्यमप्राग के 'स रि म प घ' को प्रदर्शक कहा है। यही स्वर मध्यम की मूर्च्छना में क्रमशः 'प घ सा रि ग' बनते हैं। इन भिन्न भिन्न ग्रह अंशा के अनुसार विभिन्न रूपों वा निर्माण कुछ जन स्वयं कर सकते हैं।

७ पञ्चमी

मध्यमा के सदृश पञ्चमी म भी अन्तर वाकसी वा प्रयोग विहित माना है। तदनुसार हमनी स्वरसंज्ञि निम्नोक्त होगी —

म० ग्राह ने पचम की स्वर-साधारण युक्त मूच्छना— प - ध - नि - वा० नि० - सा - रि - ग - झ० ग० - म - प
 पचम को पढज मानन से प्राप्त स्वरावली — सा - रि - ग - ग - म - प - ध - ध नि - सा
 ४ - २ - २ - २ ३ - २ - २ - २ - २ - ३ -

इस प्रकार दो गांधार, दो धैवत तथा कोमल त्रिपाथ युक्त स्वरावनि प्राप्त होनी है। इस स्वरावनि में आरोहावरोह, गह भ्रम, झपवासादि के परिवर्तन से निम्नलिखित आधुनिक रागों का समावेश हो सकेगा —

कान्हडा प्रग—(शुद्ध धैवत तथा कोमल गांधार जाने अथवा कामल धैवत कामल गांधार जाने राग) सूह, सुपरई, नाथकी (शुद्ध प युक्त) काफो काहडा, गारा काहडा, बौशिक काहडा, मुद्रकी कान्हडा, दरवारी, अडागा खट (काहडा प्रग) इत्यादि ।

आसारो अग—दो गांधार, दो धैवत वाले अथवा एक गांधार दो धैवत वाले अथवा एक गांधार, एक धैवत वाले राग देवगांधार, देसो, आसारो इत्यादि ।

पञ्चमी मध्यमग्राम के ऋषभ पचम को गृह भ्रम कहा है जो पचम को मूच्छना में क्रमशः 'प-सा' वा जाते हैं। मध्यमा की भाँति यहाँ भी विभिन्न रूप बनाकर देना हमने आवश्यक नहीं समझा है।

उपसंहार

शुद्ध जातियों के अत्यन्त लक्षणा के अनुसार उनके स्वर रूप किस प्रकार समझ जा सकते हैं, उन रूपों में आज के प्रचलित रागों के साथ वैसा अनुगुण सख्य दिखलाई देता है उसका अन्तर दर्शन हमें हुआ। इस प्रकरण के उत्सहार में हम पाठका, विचारका, अनुभवानवर्तना तथा विद्यापियों ने सौकर्य के लिए, ऊपर प्रस्तुत सिद्धान्त पक्ष को सगैप में दोहरा देना उचित समझते हैं। जिस प्रकार भरत ने विभिन्न स्वर-समूहों का शास्त्रीय वर्गीकरण सूक्ष्म ध्रुवतरो का प्रत्यक्षीकरण, उनका प्रमाण नियंत्रण स्वर के अन्तगत 'सा प और सा न समुद्र के आधार पर ध्रुविका की परस्पर सवाद-स्थापना— इन सब प्रयोजना की सिद्धि के लिए प्राकृतिक स्वरावलि के आधार पर द्वैधामिकी शास्त्रीय व्यवस्था की रचना की है उसी प्रकार उस काल में प्रचलित गीत प्रसार के शास्त्रीय वर्गीकरण के लिए तथा किमी स्वर समूह की विशिष्ट आकार प्रदान करने के निमित्त जो जो तत्त्व आवश्यक होते हैं उनके शास्त्रीय निश्चय के हेतु भरत ने जाति वा प्रतिपादन किया है। जिस प्रकार हमने अनुना प्रचलित शुद्ध (प्राकृतिक) स्वरावलि का भरतात ग्राम व्यवस्था व साथ अद्वैत और अविच्छेद सख्य अकाष्ठ रूप से स्थापित किया है उसी प्रकार हम इस बात की भी स्थापना करना चाहते हैं कि आज की हमारी राग-परंपरा के मूल तत्त्व 'जाति' में पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। रागों के नाम रूप में परिवर्तन-परिवर्द्धन अथवा ह्रास है, फिर भी हमें नहीं भूलना चाहिये कि 'राग-व्यति' का मौलिक तत्त्व जाति की परम्परा से ही संबद्ध है। पाठका की ऊपर के स्वर विन्तारा ने इस सत्य का दान हुआ होगा ऐसा विश्वास है। साथ ही उधे यह भी स्पष्ट हुआ होगा कि जाति की रागों की जननी क्यों बहा गया है। इस संयोजन से इस भ्रान्ति का समूह निरमन हो जाएगा कि प्राचीन शास्त्र से हमारे क्रिया-गल का विच्छेद हो चुका है, व्यवस्था के दुरुह बन जाने के कारण अर्थों में स्वर-श्रुति का विपय में भयंकर अव्यवस्था छा गई थी उसी प्रकार जाति को भा मानो पुरातत्त्व सप्रहालय व उपयोगी वस्तु मान समझ कर ही उसका समुचित गतानुगतिक भाव से संरक्षित निरुणय किया जाता रहा। उसी भ्रान्त परम्परानुसार आधुनिक युग तक 'जाति' को अनुना प्रचलित राग परम्परा से विच्छिन्न (isolated) विपय समझा जाता रहा है। 'जाति' के साथ आज की राग परम्परा के अद्वैत सम्बन्ध को प्रयत्नगोचर तथा बुद्धिप्राप्त बनाने का यह प्रथम प्रयास है। आशा और निश्वास है कि इससे भरत-सिद्धान्त की पूरा शास्त्रीयता अविच्छिन्नता और सर्ववैध के लिए उपयोगिता निर्विवाद रूप से सिद्ध हो सकेगी।

ॐ 'साध-रूप' (श्री गला समीन भरती, बारी हिन्दू विश्वविद्यालय से प्रकाशित अनुसंधान पत्रिका) के प्रथम अंक में प्रकाशित छन्द का "भरत का स्वर सिद्धान्त शीघ्र नेत्र द्रष्टव्य है।

संसर्गजा विकृता जातियों—भरतोक्त व्यसंधा

शुद्धा जातियों के स्वररूप तो हमने न्यास स्वर का नियामक स्तोत्रार कर के विनाश कर दिये और यह सिद्धन भी समझ लिया कि शुद्धा जातियाँ के विरुद्ध भेदा व स्वर-रूप भी उनके अक्षरवर्तनीय न्यास-स्वर के अनुसार ही बनें। इसी सिद्धांत के अनुसार हमने प्रत्येक शुद्धा जाति के कुछ एक बिह्वन भेदा का प्रहृष्ट अष्ट परिवर्तन से तथा पाठन-बोध भेद निर्माण द्वारा निरूपण कर लिया। किन्तु शुद्धा जातियों और उनके विकृत भेदा में भिन्न एकाग्र सतत जाति विकृत जातियाँ क समूहगत स्वरूप कैसे विचारित किये जाएँ ? इस प्रश्न के निम्नलिखित मुख्य पक्ष हैं —

(१) प्रत्येक संसर्गजा जाति उभयग्राम में स चित्तों एक के साथ संबद्ध है तथा प्रायः प्रत्येक में उभयग्राम की सक्तियों का संसर्ग है। एक आवाज का श्लोड कर ऐसी कोई भी संसर्गजा जाति नहीं है जिस में केवल एक ग्राम की जातियों का संसर्ग है। उभयग्राम की जातियाँ का संसर्ग होने पर भी मूल जाति जातियों का एक ग्राम विशेष के साथ संबद्ध होना निश्चय प्रारंभ हो सकता है ?

(२) एकाक्षर जातियों का संसर्ग विहित होना पर भी प्रायः प्रत्येक संसर्गजा जाति में एक-एक ही न्यास-रूप कहा गया है। यह न्यास स्वर अथवा संसर्गजात जातियाँ का नियामक निश्चय प्रकर हो सकता है ?

(३) एक वाचवादी को छोड़कर प्रत्येक संसर्गजा जाति में एकाक्षर प्रहृष्ट अष्ट कह गये हैं। एकाक्षर जातियों का संसर्ग निरूपण करने में इन प्रहृष्ट अष्टों का क्या विनियोग होगा ?

(४) इन संसर्गजा जातियों का स्थान मायन वादन में, विशेषतः मातृत्व न्वत्त सगीत में कैसा उपयोग करने का अभिप्रेत रहा होगा ? मातृत्व की भावाभिव्यक्ति में, रस सिद्धि में इनका कैसा विनियोग होता होगा ?

स्पष्ट है कि इन सब पक्षोंवाले इस विचार प्रश्न का हल उतना सरल नहीं है जितना कि संसर्गजा जातियों के लक्षणों को ध्यान दृष्टि से देखने पर प्रतीत होता है। इस मुद्देवाले क सिये विभिन्न दृष्टिकोण से हमने जो प्रश्न किये हैं वे सभी इस प्रकार के प्रस्तुत हैं।

आरम्भ में ही यह उल्लेखनाय है कि संसर्गजा जातियों के प्राचीन प्रचालक जनता का यदि केवल गद्यतुर्गाता भाव में उल्लेख मात्र करना प्रयोजन होना तब ता बड़ी ही सरलता से और बहुत सीधे में इन प्रकरणों को पूर्ण रूप से चर्चा की जा सकती थी। कुछ मध्ययुगीन ग्रन्थकारों ने (जवाहरलाल रघुनाथ भूष, तुषेनाजिप आदि ने) यही मार्ग अपनाया था। किन्तु हमने इन संसर्गजा विकृता जातियों के स्वररूप निरूपण करने और उनके प्रत्येक प्रयोग को निरूपित करने का यत्न किया है और क्षात्रिये मह प्रकरण काशी विस्तृत हा गया है।

संसर्गजा जातियों का जो लक्षण निरूपण अभी में उल्लेख हाता है उसे देखते हुए यह कहना पडता है कि इनके स्वर रूप निर्माण के लिए 'द्वन्द्व' कह कर कोई एक निश्चय विधान देना अनुभवान या अपेक्षा की मयादा के अनुकूल नहीं हो सकता। अतएव इस समय जो प्रत्येक सामग्री हमें उपलब्ध है उससे बतवार पर विभिन्न दृष्टिकोण से इस विषय पर विचार कर के पांच विचारा के रूप में हमने अपने प्रयत्न का प्रस्तुत किया है। इन पाँच में से प्रथम दो विवरण ही जातियों के मिश्रण द्वारा संसर्गजाता के निर्माण से संबंध रखते हैं। व केवल भाषातन ही प्रहृष्ट जात पडते हैं वास्तव में उनसे कोई फर्कमिद्ध नहीं होता। फिर भी पाठकों के विचारार्थ उनका उल्लेख कर दिया गया है। शेष तीन विचारों में इन संसर्गजा जातियों का अक्षरवर्तन समन्वय, मयोजन अथवा संसर्ग के प्रत्येक प्रयोग का विभिन्न प्रकार से निरूपण करने का यत्न किया गया है। ये पाँच विचारों नाके रूप में प्रस्तुत हैं। इन पाँच में जातियों के रसा के सम्बन्ध में भरत के विधान का उद्धरण देकर कुछ उदाहरण सहित इस विषय को विवेचना की गई है।

* प्रस्तुत प्रकरण में भरत के ही आधार पर विचार किया गया है। मूल और शास्त्रियों के इस विषय प्रतिपादन पर कुछ प्रकरणों में विचार किया जायगा।

संसर्गजा विद्वता जातिया के संसर्ग मे सर्वप्रथम मिश्रण वा विचार हो जाना स्वाभाविक है; अर्थात् एकादश

प्रथम विकल्प—मिश्रण
की सरल प्रक्रिया

संसर्गजा जातियो मे जिन-जिन जातियो का संसर्ग बहा गया है उनके मिश्र रूप बनाने की श्रौत
सर्वप्रथम दृष्टि जाती है, कारण हमारे प्रचलित संगीत में रागो के विभिन्न प्रकार के सम्मिश्र रूप
पाए जाते हैं। यथा आरोह-अवरोह मे (जो भूपनल्याए—आरोह में भूप, अवरोह में कल्याए)

पूर्वांग-उत्तरांग में (जैसे झरोहर भैरव—पूर्वांग मे भैरव, उत्तरांग मे खमाज) अथवा आरोह-अवरोह, पूर्वांग उत्तरांग दोनों में (जैसे
वसन्त बहार) मिश्रण किये जाते हैं। इनके अतिरिक्त छठ जैसे सम्मिश्र रूपों में छह रागो तब वा सम्मिश्रण पाया जाता है,
यद्यपि उसमे छहो रागो के अपने-अपने व्यतिगत रागत्व का अल्पांश ही प्रयुक्त होता है। थोड़े-थोड़े स्वरों के हेरफेर से इन
रागो की छाया यम-सप्त निर्दिष्ट की जाती है। इन संसर्गजा विद्वता जातियो में भरत को क्या कुछ उसी प्रकार का मिश्रण
अभिप्रेत रहा होगा ? शारंग मे ऐसा अनुमान हो सक्ता है। यह अनुमान प्रापाततः प्राज्ञ प्रनीत होने पर भी इस प्रकार के
मिश्रण मे अनेक कठिनाइयां सामने आती हैं जिन पर इस प्रकरण मे विस्तार से विचार किया जा रहा है।

मिश्रण की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि जिस संसर्गजा जाति में जिन-जिन शुद्धा जातियो वा संसर्ग बताया
गया है उन सबके अपने-अपने न्यास स्वर से जो-जो रूप बनने हैं, उन सबका एक सम्मिश्र रूप मध्य सप्तक में तैयार किया
जाय। उदाहरणार्थ पड्जवैशिकी जाति मे पाड्जो और गान्धारी वा संसर्ग बहा गया है। तदनुसार पाड्जो के न्यास
स्वर (पड्जग्राम के) पड्ज से प्राप्त वाफो-सदृश रूप और गान्धारी के न्यास स्वर (मध्यमग्राम के) गाधार से प्राप्त कल्याण-
सदृश रूप—इन दोनों का मध्य सप्तक मे मिश्रण करके, आधुनिक रागो की दृष्टि से इस स्वरावली मे काफी-कल्याण अथवा
कल्याण-काफी के सम्मिश्र रूप वा निर्माण हो सकता है अथवा दो गाधार, दो मध्यम और दो निषाद वाली स्वरावली का
सामान्य सम्मिश्र रूप बनाया जा सकता है। तदनु पड्जोदोच्यवा मे पाड्जो, गाधारो और धैवती वा संसर्ग बहा है।
पाड्जो और गाधारो के अपने-अपने न्यास स्वर से प्राप्त उर्रिकथित स्वर-रूप के अतिरिक्त इसमें धैवती के न्यास स्वर से
यानी पड्जग्राम के धैवत से पञ्चम-रहित, दो मध्यमयुक्त तोड़ी-भैरवी सदृश रूप प्राप्त होता है। इस स्वरावली का यदि
पाड्जो और गाधारो के साथ मिश्रण किया जाय तो काफी, कल्याण और तोडो-भैरवी के राग-रूपों के मिश्रण का-सा रूप
बनेगा। अथवा दो गाधार, दो निषाद, दो मध्यम, दो धैवत और दो मध्यम युक्त सामान्य सम्मिश्र रूप प्राप्त होगा। इन
तीन जातिया के संसर्ग से जो स्वर प्राप्त हुए उनमें उर्रिकथित राग रूप के अतिरिक्त अन्य अनेक सम्मिश्र रूपों वा निर्माण
हो सकता है। अतः इस उपलब्धि के बाद अन्य संसर्गजा जातियो मे किसी नवीन रूप की प्राप्ति वा अवगता नहीं रह
जाता। स्पष्ट है कि इन प्रकार का सम्मिश्रण करने के बाद अन्य सभी संसर्गजा जातिया में मिश्र रूपों की विपुल पुनर्रक्ति
ही हाथ लगेगी और उनका निर्माण व्यर्थ सा जान पड़ेगा। पृ० ४० पर दो गई सारिणी मे यह बात अधिक्त स्पष्ट हो जायगी।

एक अन्य उदाहरण से उर्रिकथित पुनर्रक्ति की स्पष्टता हो जायगी : अन्धरोदोच्यवा जाति में पाड्जो, गान्धारी,
धैवती और मध्यमा—इन चार जातियो वा संसर्ग बहा है, तो क्या पड्जोदोच्यवा के अन्तर्गत उपरिनिर्दिष्ट काफी,
कल्याण, तोडो भैरवी के अतिरिक्त मध्यमा के खमाज सदृश रूप वा एक अधिक सम्मिश्रण ही उसमे अभिप्रेत है ?
साथ ही यह भी ध्यान देने की बात है कि मध्यमा के मिश्रण की वृद्धि मे कोई नूतन प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि पाड्जो
(वाफी) और गान्धारी (कल्याण) में जो स्वर हैं, उहाँ में मे खमान की उपनयिता ता सहज ही हो सकती है।
ऐसी अवस्था में पड्जोदोच्यवा में केवल मध्यमा का योग बढ़ाकर गान्धारीदोच्यवा की रचना करने से क्या विशेष
साध होगा ?

उर्रिकथित पुनर्रक्ति दाप के साथ साथ यह भी स्मरणाय है कि इन संसर्गजा जातियो के अन्तर्गत संसर्गप्राप्त
स्वरावलिया मे आधुनिक रागो का स्थान सादृश्य तो अवश्य दिखाई देता है, किन्तु प्रश्न यहाँ है कि इन एक-एक संसर्ग
रूपों के अन्तर्गत जिन अनेक न्यास वा संसर्ग अभिप्रेत है, उन सब का किस नियम से, किस विधि मे समन्वय किया जाए

संसर्गजा जातियों में मिश्रण की सरल प्रक्रिया की सारिणी

संसर्गजा जाति-नाम	संसर्गप्राप्त जातियाँ	आधुनिक रागों का स्थूल-सादृश्य	मिश्रण-जन्य स्वरावली	विशेषोल्लेख
१. पट्टजैश्रिणी	पाट्टी, गान्धारी	बापी बल्याण	सा-रि-ग-म-प-ध-नि-नि-सो	
२. पट्टजोदीच्यवा	पाट्टी, गान्धारी, वैजन्ती	बापी, बल्याण तोड़ी-भैरवी	सा-रि-ग-म-प-ध-नि-नि-सो	पाट्टी का संयोग निरर्थक
३. पट्टजमध्यमा	पाट्टी, मध्यमा	बापी, समाज	सा-रि-ग-म-प-ध-नि-नि-सो	द्वैधार्थिक अन्तर-बाजली (स्वर-मापारस) का उपयोग स्वमे विहित होने में तदनुसार स्वरावली बनाई गई है।
४. गान्धारीजोदीच्यवा	पाट्टी, गान्धारी, वैजन्ती, मध्यमा	बापी, बल्याण तोड़ी-भैरवी, समाज	सा-रि-ग-म-प-ध-नि-नि-सो	पट्टजोदीच्यवा की पुनरक्ति, पाट्टी, मध्यमा का संयोग निरर्थक।
५. मध्यमजोदीच्यवा	गान्धारी, पञ्चमी, वैजन्ती, मध्यमा	बल्याण, आसावरी, तोड़ी-भैरवी, समाज	सा-रि-ग-म-प-ध-नि-नि-सो	पट्टजोदीच्यवा, गान्धारीजोदीच्यवा की पुनरक्ति, पञ्चमी, मध्यमा का संयोग व्यर्थ।
६. रसगान्धारी	गान्धारी, पञ्चमी, गैराती, मध्यमा	बल्याण आसावरी, विलावल, खमाज	सा-रि-ग-म-प-ध-नि-नि-सो	भैराती, मध्यमा का संयोग व्यर्थ।
७. आन्ध्री	गान्धारी, पाट्टी	बल्याण, बापी	सा-रि-ग-म-प-ध-नि-नि-सो	पट्टजैश्रिणी की पुनरक्ति।
८. नरकली	गान्धारी, पंचमी, आर्षभो	बल्याण, आसावरी, भैरवी	शा-रि-ग-म-प-ध-नि-नि-सो	पंचमी का संयोग व्यर्थ।
९. गान्धारलज्जमी	गान्धारी, पञ्चमी	बल्याण, आसावरी	सा-रि-ग-म-प-ध-नि-नि-सो	पट्टजमध्यमा की पुनरक्ति।
१०. बापाँवली	भैराती, आर्षभो, पञ्चमी	विलावल, भैरवी, आसावरी	सा-रि-ग-म-प-ध-नि-नि-सो	पंचमी का संयोग व्यर्थ।
११. भैराती	पाट्टी, गान्धारी, मध्यमा पञ्चमी, भैराती	बापी, बल्याण, समाज, आसावरी, विलावल	सा रि-गु ग म-प-ध-नि-नि-सो	गान्धारांगी और पट्टजमध्यमा की पुनरक्ति। पाट्टी, मध्यमा, गान्धारी का संयोग व्यर्थ।

जिससे एक 'समन्वय', रचना और नियमित रूप खड़ा हो सके ? ससर्ग के नियमन भी इस समस्या के साथ-साथ यह भी उल्लेखनीय है कि उद्युक्त मिश्रण प्रक्रिया में ससर्गजा जातियाँ के अपने अपने न्यास-स्वरों की कोई सार्थकता नहीं रह जाती, अर्थात् वे उन-उन ससर्गजा रूपों के निवामक नहीं बन पाते । तबत् संसर्गजा विटृता जातियों के एकाधिक ग्रह-अंशों का समुचित विनियोग भी समभव नहीं होता ।

अधुना प्रचलित संगीत में राग-सागर के नाम से भी एक मिश्र रूप उल्लेख होता है जिसमें घ्राट, यादृ भ्रयवा सोलह—यों बदिश करनेवाले एणों की जितनी इच्छा हो, उतने रागों को समूहबद्ध रचना की जाती है और एक चमत्कृति के रूप में जनता के सामने रखी जाती है । क्या इन संसर्गजा जातियाँ म भरत को ऐसे सम्मिश्रण अभिप्रेत होंगे ? उनके अपने अपने वचनों में इसकी अस्पष्ट कल्पना भी उल्लेख नहीं होती । इसलिये 'इदमित्थ' कहकर इसका निर्णय करना कहीं तक उचित होगा ? 'सट' जैसे रागमिश्रण अथवा 'राग-सागर' जैसे मिश्र रचना से नाट्य की भावसिद्धि में क्या सहायता प्राप्त होगी ? स्पष्ट है कि इस प्रकार के मिश्रण केवल गायन वादन की महफिता के लिये ही उपयोगी हो सकते हैं, नाट्य में भावाभिप्रेयक्ति के लिये उनका कोई विशेष उपयोग सम्भव नहीं प्रतीत होता ।

हम समझते हैं कि संसर्गजा जातियाँ में इस प्रकार के सम्मिश्रण से कोई विशेष भाव सिद्धि, रस सिद्धि, अथवा फल सिद्धि नहीं होगी । यह सत्य है कि इन संसर्गजा जातियों को देखते ही अन्तर में प्रथम धोष आधुनिक संगीत में प्रचलित रागों के सम्मिश्रण की ओर हो जाता है । इसलिये हमने सत्य के परीक्षणार्थ इन जातियों का विविध रूप से सम्मिश्रण करने का बहुजन तक प्रामाणिक यत्न करके देखा । किन्तु इनके सम्मिश्रण में निहित विपुल पुनरुक्ति-दोष ने हमें 'समर्ग' के 'सम्मिश्रण' अर्थ से विरत किया और 'समन्वय'* के विशेष अर्थ की खोज की ओर उन्मुख किया । यथाहि हमारे यत्न का यह स्वरूप विवरण जिज्ञासु तथा अनुसन्धित्कु जगत् के समक्ष प्रस्तुत है ।

उद्युक्त मिश्रण विधि व घनावा मिश्रण करने का एक अन्य मार्ग भी प्रस्तुत है । यह विधि इस प्रकार है ।

मिश्रण का एक अन्य यथा—सर्वाग्रयम ससर्गजा जाति के अपने न्यास स्वर को पङ्क्ति का स्थान दे कर ग्रामविशेष के प्रसार—दूसरा विधि अनुसार, आचारभूत स्वरावली का निर्माण किया जाए । तत्पश्चात् ससर्गप्राप्त जातियों के अपने-अपने न्यास स्वरों से उन उन ग्रामविशेष में जो मूर्च्छताएँ (स्वरावर्तियाँ) बनें उन सबको इस दृष्टि से देखा जाए कि आचारभूत स्वरावली में वे क्या स्थान पाती हैं । पूर्वोक्त मिश्रणविधि में हमने सभी ससर्गप्राप्त जातियाँ व रूपों को एकरूप करने सम्मिश्रण करने का यत्न किया । यहाँ ससर्ग प्राप्त जातियों को स्वरावली में ससर्गजा जाति के न्यास स्वर के नियमन में एकरूप करने का यत्न किया जा रहा है । उदाहरणार्थ 'पङ्क्तोद्योच्यता' में पङ्क्तिग्राम का मध्यम न्यास है और पाङ्क्ती गांधारी तथा धैरती का ससर्ग है । इसी मध्यम को tonic (स्वरित) मानकर हम यह देखें कि ससर्गप्राप्त जातियों (पाङ्क्ती, गांधारी, धैरती) की अपनी अपनी मूर्च्छताप्राप्ति का मध्यम को स्वरित मानने से प्राप्त स्वरावली में बीणा पर क्या स्थान धाता है । यथा —

* ससर्गजा जातियों के 'समन्वय' के धारे में तीन वैकल्पिक विधान धारण चलकर दिए जायेंगे ।

धीला पर सारी-सख्या (चल घाट के धनुवार)	पद्मप्राम के मध्यम से प्राप्त स्वराली (आधार भूत)	पादजी (पद्मप्राम के पद्म से)	गान्धारी (मध्यमप्राम के गान्धार मे)	धैवती (पद्मप्राम के धैवत मे)	स्वरित मध्यम से स्वराली में सनी शुद्ध नामो का एवम दर्शन
मेढ०					
१			गू	सा	
२					
३		सा	म	रि	
४			रि	प	
५			गू		
६				प	
७	म	सा	म	नि	प
८	प	रि	प	सां	घ
९					
१०	घ	ग	घ	रिं	नि
११	नि	म	नि	गू	सां
१२					घ
१३	सां	प	सां		सा
१४	रिं	प			गू
१५	गू	नि			रिं
१६	(मं० गा०)				मं
१७	मं	सां			घू
१८					पं
१९					नि
२०					घं
					सां

(नि)
सा
रि

ऊपर हमने देखा कि 'पद्मजोदीच्यवा' में पादजी, गान्धारी, धैवती—इन तीन जातियों के समर्थ से केवल दो निपादयुक्त स्वराली प्राप्त हुई। यही स्वराली पादजी जाति में बावली स्वर-साधारण के प्रयोग से भी प्राप्त हो सकती थी। इसके लिए तीन-तीन जातियाँ के समर्थ द्वारा 'द्राविड प्राणायाम' की क्या आवश्यकता थी? यह प्रश्न उभरा स्वाभाविक है।

एक क्षण उदाहरण देते हैं। मध्यमप्राम की गान्धारीदीच्यवा जाति में मध्यमप्राम वा मध्यम ग्यास स्वर है और उसमें पादजी, गान्धारी, धैवती और मध्यम वा संगम है। यथा—

वोणा पर सारी सख्या (चल धातु के अनुसार)	मध्यमग्राम के मध्यम से प्राप्त स्वरावली (आधार भूत)	पाडजो (पडजग्राम के पडज से)	गाघारो (मध्यमग्राम के गाघार से)	धैक्ती (पडजग्राम के धैवत से)	मध्यमा (मध्यम- ग्राम के मध्यम से) (स्वर-साधारण सहित)	स्वरित मध्यम से प्राप्त स्वरावली में सभी मूच्छंताओं का एकत्र दर्शन
मद०			ग्	सा		
१						
२	म	सा	सा	म	रि	म सा सा
३						
४	प	रि	रि	प	ग	प रि रि
५			ग्			ग्
६	ध	ग		ध	ग्	ध ग ग
७	न्दि	म	म	न्दि	प	न्दि म म
८	सा	प	प	सा	ध	ना नि ग् ध्
९						सा प प
१०	रि	ध	ध	रि	नि ध सा	
११	ग्	न्दि	न्दि	ग्	सा नि रि	रि ध ध
१२						ग नि नि
१३	म	सा	सा		सा ग	अ गा नि नि
१४					रि म म	सा सा सा
१५					ग ग्	
१६						
१७					म ध	
१८					प नि	
१९					धं सा	
२०						

यहाँ दो गाघार दो मध्यम और दो निपाद वाली स्वरावली प्राप्त हुई। किन्तु यहाँ पडजग्राम की पाडजो भ्रमवा धैक्ती—रिक्ती एत के ग्रहण से भी यही फल प्राप्ति होता तद्वत् स्वरसाधारणयुक्त मध्यमा के ग्रहण के साथ-साथ गाघारो का ग्रहण भी निरर्थक जाल पडता है। दोनों ग्रामों की स्वरावलीया का एतद् दृश्यन तो प्रत्येक ग्राम की एक एक जाति के संगण से हो हा सकता है। फिर दो म अर्थिक जानना के समय स कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होता है ?

नीचे दो हुई सारिणी से यह स्पष्ट होगा कि इन निष्पन्न त्रिभि म जहाँ एत बार पुनर्धकिक वा धातुत्व है यहाँ दूसरे ओर अनेक जातियों के सर्वत्र वा सार्धता भा सिद्ध नहीं हो पाती। अतः इस त्रिभि में एत वाच्य स्वर के अनुसार,

सरल मिश्रण से भिन्न मिश्रण-प्रक्रिया की सारिणी

संसर्गागत जाति नाम	प्राप्त	न्यास स्वर	ससर्गाग्रात जातियों	न्यास स्वर के अनुसार, संसर्गाग्रात जातियों के एकत्र दर्शन से उपलब्ध स्वरबली	विशेषोद्देश्य
१. षड्जशैशिरी	षड्ज	गा-पार मध्यम	पाइजी, गान्धारी, पाइजी, गान्धारी, वैवती	गा-रि-रि-ग-म-प-ध-नि-सा सा-रि-ग-म-प-ध-नि-सा	गान्धारी, वैवती वा संयोग व्यर्थ, केवल वाकली निपाद के गह्वर से काम चल सकता था।
२. षड्जोदीच्यवा	"	पड्ड, मध्यम	पाइजी मध्यमा	सा रि ग म-प-ध-ध-ध-नि-सा	'मध्यमा' में भरत-वचनानुसार स्वर-साधारण वा उपयोग।
३. षड्जमध्यमा	"	मध्यम	पाइजी, गान्धारी वैवती, मध्यमा	सा रि-ग म-प-ध-ध-नि-सा	गान्धारी तथा वैवती अथवा पाइजी वा संयोग व्यर्थ।
४. गान्धारीदीच्यवा	मध्यम	"	गान्धारी, पड्डमी, वैवती, मध्यमा	सा-रि-ग-म-प-ध-ध-नि-सा	गान्धारी, पड्डमी वा संयोग व्यर्थ, गान्धारीदीच्यवा की पुनरुक्ति।
५. रत्नगान्धारी	"	गान्धार	गान्धारी, पड्डमी, नैपादी, मध्यमा	सा-रि-रि-ग-म-प-ध-ध-नि-सा	'मध्यमा-पड्डमी' के कारण स्वर साधारण वा प्रयोग। गान्धारी वा संयोग व्यर्थ; मध्यमा अथवा पड्डमी एक ही मात्रस्वर।
६. गान्धारी	"	"	गान्धारी, पाइजी	सा-रि-ग म-प-ध-ध-नि-सा	गान्धारी की पुनरुक्ति।
७. नन्दवती	"	"	गान्धारी, पड्डमी, गान्धारी, पड्डमी, गान्धारी, पड्डमी	सा-रि-ग-म-प-ध-ध-नि-सा	रत्नगान्धारी की स्वरबली के प्रस्तभूत।
८. गान्धारापड्डमी	"	"	गान्धारी, पड्डमी	सा-रि-रि-ग-म-प-ध-ध-नि-सा	नैपादी अथवा आर्षी व्यर्थ।
९. नार्माली	"	पड्डम	नैपादी, आर्षी, पड्डमी	सा-रि-रि-ग-म-प-ध-ध-नि-सा	गान्धारी, पाइजी अथवा नैपादी, मध्यमा अथवा पड्डमी का संयोग व्यर्थ।
१०. वैचित्री	"	गान्धार, निपाद, पड्डमित्त पड्डम	पाइजी, गान्धारी, पड्डमी, नैपादी, मध्यमा, नैपादी,	सा रि-रि-ग-म-प-ध-ध-नि-सा	

संसर्गप्राप्त जातियाँ वा एकत्र रागवैद्य करने से जो रूप बनते हैं, उन्हें देव वर यह अनुमान या धारणा भी नहीं की जा सकती कि भरत को कुछ ऐसा मिश्रण अभिप्रेत रहा होगा।

प्रथम विचलन की मिश्रण-विधि में भिन्न २ जातियों से प्राप्त राग-रसों के सादृश्य वा मिश्रण और तदंगभूत स्वरचरित्रों में पुनर्जाति दोष वा बाहुल्य हमसे देना। प्रस्तुत विकल्प में न्यास स्वर के नियंत्रण के बावजूद स्वरों की पुनर्जाति और संसर्ग को निरर्थकता भी हमने देती। अतः इन दोनों ही विकल्पों के अंतर्गत द्विविध सम्मिश्रण अप्राप्त जान पड़ता है।

इन उपयुक्त बंठनाइयों के कारण संसर्गजा जातियाँ में क्षीर-नीर जपना दुर्घट शक्य जैसा मिश्रण त्याज्य ही मानना पड़ता है। ध्याते रहते कि भरत ने भी इन प्रसंग में 'मिश्रण' शब्द का प्रयोग नहीं नहीं किया है। उन्होंने 'संयोग', 'समवाय' और 'संयोग'—इन शब्दों का ही प्रयोग किया है। ये तीनों शब्द सम्बन्ध-विशेष के चोखाने हैं। इन शब्दों के अर्थ को देखते हुए ऐसी प्रतीति होती है कि मिश्रण की इन प्रकार की प्रक्रिया प्राप्त नहीं हो सकती जिसमें कि सस प्राप्त जातियाँ का 'भेद-वेग प्रनारेण' वेगल एवश्रीकरण ही प्रयोजन हो। 'सम्बन्ध-विशेष' की स्थापना के लिये तो संसर्गप्राप्त जातियों में परस्पर अगाधिभाव से संयोग आनन्दन है। अर्थात् संसर्गजा जातियों में जिन जिन जातियों का संयोग या समवाय या संसर्ग अभिप्रेत हो वे सब किसी केन्द्र-स्थानीय स्वररूप (अधो) के अंगों के रूप में संबद्ध रहे और अगाधिभाव-युक्त समग्र रूप 'संसर्गजा जाति' अभिधान प्राप्त करे, ऐसा अर्थ भरत के 'संयोग', 'समवाय' और 'संयोग' शब्दों में निहित जान पड़ता है। इस अर्थ के अनुसार हम निम्नलिखित तीन विकल्प प्रस्तुत करते हैं।

संसर्गजा जातियों में परस्पर संसर्ग (मिश्रण) के दो रूप हम इसके पूर्व बतला चुके हैं। उनके समवाय का कोई विशेष विधान अंगों में उपलब्ध नहीं होने से क्रिया-रस में जो जो सम्यक् संयोग हो सकता है, उसका एक अन्य रूप यहाँ दिया जा रहा है। अर्थात् मिश्रण की प्रक्रिया का त्याग्यत्व और 'समवाय' के अर्थानुसार अगाधिभाव की स्थापना का साक्ष्य—इन दोनों का ऊपर जो प्रतिपादन किया गया है तदनुसार इस विकल्प में एक विशिष्ट समवाय-विधि का निरूपण प्रस्तुत है। इस विधि के प्रमुख पहलु ये हैं —

(१) संसर्गजा जाति का जो ग्राम है, उसी ग्राम की मूल स्वरावली को केन्द्रस्व रखा जाएगा।

(२) उस केन्द्रस्व स्वरावली से संसर्गजा जाति का जो भी न्यास स्वर होगा वह मुकाम का या ठहराव का स्थान लेगा, पडङ्ग का नहीं।

(३) संसर्गजा जाति के अंतर्गत गिन-जिन जातियों का संसर्ग अभिप्रेत हो, उनके दुर्घट-व्युत्क रूपों के निर्माण के लिए क्रमशः भिन्न २ ग्रह अक्षों को पडङ्ग का स्थान देना होगा।

(४) इन विभिन्न स्वर रूपों को केन्द्रस्व स्वरावली के साथ समवाय सम्बन्ध द्वारा प्रायश्चित्त करने के लिए उपयुक्त न्यास स्वर सन्धि-स्थल का कार्य करेगा और इस प्रकार न्यास वा नियामकत्व अक्षत रहेगा।

उदाहरण के लिये षड्जोदीर्घवा नाम की जाति में पाङ्गो, गान्धारी और धैवती—इन तीनों जातियों का परस्पर षड्जोदीर्घवा का उदाहरण संयोग कहा गया है। पङ्गोदीर्घवा जाति षड्जग्राम की है और उसमें, जैसा कि हम

* न्यायदर्शन में 'समवाय-सम्बन्ध' उस सम्बन्ध-विशेष को कहते हैं जो अवयव-अवयवों, गुण-गुणों, जाति-व्यक्ति, क्रिया-क्रियावान् में रहता है।

पहले यह श्रावे है पङ्जग्राम की पाङ्जी और धैवती तथा मध्यग्राम की गान्धारी जाति का संयोग है। किसे ? किस हत से ? यह जाति पङ्जग्राम की होने से पाङ्जी इसका न्यायी रूप होगा, गान्धारी और धैवती का उत्तम यथा-नाटक नाम यथा संचारि-भाव विनियोग होगा। पाङ्जी को स्थायिभाव मानकर उसके अन्तर्गत अन्य संचारिभाव जहाँ दिन प्रारंभ नाट्यानुकूल प्रयुक्त करने की आवश्यकता हो तदनुसार गान्धारी और धैवती का संयोग करना चाहिए।

यहाँ यह ध्यान रखना नितान्त आवश्यक है कि इन तीनों जातियों के संयोग के लिये मध्यम, जो कि इस संसर्गजा जाति का न्यास कहा गया है, वह इन तीनों जातियों का समन्वय न्यायित करने का माध्यम रहेगा। यानी 'न्यास' यहाँ विश्राम या मुकाम का स्थान पाता है। जहाँ मुकाम है वहाँ से अन्य स्वरावलि का योग जोड़ा जाएगा; और वही से मूल स्वरावली पर लौटने की सुविधा होगी। पङ्जग्राम का मध्यम और मध्यमग्राम का मध्यम दोनों पङ्ज-मध्यम-भाव से पारस्परिक संबाद से श्रावद्ध हैं। पङ्जग्राम का पङ्ज ही मध्यमग्राम का मध्यम है यह हम जानते हैं। मध्यमग्राम के मध्यम पर न्यास करना यानी पङ्जग्राम के पङ्ज पर मुकाम करना। तद्वत् पङ्जग्राम के मध्यम पर न्यास करना यानी मध्यमग्राम के निपाद पर न्यास करना। मध्यमग्राम की गांधारी जाति का श्रावमेस्थान गान्धारी और पङ्जग्राम का निपाद ये दोनों एक ही स्थान पर स्थित हैं। मध्यमग्राम के गांधार को यानी पङ्जग्राम के निपाद को पङ्जस्थानीय मान कर चलने से पङ्जग्राम का मध्यम गान्धारी का पंचम हो जाएगा। अब हम पहले पाङ्जी और गांधारी, इन दोनों का समन्वय कर के देखें।—

पाङ्जी—पङ्ज ग्रह-श्रंश—न्यास मध्यम

सा रि ग् रि म, सा म, म ग् रि ग् ऽ म, सा रि ग् सा रि म, प म, प ध ऽ म, म प ध ऽ म,
म ग् रि म, म ग रि सा। सा ग् रि ग् म।

मध्यम को न्यास रखते हुए पाङ्जी का यह रूप बना। अब इसी मध्यम को न्यास रखते हुए गान्धारी की स्वरावली ली जाए तो यही पङ्जग्राम का मध्यम उस गान्धारी में पञ्चम का स्थान पाएगा और इस प्रकार पाङ्जी के ही स्वरों में गान्धारी का कल्याण-सदृश रूप बनेगा। यह ध्यान रहे कि गान्धारी मध्यमग्राम की जाति है। मध्यमग्राम में पङ्जग्राम का अन्तर गान्धार ही धैवत का स्थान पाता है। इसलिए गान्धारी का रूप-निर्माण करते समय पङ्जग्राम का अन्तर गान्धार प्रयुक्त करना होगा। और वह गान्धारी जाति में तीव्र मध्यम का स्थान पाएगा। मध्यमग्राम के गांधार की यानी पङ्जग्राम के निपाद की ग्रह-श्रंश बनाने से अन्तर गान्धार-युक्त पाङ्जी जाति की स्वरावली में ही निम्नोक्त प्रकार के गान्धारी का श्राविभाव होगा। यथा—

पाङ्जी—मगरिगुरिसांन्ति, त्रिसारिगम, मगरिगुरिसा, त्रिसारिगमआरिगुरिसा, प्रसारिगम,
गान्धारी—पम्पमगरिसा, सारिगम्प, पम्पमगरि, सारिगम्पम्पमगरि, त्रिरिगमगदि,
पाङ्जी—रिगमगरिगुरिसांन्ति, त्रिसारिगम।
गान्धारी—गम्पमगमगरिऽसा, सारिगम्प।

अथवा

पाङ्जी—मगरिगुरिसांन्ति, क्षारिगम, मगमपगम, रिगुरिसारिगम, रिगमपगम, रिगुरिसा,
गान्धारी—पम्पमगरिऽसा, त्रिरिगम्प, पम्पमपम्प, गमगरिगम्प, गम्पमपम्प, गमगदि,
पाङ्जी—त्रिसारिगम, सारि रिग गम मप प ध ध नि ध पऽम, मगपम ऽ गरिगुरिसा ऽ रिगम।
गान्धारी—सारिगम्प, रिग गम् म्प प ध ध नि ध नि धऽप, पम्पप ऽ म्प गम गरि ऽ गम्पऽप।

इस प्रकार हमने देखा कि ग्रह शंश बदलने से आज के जैमिनि-व्यापण के रूप का भास होता है और मूल पञ्चमामिक स्वरावलि को देखते हुए दो गण्यारवाले काशी ध्ययता पहल-कही जयजयवन्ती सदृश रूप का दशन होता है । इसी से धैवती का ससर्ग करते समय भरत के कथनानुसार धैवती को ग्रह शंश बनाना होगा । यथा —

पाङ्जी— धु नि ध, सु धु नि सा ऽ धु नि ध, सु ध नि ध ऽ, सु नि ध, सु नि ध सा ऽ धु नि ध,

धैवती— सा रि सा, धु सारि ग ऽ सारि सा, धु सा रि सा ऽ, धु रि सा, धु रि सा ग् ऽ सारि सा,

पाङ्जी— धु नि सा ग् ऽ धु नि ध धु नि सा ग् म, ग् म ग् सा ऽ नि ऽ धु नि ध, म ऽ ग् म ग् मा ग् नि सा ऽ धु नि ध,

धैवती— सारि ग् म् ऽ सारि सा, सारि ग् म् धु, म् म् ग् ऽ रि ऽ सारि सा, धु म् धु ऽ ग् म् ग् रि ग् सारि सा,

पाङ्जी— धु नि सा ग् म् ऽ, म् ग् ऽ सा ग् ऽ म् ऽ, म् ग् म् सा, ग् सा ग् नि, सानि सा ऽ ऽ नि ध,

धैवती— सारि ग् म् धु, धु म् ऽ ग् म् ऽ ध ऽ, ध म् धु ग्, म् ग् म् रि, ग् रि ग् सा ऽ रि सा,

पाङ्जी— म् प धु नि धु प् नि ध, म् प धु ऽ प् धु नि ऽ, धु नि सा ऽ धु नि ध ।

धैवती— धु नि सारि सा नि रि सा, धु नि सा ऽ नि सा रि ऽ, सारि ग् ऽ सारि सा ।

पाङ्जी— धु नि रि सा ऽ धु नि ध, धु नि सारि नि सा ऽ धु नि ध, धु नि सारि ग् रि सा ऽ धु नि ध,

धैवती— सारि ग् म् ग् सारि सा, सारि ग् म् रि ग् सारि सा, सारि ग् म् म् ग् सारि सा,

अथवा

पाङ्जी— धु नि सा ग् म् ऽ ग् म् ग् सा नि सा ग् म्, म् ग् सा नि ग् सा नि ध, धु नि सा ग् म् ऽ ग् धु नि सा धु नि ध, म् ऽ ग् म् ग् म् ध,

धैवती— सारि ग् म् म् ऽ धु म् ग् रि ग् म् ध, धु म् ग् रि म् ग् रि सा, सारि ग् म् म् ऽ धु सारि ग् सारि सा, धु म् म् ऽ धु म् म्,

पाङ्जी— धु प धु नि धु प् म् धु नि धु प् म् ऽ ग् म् ग् सा ऽ धु नि ध, धु नि सा ग् म्, ग् म् ग् सा धु नि ध,

धैवती— सानि सारि सानि धु धु नि रि सानि धु म् धु म् ग् सारि सा, सारि ग् म् म्, म् म् ग् सारि सा,

पाङ्जी— धु नि सारि सा ऽ धु नि ध ऽ ।

धैवती— सारि ग् म् ग् ऽ सारि सा ऽ ।

धैवत को ग्रह शंश बनाने से ऊपर लिखी स्वरावली प्राप्त हुई जिसमें 'धैवती' जाति में सजिहित तोडो धैवती का मा रूप उपनव्य हुआ । यह ध्यान रहे कि पुन उस धैवत का छोड कर पञ्च को ही ग्रह शंश बनाने से पाङ्जी को पुन त्यागना होगा और इस प्रकार स्वायी स्वरावली पर लौट कर पुन स्वायिभवा का परिपोष किया जायगा । पञ्चोद्दीच्यवा का न्याम मध्यम इन पुनरावर्तन को क्रिया के लिए सचित्थल बनेगा ।

इस जाति के ग्रह शंशों में मध्यम का भी स्थान दिया गया है । तदनुसार मध्यम को अशक्य देने में खनाज-सदृश स्वरावली प्राप्त होगी । किन्तु 'मध्यम' यहाँ किसी समर्गप्राप्त जाति के न्याम स्वर का प्रतिनिधि नहीं है । ससर्गजा जानियों में कहा र इस प्रकार ग्रह शंशों का जो आधिक्य पाया जाता है, उन पर कुछ आगे चलकर विचार किया जायगा ।

रत्नगाधारी मध्यमग्राम की जाति है । इसमें गाधारी, मध्यमा, पञ्चमी और नैपादी— इन चार जानियों का समवाय है । मध्यमग्राम का गाधारी न्याम है अर्थात् इन चारों के सम्मिलन का स्थान है । रत्नगाधारी का उदाहरण ग्रह शंश ' सा) रे ग म प) नि ' हैं । यह जाति मध्यमग्राम की होने से मध्यमग्राम के गाधारी को न्यास अर्थात् ठहराव का स्थान बनाते हुए, मूल मध्यमग्रामिक स्वरो में इस जाति के आधारीमूल (वैन्द्रीय) रूप का निर्माण करता होगा ।

रत्तगान्धारी मे श्रुवा धैवत वर्ग्य पर के श्रोत्र रूप बाने को कहा गया है। तदनुसार ऋषभ-धैवत इस में प्रत्यात्व भी ममभा जा सकता है। इस दृष्टि में इसका स्वरूप कुछ निम्नोक्त ना बनेगा।

गान्धार-न्यासयुक्त गान्धारीः (मूल मध्यमप्रामिक स्वरावली धर्यात् यहाँ गान्धार को पङ्क वा स्थान त्ही दिया गया है।) गृ रि सा ग् ऽऽ म ग् ऽऽ म प ग् ऽऽ, ग् म प ग् ऽऽ, ग् म वि प ग्, ग् सा ग् म वि प ग्, ग् म प ग् म प ग्, ग् म ग् ऽऽ सा रि ऽऽ सा ग्।

मध्यमा ऋ संसर्ग—(मध्यमप्राम वा मध्यम ग्रह अथ) मध्यमा मे स्वर साधारण वा प्रयोग विहित है। अतः अन्तर वाक्ली वा यथास्थान प्रयोग किया जाएगा।

- मूल मध्यमप्रामिक स्वरावली १—म ग् ऽऽ म, म ग् म प ऽऽ म, म ग्-सागम प ऽऽ म, सागम्, म प वि प म
 मध्यमा २—सान्निःसा, सान्निःसारिःसा, सान्निःश्रुन्निःगृरिःसा, पुन्नि सा, सारिमरिःसा
- १—म वि प ऽऽम, म प नि सा वि प ऽऽम, ग म प नि सा वि प ऽऽम ऽ
 २—सा मरि ऽऽम, सारिम प मरिःसा, नि सारि प् प म रि साऽ
 १—सागम प नि प म ग्, सागम्, म प वि सा ग्, सागं ग् सांरिःसा,
 २—पुनि सारि म रि सा नि, पुनि सा, सारि म प नि ऽ, प नि सांरि प ऽ प,
 १—नि श्रु नि सांरि वि प म ग् ऽ, सागम् } म ग् साग प् ग् सा ग् म प नि सांरि प्—मे स्वर
 २—म श्रि म-अ ऽ म रि सा नि ऽ, प नि सा } बलिया सन्निस्थल-स्वरूप हैं। इनमे पुन गान्धारी में लीट सकेंगे।

पंचमी ऋ संसर्ग—मध्यमप्राम वा पंचम ग्रह अथ

- मध्यमप्राम की मूल स्वरावली १—प ऽऽ म प ग् ऽ, प म ग् म प ग् ऽऽ म प, प म ग् म प प नि, प प म प प ऽ
 पंचमी २ म नि सा ऽ, सानि ध्नि रि सा प ऽ नि सा, सानि ध्नि सारि ग्, सारि ना नि रि सा प्, सां
- १—प ऽ म प नि, सा प ऽ म, प म प ऽ प प ऽ ऽ नि ध नि, प प प ऽ,
 २—सा ऽ नि रि सा प, सा रे ऽ म, सानि ग् ऽ रि स रि ऽ ऽ ग् रि ग्, रि सा रे ऽ,
 १—प म प ऽ, प ऽ म प प ऽ सा नि ऽ ध म ग्, ग् म प प ग् } सा ग् ऽ म प ग्,
 २ सानि सा ऽ, सा ऽ नि रि सा रि ग् म श्रि म नि ध्, ध् नि स रि प् }

सागम नि सा ऽ ऽ नि प ऽऽ यह सन्निस्थल है जिस म पुन गान्धारी वा प्राग्भिर्भाव ही सकता है। स्वर साधारण वा प्रयोग पंचमी मे भी प्राव्य है। मध्यमा को भांनि यहाँ भी उने यथास्थान प्रयुक्त किया जा सकता है।

नैषादी वा संसर्ग—पङ्कजप्राम वा निषाद और मध्यमप्राम वा गान्धार धीणा पर एव ही स्था पर है। धन यहाँ हम नैषादी के निदर्शन के लिये पङ्कजप्राम की मूल स्वरावली मे ही निषाद को ग्रह अथ वा स्थान दे रहे हैं। साथ ही पाठवा के सीक्य के निः मध्यमप्रामिक स्वरावली भी दिया की है —

- पः प्रा० स्वरावली १—नि ऽ नि ध नि, नि ध् ऽ ऽ म् म् रि नि, नि ऽ नि ध् नि सा नि, नि ध् ऽ सा नि रि सा ग् रि,
 नैषादी २—सा ऽ ऽ नि सा, सानि ऽ ऽ प ऽ ग्, म ऽ नि रि स, स नि रि सा ग् रि म् ग्,
 म० प्रा० स्वरावली ३—ग ऽ ऽ रि म्, ग् रि ऽ ऽ नि ऽ ग्, ग् ऽ ऽ रि म् ग्, ग रि म् ग् ऽ म् म् ग्,

० 'रत्तगान्धारी' द्वय नाम मे 'गान्धारी' वा स्थान, गान्धार वा न्यासत्व तथा गान्धारी वा संसर्ग—एव तीनों दृष्टियों से यहाँ साधारणतः (के-त्रीय) स्वरावली को 'गान्धारी' नाम देना उचित समझा गया है।

- १—रिससन्नि, नि सारिगुणमामरिगसरिन्, नि सासारिरिगि,
 २—गरिरिस, स रिग मऽऽप पमप ग मरिगस, स रि रि ग ग म ग,
 ३—पममग, ग् म प घऽऽसंनिध्निध म पग्, ग् म म प प घ प,
 १—नि सारिगि, सारिग्म, रिग्मपम, पमऽपग्, गरिऽगुस, रिनिऽऽ
 २—स रि ग म ग, रिगमपम, ग म पघप, घाऽघम, पगऽमरि, गसऽऽ
 ३—ग् म प ध्प, मपन्धिध, पन्धिधनि, संनिध्निध, निध्निध्म, पगऽऽ

सगमपगमपनिपग्, ग्मपनिग्, सग्ऽ—यह स्वरावली सधिस्यल है जहाँ से पुन. गान्धारी पर लौट सकते हैं।

ध्यान रहे कि रत्नगान्धारी के ग्रह-अशांसे भरत ने 'गमपनि' के अतिरिक्त ऋषभ को भी स्थान दिया है। ऋषभ से पञ्चम की आर्षभी जाति बननी है। यहाँ आर्षभी जानि का संसर्ग नहा कहा गया है। पडजग्राम का पंचम ही मध्यमग्राम का ऋषभ है। मध्यमग्राम के पंचम को ग्रह-अश का स्थान देकर हमने अभी ऊपर पंचमी या ससर्ग निर्दशित किया। मध्यमग्राम के पंचम को यदि पडजग्राम का ऋषभ मानकर चलेंगे तो द्विभुक्तिव (कोमल) 'रे' प्राप्त होगा और ऊपर लिखी पंचमी की आशावरी-सदृश स्वरावली के स्थान पर भैरवी-सदृश स्वरावली प्राप्त होगी यथा —

- प० प्रा० ऋ० ग्रहऽश १—रिग्मप, पमगुंरि, सान्निऽसारि, रिग्मप, मपघन्धि,
 (ऋषभ को 'सा' मानकर प्राप्त स्वरावली) २—सारिग्म, मगुंरिऽ, निध्निध्म, सारिग्म, ग्मप ध्प,
 म० प्रा० स्वरावली ३—पन्धिऽ, संनिध्निध, मग्ऽमप, पन्धिऽ, निध्निध्निऽ, रि,
 १—पमगुंरि, सान्निऽसारि, रिग्मपघनिऽसारि,
 २—मगुंरिऽ, निध्निध्निऽ, सारिग्मपघनिऽ,
 ३—संनिध्निध, मग्ऽमप, पन्धिऽसारिऽमप,

मध्यमग्राम का पञ्चम और पडजग्राम का ऋषभ—दोना एक ही स्थान पर स्थित होने पर भी भ्रामभेद के कारण दोनों से उत्पन्न स्वरावलियों में जो भिन्नता है, उसी के निर्दर्शन के लिए संभवतः भरत ने ऋषभ को भी ग्रह अशांसे, स्थान दिया होगा।

ससर्गजा जातियों में जिन जातियों का संसर्ग कहा गया है, उनमें परस्पर 'समवाय सवन्ध' की स्थापना के लिये समवाय का एक विशिष्ट हमने एक विधि, विन्यास के रूप में प्रस्तुत की। 'ससर्ग', 'सयोग', 'समवाय' इन शब्दों के अर्थ दर्शन—चौथा विन्यास पर अधिक विचार करते हुए दो बातें मुख्यतः विचारणीय जान पडती हैं जो निम्नलिखित हैं। इन पर विचार करते हुए हम एक अन्य समवाय—विधि को विन्यास के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं।

(१) भ्रपवादरूप पडजग्राम्य और वैशिष्टी को छोड़कर प्रत्येक संसर्गजा जाति में न्यास स्वर एक एक ही कहा गया है। शुद्धा जातियों के अन्तर विवृत्त भेद बनाने के निमित्त जिन प्रकार उनमें अनेक ग्रह अशांसे का निर्देश किया गया है उसी प्रकार शुद्धाभो से समग स उल्लस इन एकादश जातियों में भी दो एक भ्रपवादों को छोड़ कर प्रायः सभी में एकाधिक ग्रह अशांसे बड़े गए हैं, किन्तु न्यास स्वर इनमें भी प्रायः एक एक ही कहा है।

(२) एक ओर हम देखते हैं कि संसर्गजा जातियों में न्यास-स्वर प्रायः एक-एक ही बड़े गए हैं और दूसरी ओर उनमें एकाधिक जातियों का संगम भी बताया गया है। ऐसी अवस्था में निम्नी एक न्यास-स्वर की संसर्गजा जाति के स्वररूप का नियामक कैसे समझा जाय ? तथा इन संसर्ग जा जातियों में न्यासस्वर का भिन्न जो ग्रह अशांसे बड़े गए हैं, उनका संसर्ग रूप की निष्पत्ति में क्या और क्या योगदान समझना चाहिये ?

(३) भारतीय 'समवाय' 'संयोग' 'ससर्ग' आदि शब्दों के भावार्थ पर विचार करने से ऐसा निष्कर्ष निकलता है कि जिन जातियाँ वा संसर्ग बतायी गयी हैं, उनके व्युत्पन्न रूप को बताये रखते हुए उक्त एतद् समावेश करना अनिष्ट है। इस प्रकार एतद् समावेश से समवायी रूप के निर्माण के लिये किसी न किसी नियम-रूप आधार की आवश्यकता है। यह आधार हमें भिन्न भिन्न संसर्गजा जातियों में भारत व धरातल हुए न्यास स्वरों से उपलब्ध होना है। ध्यान रहे यहाँ एकादेश में से उन नौ संसर्गजा जातियाँ वा हा प्रसंग है जिनमें कि एक ही एक न्यास स्वर कहा गया है। पर जिन दो जातियों में एणाधिक न्यासस्वर रहते हैं उन पर अन्यत्र धृक् रूप में विचार किया जाएगा। यह हमें अभी नहीं भूलना चाहिये कि इन सभी जातियों वा विनियोग प्रसंगानुसूल भावाभिव्यक्ति के लिये नाट्य में किया गया है। उक्त विराट् स्तरीकरण कुछ आगे चल कर दिया जाएगा। अस्तु।

'समवाय' सन्ध से संसर्गजा जातियाँ के निर्माण के लिये-उनके अपने अपने एक एक न्यास स्वर तो निम्न प्रकार हैं ही, साथ ही जिन जातियाँ का संसर्ग वा संयोग अभिव्यक्त है उनके अपने अपने व्यक्तित्व के निदर्शन के लिए संसर्ग-रूप में एणाधिक ग्रह भ्रश रह गये हैं। संसर्गजा जातियों में जो ग्रह भ्रश रहते हैं व प्रायः उन शुद्धा जतियों के नियामक स्वरूप न्यास स्वर के प्रतिनिधि हैं जिनका कि वहाँ संसर्ग अभिव्यक्त है। श्रु ५१-२ पर दी हुई सारिणी में यह बात स्पष्ट होगी। जिन स्वरों को रेखांकित किया गया है वे संसर्गप्रप्त जातियाँ के ऐसे न्यास स्वर हैं जिन्हें संसर्गजा जाति के 'ग्रह भ्रश' में अथवा 'न्यास' में प्रतिनिधित्व प्राप्त है।

प्रस्तुत सारिणी से यह स्पष्ट होगा कि केवल कुछ एक संसर्गजा जातियाँ ऐसी हैं जिनमें संसर्गप्रप्त जातियों के न्यास स्वरों में से एकाच स्वर को ग्रह भ्रश वा न्यास में वही भी स्थान नहीं मिल पाया है। इन भ्रशवादा व धीरे धीरे प्रयत्नों वा क्या निरोध हेतु होगा यह भ्रश से स्पष्ट नहीं होगा, यह कठिनाई दुष्यन्ता के समय यथावयव निवृत्त है। साथ ही कुछ संसर्गजा जातियाँ ऐसी भी हैं जिनके ग्रह भ्रश में कुछेक स्वरों का अधिस्थ है जो सारिणी में दिखता गया है। उक्त पर कुछ आगे चल कर विचार किया जाएगा।

प्रस्तुत विकल्प में संसर्गजा जातियों के ग्रह-भ्रश के आधार पर उनके अन्तर्गत संसर्गप्रप्त जातियों की अपनी अपनी स्वरावलियों का क्रम अधिर्भाव करना होगा। इस विकल्प में न्यास स्वरों को पञ्च का स्थान देना होगा और उसमें उचित स्वरान्वयी केन्द्रस्थ वनेगी। ग्रह भ्रश, संसर्गप्रप्त जातियाँ की स्वरावलियों के निर्माण के आधार बनती। इन स्वरावलियों को समवाय-संघ-धृक् बनाने के हेतु न्यास स्वर से उचित स्वरान्वयी केन्द्रस्थ बनकर इनके संयोग का नियमन करेगी और इस प्रकार 'न्यास' का नियामकत्व यहाँ भी अनुगुण रहेगा।

प्रत्येक संसर्ग रूप के व्यक्तित्व को बनाये रखते हुए जब एक से अधिक रूपों वा संसर्ग करना अनिष्ट है, तब अधिर्भाव के साथ-साथ तिरोभाव की क्रिया भी आवश्यक होगी, क्योंकि एक रूप के तिरोभाव के बाद ही क्रम रूप का अधिर्भाव ही संवेगा। इस अधिर्भाव तिरोभाव की क्रिया के नियमन के लिये किसी निश्चित आधार की आवश्यकता है ही। यही अर्थात् आधार भरत-रचित न्यास स्वर में उपलब्ध होना है। एव उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

मध्यमग्राम की रसगांधारी जाति में गांधारी, पञ्चमी, मध्यमा ये तीन मध्यमग्राम की और 'नैषादी' पञ्चमी की, दो चार जातियों का संसर्ग कहा गया है। इस संसर्ग रूप का एक ही न्यास स्वर कहा गया है और यह है मध्यमग्राम का गांधारी। अथ न्यास स्वर के अनुसार, मध्यमग्राम के गांधारी से उचित स्वरान्वयी की पंचमी, मध्यमा और नैषादी के संसर्ग के लिए आधार बनाया जाए एव उसी आधार में उन उन जातियों के अधिर्भाव और तिरोभाव की क्रिया की जाए। इस प्रकार रसगांधारी का न्यासस्वर गांधारी उसी संसर्ग रूप का नियामक

- 'प्राय' का उत्त्वेव उक्त प्रपचादों के धारण किया गया है जिनकी संख्या नगण्य नहीं है।

संज्ञा नाम
जाति का नाम

संज्ञाप्रतिशब्द जाति
संज्ञाप्रतिशब्द जाति
संज्ञाप्रतिशब्द जाति
के अन्तर्गत स्वर-
रूप के नियामक
व्याप्त स्वर

मध्यमोदीचरा
गान्धारी, पञ्चमी, शैवली,
मध्यम

गान्धारी, पञ्चमी,
मध्यम

ग, ङ, घ, ञ
ग, ङ, घ, ञ

५

मध्यमना जाति के व्याप्त स्वर का प्रति-
निधि 'मध्यमोदीचरा' के अन्तर्गत व्याप्त स्वर
में है, किन्तु गान्धारी और शैवली के व्याप्त-
स्वरों को ग्रह संज्ञा में नहीं प्रतिनिधित्व
नहीं है।

गान्धाराञ्जनी
गान्धारी, पञ्चमी

गान्धारी

ग, ङ, घ, ञ

५

गान्धारी के व्याप्त स्वर गान्धारी को
गान्धाराञ्जनी के व्याप्त स्वर में ही व्याप्त
प्राप्त है।

शारङ्गी
गान्धारी, शारङ्गी

गान्धारी, शारङ्गी

ग, ङ, घ, ञ

५, रि, यु, नि

शारङ्गी के व्याप्त स्वर शारङ्गी को ग्रह
संज्ञा में प्राप्त नहीं है और 'रि' तथा 'नि'
इतनी शारङ्गी में अधिक्य है।

कन्दर्पवी
गान्धारी, पञ्चमी, शारङ्गी

गान्धारी

ग, ङ, घ, ञ

ग्रह 'ग', अंश 'प'

शारङ्गी के व्याप्त स्वर 'रि' को मध्यम-
प्राप्त के 'प' में प्रतिनिधित्व प्राप्त है।

शारङ्गी
गान्धारी, शारङ्गी, पञ्चमी

पञ्चमी

ग, ङ, घ, ञ

ग्रह, रि, नि, घ

शारङ्गी में 'प' का इस जाति में
अधिक्य है।

बनता है। इस संसर्गजा जाति में '(सा) रि ग म (प) नि' ये षट् अंश बंधे गये हैं। इन षट् अंश स्वरो से बन्नी गान्धारी, बन्नी मध्यमा, बन्नी पचमी, और बन्नी गैषादी जातियाँ ही स्वरावलि या रक्तगायत्री के न्यासस्वर से उत्पन्न के द्रोय स्वरावलि के साथ सम्बन्ध जोड़ते हुए आभिर्भाव तिरोभाव की क्रिया की जाए।

यहाँ पुनरक्ति की आवश्यकता नहीं है कि इन जानियाँ के जा शुद्ध रूप हैं उन्हीं का यहाँ मलकानिने आभिर्भाव-तिरोभाव होता रहेगा। संसर्गजा जाति के अन्तर्गत न्यास-स्वर से प्राप्त मूल स्वरावलि इन आभिर्भाव तिरोभाव के बीच बीच में विराम और सविश्वल बनकर संसर्गजा रूप का नियमन करेगी और के द्रोय स्थान ग्रहण करेगी।

यहाँ स्मरण रह कि कुछ संसर्गजा जातियों के षट् अंश में कुछेक स्वरा का आधिपत्य है। अर्थात् उन उन संसर्गजा जानियाँ के अन्तर्गत जिन जिन शुद्धा जातियों का समगं अभिप्रेत है उनके अन्तर्गत न्यास स्वर तो उन उन संसर्गजा जातियों के षट् अंश में स्यात् पाए ही हैं किन्तु उनके अतिरिक्त भी कुछ आधिपत्य षट् अंश बनाए गये हैं। उदाहरणार्थ रक्तगायत्री जाति के षट् अंश '(सा) रि ग म (प) नि' में रा पडङ्ग निषो भी संसर्गजा जाति का प्रतिनिधि नहीं है। सभ्य है कि ऐम अतिरिक्त षट् अंश-स्वर संसर्गजा जाति के वेन्द्रस्य रूप में कुछ वैविध्य लाने के लिये उपयोगी होते हंगे।

संसर्गजा जातियों के आभिर्भाव तिरोभाव की क्रिया के बीच बीच में वेन्द्रस्य स्वरावलि का पुनरावतन होना क्रमप्राप्त है। इन पुनरावतन में एकरसता (monotony) न आ जाए इस दृष्टि से समस्त उक्तं कुछ वैविध्य लाने के लिये भरत ने कहा-नहीं षट् अंश का आधिपत्य रखा हो। जैसे आज गुणितन निषो राग का विस्तार करते समय राग में नियमित रूप से प्रयुक्त स्वरा के अतिरिक्त अन्य स्वरो के प्रयोग से या अन्य राग की छाया या आभास दिखाकर नावी-पूर्ण चमत्कार की खिष्ट करते हैं, कुछ उसी ढंग की क्रिया संसर्गजा जातियों की वेन्द्राय स्वरावलि में भरत की अभिप्रेत रही होगी और सभवत इन्हीं लिये उन्होंने कहीं-कहीं एक आध षट् अंश का आधिपत्य रखा होगा।

संसर्गजा जातियों के बारे में 'समवाय' का जो चोथा विचल हमने अभी देखा उसे प्रत्यक्ष वीणा-वादन में कैसे जातियों के समवाय की प्रयुक्त किया जाए या वैसे किया जा सकता है, इसका स्वल्प स्पष्टीकरण यहाँ स्थानीय हागा, वीणावादन में प्रत्यक्ष क्योंकि स्वर-तन्त्रिये तथा स्वरान्तराला की प्रत्यक्ष सिद्धि के लिए वीणा ही प्रागणिक सिद्धि साधन है।

'सा' 'म' और 'प' ये तीन स्वर tonio (स्वरित) के रूप में परापूर्व से प्राय माने गए हैं और वीणा पर इन तीन स्वरा की स्थिति कहाँ है? इस प्रश्न के उत्तर में यह उल्लेखनीय है कि वीणा पर बाज के तार की मद्र मध्यम अथवा मद्र पडङ्ग अथवा मध्य पडङ्ग में मिलान की परम्परा और अत्यन्त उल्लेख मिलते हैं। बाज के तार की पञ्चम में मिलाने का उल्लेख या परम्परा नहीं है। बाज के मुक्त तार (मेघ) की मध्यम मानने से सातवाँ पद पडङ्ग का स्थान पाता है और यही स्थान भारत के पूर्व, पश्चिम, उत्तर के व्यवहार में मध्य सप्तम का आरंभक है। वीणा पर मतगोच मध्य सप्तम भी यही से आरंभ होता है। साथ ही यह भी ध्यान रह कि मेघ पर मध्यम मानने से मेघ से दूसरा पद पचम का स्थान पाता है। मेघ का पडङ्ग मानने से सातवाँ पद पचम बन जाता है। इस प्रसंग में यह भी स्मरणीय है कि पडङ्गग्राम तथा मध्यमग्राम की स्वरावलिवाँ विशिष्ट अन्तरानुक्त होने से उनका स्थान वीणा पर नियत है, जो अपरिवर्तनीय है। वह स्थान है, मेघ से दूसरा पद जिस पर पडङ्गग्राम का पडङ्ग तथा मध्यमग्राम का मध्यम स्थान हैं। मेघ से सातवाँ पद पडङ्गग्राम का मध्यम बनना है। इस प्रकार मेघ पर 'सा' अथवा 'म', दूसरे पद पर 'सा' (पडङ्गग्राम) 'म' (मध्यमग्राम) अथवा 'प' (मध्य सप्तम का मद्र पञ्चम) तथा सातवाँ पद पर भी 'सा' 'म' 'प' की स्थिति है जो निम्न सारिणी से स्पष्ट होगी।

● यहाँ 'स्वरित' का शब्द के 'उदात्त, अनुदात्त, स्वरित' इन तीन स्वरो में जो 'स्वरित' है अपने अभिप्राय नहीं है, अर्थात् अक्षरों के tonio शब्द को ही 'स्वरित' कहा गया है।

मेरु

मेरु से दूसरा पर्दा

मेरु से सातवाँ पर्दा

पञ्चम

मध्यम

पञ्चम ('मध्यम' सतरु पा मन्द्र पं०)

पटञ्ज (प, ग्राम)

मध्यम (म, ग्राम)

पञ्चम

पटञ्ज

मध्यम

वादन-क्रिया की सुविधा, संवाद्युक्त स्वर-सन्निवेश की सुविधा तथा गवीन मूर्च्छना-निर्माण की सुविधा—सब दृष्टियों से वीणा पर यही तीसरा स्थान स्वरित-के रूप में प्राप्त माने गए हैं और यही समुचित भी है। श्रद्धा-युक्तियों की क्रिया में अन्य स्वरित का व्यवहार नहीं होता। अन्य स्थानों की स्वरित मानने से क्या अनुभव्य है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि परंपरागत रूप से मिली हुई वीणा पर 'स' 'म' 'प' के अतिरिक्त 'रि' 'म' 'ब' 'ति' से किसी स्वर को यदि स्वरित के रूप में स्थापित करना हो तो आवश्यकतानुसार बाज के तार को चटाना या उठाना होगा। किन्तु उनमें दो कठिनाइयाँ सामने आएँगी—(१) तरफ़ों वाले बाजों में बढते हुए स्वरित के अनुसार तारों को निलाना होगा। इससे महकन में रम-भंग होगा जिस से कोई भी कलाकार सदैव बचना चाहेगा। (२) स्वरित बढते से जो अनिष्ट अन्तराल आएँगे उन्हें छुट बनाने के लिए पदों रखनाने होंगे और यह सारी प्रक्रिया सफ़र-सुधार और रक्षित होगी। इसी से उपरिर्वाचन 'सा-म-प' को ही स्वरित मानना हर दृष्टि से श्रेष्ठ है।

इस प्रसंग में यह भी स्मरणीय है कि दोनों ग्रामों की मूल स्वरालयियाँ वही वीणा के मध्य सतरु के रूप में प्राप्त की जा सकती क्योकि पञ्चमग्राम का त्रिध्रुति 'रि' तथा त्रिध्रुति 'प' वीणा के संवादसिद्ध स्वर-स्थानों पर मध्य सतरु से वही भी प्राप्त नहीं हो सकते। यदि कोई मध्य सतरु में (यानी मेरु से सातवाँ पदों को पञ्च मान कर) दोनों ग्रामों की मूल स्वरालयियों की स्थापित करने का यत्न करे तो वीणा का बेमुदा हो जाना अवश्यभावी है जो निरी स्वरज्ञ को, निरी क्रियाबुद्धि युक्तों को स्वीकार नही होगा। दोनों ग्रामों की मूल स्वरालयियाँ तो मेरु से दूसरे पदों को पञ्च अथवा मध्यम मानने से ही अवायव्य रूप से प्राप्त हो सकती हैं।

वीणा पर 'सा, म, प' की विभिन्न स्थानों पर स्थिति तथा इन्हें तीन स्थानों को स्वरित (tonic) मानने की सुविधा और साथ ही उभयग्राम की वीणा पर नियत अथवा अपरिचितनीय स्थिति—इन तीनों विषयों पर ऊपर के उल्लेख से जो सिद्धान्त स्थिर हुए तदनुसार जातियों की वादन-विधि निम्नलिखित निरूपण में प्रस्तुत है।

इस प्रसंग में संसर्गाजा विद्वत्ता जातियों की वादन-विधि के निरूपण के पूर्व शुद्धा जातियों के लिए स्वर-उल्लेख आवश्यक है। शुद्धा जातियों में जहाँ न्यास स्वर ग्रामविशेष की मूल स्वरालयी का आरंभस्थान हो वहाँ तो ग्राम की मूल स्वरालयी को अग्रत रखने के लिए उस जाति का वादन उसी स्थान की स्वरित मानकर किया जाए जो उस ग्रामविशेष का आरंभ हो। यथा पाञ्चम में पञ्चमग्राम का पञ्चम और मध्यम में मध्यमग्राम का मध्यम न्यास स्वर है। अतः इन दोनों जातियों में वीणा के मन्द्र पञ्चम (मेरु से दूसरे पदों) को ही स्वरित मानना समीचीन होगा। यह स्वरालयियाँ भी अनुष्ण रह सकेंगी। दोनों ग्रामों के श्रुत्यन्तरी का अथवा विशिष्ट महत्त्व है जिसके कारण उन्हें अतिव्यक्त स्वरालयी की स्थान नहीं है, अतः उसे अग्रत रखने का कोई प्रदा नहीं उठता। हम जानते हैं कि प्रत्येक ग्राम की सात मूर्च्छाग्रामों में से एक ही मूर्च्छना में ग्राम के मौलिक श्रुत्यन्तरी प्राप्त होते हैं और अन्य मूर्च्छाग्रामों में स्वरों के संश्लेषः

के कारण अन्तराल बदलते रहते हैं।- इसीलिये यह कहा है कि पाड़जी और मध्यमा को छोड़कर अन्य शुद्धा जातियों में ग्रामो के मौलिक ध्रुवन्तर बनाए रखने का प्रयत्न नहीं है। अतः इन शेष पाँच जातियाँ के अपने अपने स्वर से जो मूर्च्छना बनें, उससे जो स्वरान्तराल प्राप्त हों उनका वीणा पर प्रत्यक्ष प्रयोग सुनिश्चानुसार 'सा, म, प' में से जिसो भी स्थान से किया जा सकता है। यह सत्य है कि क्रियात्मक मुविधा मध्यमा सप्तम में ही प्रचिन होगी, किन्तु फिर भी इच्छानुसार मध्यमा को अथवा दूसरे पदों को स्वरित मानकर वादन किया जा सकता है। उदाहरण के लिए पडजग्राम की आरंभी जाति में मध्यमा की मूर्च्छना से निम्नलिखित स्वरावली प्राप्त होगी :-

रि—ग—म—प—घ—नि—सा—रि
सा—रि—ग—म—प—घ—नि—सा
—२—४—४—३—२—४—३—

इस प्राप्त स्वरावली की मध्यमा सप्तम में ले आने से अथवा मध्यमा पडजग्रामिक पडज की स्वरित मानकर प्रयुक्त करने से स्वर-सवाद का कदा भंग नही होगा। इस मूर्च्छना में 'सा म' का जो दस श्रुति अन्तराल है, उसके स्थान पर नव श्रुति का संवादी अन्तराल इन तीनों स्थानों से प्राप्त होगा। अतः इस स्वरावली की मध्यमा अथवा दूसरे पदों से अथवा मध्यमा पडज (सातवें पदों) से प्रयुक्त कर सकते हैं। वादन-मुविधा अवश्य ही 'मध्यमा सप्तम' (सातवें पदों से) में अधिक होगी।

यह तो हुई शुद्धा जातियों की बात। सप्तमजा जातियों में 'सप्तमवाय' का वादन क्रिया में कैसे उपयोग किया जा सकता है? इस का विवेचन इस प्रकार है। जहाँ न्यास स्वर धाम के आरम्भ स्वरसे भिन्न है, अर्थात् पडजग्राम का पडज अथवा मध्यमग्राम का मध्यम नहीं है, वहाँ न्यास स्वर की मूर्च्छना से प्राप्त स्वरावली की मध्यमा सप्तम में ला कर केन्द्रीय स्थान देना होगा। जिन जातियों का सप्तम बताया गया हो, उन जातियों के अपने न्यास स्वर की बारी बारी से आरम्भस्थान मानना होगा अर्थात् उन न्यास स्वरों से उचित मूर्च्छनाओं को प्रयोग करना होगा। जब जिस मूर्च्छना का प्रयोग होगा, तब उसी का आरम्भस्थान थोड़ी देर के लिए पडज का स्थान पा जाएगा और मध्यमा सप्तम के पडज के स्वरित रूप का तीरोभाव हो जाएगा। उस मूर्च्छना-विरोध का प्रयोग पूरा होते ही पुनः मध्यमा सप्तम की स्वरावली में लौट कर मध्यमा पडज को स्वरित का रूप देना होगा। एव उदाहरण में यह बात स्पष्ट हो जाएगी। पडजकेशिकों में पाड़जी और गान्धारी का सप्तम कहा गया है। और इनका सप्तम न्यास स्वर गान्धार कहा गया है। यह जाति पडजग्राम की है, अतः पडजग्राम के गान्धार से उचित स्वरावली को सर्वप्रथम देख लें।

पडजग्राम के गान्धार की मूर्च्छना—ग—म—प—घ—नि—सा—रि—ग
गान्धार को पडज मानने से प्राप्त सा—रि—ग—म—प—घ—नि—सा
स्वरावली— —४—४—३—२—४—३—२—

इसी कल्याण-महेश स्वरावली की मध्यमा सप्तम में ला कर उसे उक्त जाति में केन्द्रीय स्थान दें। अब पाड़जी जाति के न्यास स्वर पडजग्राम के पडज और गान्धारी जाति के न्यास स्वर मध्यमग्राम के गान्धार को कुछ अवधि तक क्रमशः आरम्भस्थान मानते हुए उन न्यास स्वरों की मूर्च्छनाओं में कुछ विस्तार कर के पुनः मध्यमा सप्तम में केन्द्रीय रूप पर लौट आता होगा। हाँ, जहाँ सप्तमजा जाति का न्यास स्वर ग्राम का आरम्भस्थान हो, जैसे गान्धारीदीर्घवाय और मध्यमोदीर्घवाय में मध्यमग्राम का मध्यम न्यास है, वहाँ ग्राम की मूल स्वरावली को अपने अपने स्वरों के लिए उने मध्यमा सप्तम में लाए बिना ही उनी मूल आरम्भस्थान से उचित स्वरावली को केन्द्रीय स्थान देना होगा। साथ ही जिन-जिन जातियों का सप्तम कहा गया हो उन के न्यास स्वर के अनुसार उन का क्रमशः प्रयोग करना होगा।

पञ्चमध्यमा तथा षडशो ये दो ऐनो संगर्गजा जातियाँ हैं जिनमें एक में अधिः न्यास स्वर बडम म् है। एनाधिक न्यास वाली दो पञ्चमध्यमा में 'सा म' ये दो न्यास हैं और कैःशिकों में 'ग नि' और क्वचित् 'व' भी, ये ही संगर्गजा जातियाँ गाय हैं। एगोलिए टन पर पुष्व् र्ण से विचार करना आवश्यक समझा गया है। ए दोनो वा अन्य संगर्गजा जातियों को श्रेःता वैशिष्ट्य है, यथांन एव पञ्चमध्यमा) सर्वनाम्ना है और दूसरी (कैःशिकी) में पाँच जातियाँ वा संगर्ग हैं। ये दोनो विशेषताएँ अन्य त्रिको संगर्गजा जाति में नहीं हैं।

पञ्चमध्यमा में पञ्चम्राम की पाड्जी और मध्यमग्राम की मध्यमा—इन दो ही जातियों का संगर्ग है। ये दोनो जातियाँ क्रमशः पञ्चम्राम और मध्यमग्राम की मूल स्वरसंज्ञाओं की प्रतिनिधि हैं। यह जाति सर्वराश्या होने से इसमें उभयग्रामिन मूल स्वरसंज्ञा का एतन्न समानेय रसगिडि के लिए आवश्यक है। इतीनिए पञ्चम्राम के पञ्च और मध्यमग्राम के मध्यम—इन दोनों का इसमें न्यास-व रखा गया है। ये दोनो स्वर वीणा के एव ए स्वर श्रवात् मेरु से ठून्ने पर स्थित हैं। ध्यान रह कि इस जाति में उभय स्वर-साधारण का प्रयोग विहित है और साता स्वरां को इसमें ग्रहंश का स्थान दिया गया है। ये सातां स्वर उभयग्रामिन समझने चाहिए, क्योंकि यथा संभवत नामाभिवादा म 'पञ्च' का प्रथम स्थान होने से, पञ्चमध्यमा को पञ्चम्राम की संगर्गजा जातियों में समष्टि किया गया है, तथापि यह पूर्णरूप से उभयग्राम का सञ्चित् र्ण है। यह एस्वेप उभयग्राम के मूल स्वर पदम पर मध्यम के न्यासत्व से स्पष्ट है।

कैःशिकी में पाड्जी, गान्धारी, मध्यमा, पञ्चमी, और नैपादी—इन पाँच जातियों का संगर्ग है। एषा ग्रहंश 'सा' 'ग' 'म' 'व' 'ध' 'नि' बहे हैं, और श्रैवत के श्रंशत्र के कारण इसका रम वीमम-न्यास-व बताया गया है। इसके न्यास गांधार निपाद वतावर भरत ने यह कहा है कि क्वचित् पञ्चम भी इसमें न्यास बनाता है। हन जाती कि पञ्चम्राम का निपाद और मध्यमग्राम का गान्धार वीणा के एव ही स्थान पर श्रवात् मेरु पर स्थित हैं। ए गान्धार-निपाद की न्यासत्व देन से उभयग्रामिन प्रतिधाय के अनिरिक वास्तव में 'न्यास' का द्विव नहीं है। पचन को 'क्वचित् न्यास' कहने के पीछे कदाचित् भरत की रस-दृष्टि रही हा।

संगर्गजा जातियों के 'समवाय' या सयोग या 'ससर्ग' वा स्वर-दृष्टि से क्या तात्पर्य है, यह हमने ऊपर विभिन्न भाव-दृष्टि से संसर्गजा विचल्यो में देखा। श्रव भाव-दृष्टि में इस विषय का कुछ विवेचन आवश्यक है। इस संबन्ध में जातियों का द्रजन सबप्रदम यह स्मरण रखना चाहिए कि 'जाति' का निरूपण नाट्य के प्रसन में ही हुआ है तथा नाट्यवापयोगी सगात प्रयोग की दृष्टि हा 'जाति' के निरूपण में रखी गई है। भरत ने जातियों के रसा का जो उल्लेख किया है, उन हम कुछ श्रापे चलकर देखेंगे। यहाँ इतना ही उल्लेखनीय है कि नाट्यगत संगीत प्रयोग के सर्वां में 'जाति' पर विचार करने से संगर्गजा जातियों को 'समवाय-विधि' अधिक स्पष्ट हो जाएगी।

हम जानते हैं कि किसी भी नाट्य-प्रयोग में केवल एव ही रस या भाव का निरन्तर अस्तित्व नहीं रहता। यहाँ तक कि एव दृशर या 'श्रैक्षणक' में भी द्रत स्वरित गति से भावों का परिवर्तन होता रहता है। विभिन्न स्थान भावा की पुष्टि के लिए संचारि-भावों का आवागमन भी बना रहता है। एस प्रतिक्षण बदलती हुई भाव भूमिका के श्रुतुरूप जब गीत या वाद्य या कुतन प्रयोग करना श्रांगीप्सित हो तत्र एव ही स्वरसंज्ञा के सतन प्रयोग व श्रांगीप्सित किमि महा हो सानो, यह स्पष्ट ही है। बदलती हुई भाव-निररिथिति के साथ संगति विधान के लिए, साीन प्रयोग में भी तदनुकूल परिवर्तन आवश्यक होते हैं। ईपरिचरना को एन नियमित स्वरूप देने के लिए भरत ने विभिन्न श्रुंशजा जातियों के समवाय से संगर्ग जातियों का निमाण श्रिया हांग एसा कहने में कोई प्रत्यनाय नहीं है।

* श्राजवन शास्त्रीय मनोःन को मद्रागिन्, वाय्वेग प्रोर जागे गिग प्ररार हाते हैं उनका नाट्य से स्वान वा पुष्व् र्ण है। एम प्रकार के श्रायोचना में श्राव शास्त्रीय संगीत जिस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है, उन से नाट्यगत 'जाति'-संगीत भिन्न है। इसलिए भरतोजक 'जाति' को हमें नाट्य की भाव-दृष्टि के अन्तर्गत समझना श्रांगीचीन हा।

एक जाति के बनने रूप के अतिरिक्त अन्य जिस या जिन जातियों का उस एक ही जाति-विरोध में समवाय-रूप शान्त अभिप्रेत हो, उन-उन जातियों के न्यास-स्वर से उद्भूत स्वरावलीमा नाट्य के रसमाय-परिवर्तन के अनुकूल प्रयोग में लाई जाएँ, अर्थात् उनका यथाभाव, यथानाट्यप्रसंग, यथारस उपयोग किया जाए और पुनः संसर्गजा जातिके बनने न्यास स्वर से प्राप्त स्वरावली पर आधार उस प्रयोग-विरोध को पूर्ण किया जाए। उदाहरण के लिए पाइजी जाति का रूप उसके न्यास-स्वर से दिखाते हुए जहाँ अन्य भाव के परिवर्तन की नाट्य में आवश्यकता प्रतीत हो, तदनुसार गन्धारी या धैवती, मध्यमा, पञ्चमी जो कुछ अन्य जातियाँ उस संसर्गज रूप में बताई गई हों, उनका यथास्थान, यथा-भाव विनियोग करना यही भरतमुनि का संसर्गजा जातियाँ बताने का आशय हो सकता है।

जैसे काव्य-क्षेत्र में स्थायिभाव को स्थिर रखते हुए, (क्योंकि वह 'स्थायी' है) संचारि-भावों में संचरण किया जाता है और एक से अधिक संचारि-भावों में सञ्चरण करते हुए पुनः मूल स्थायि-भाव पर लौट आते हैं, तद्वत् एक संसर्गजा जातिके बनने न्यास स्वर से उत्थित स्थायी स्वरावली में अन्य संसर्गप्राप्त जातियों की स्वरावली द्वारा संचरण करते हुए भिन्न २ भावाभिव्यक्ति के साथ पुनः स्थायी स्वरावली द्वारा स्थायिभाव की पुष्टि करना भरत को अभिप्रेत रहा होगा।

कार तीसरे और चौथे विकल्प में हमने 'समवाय' विधि पर जो विचार किया उसके साथ इस रस-दृष्टि का सामंजस्य इस प्रकार स्थापित किया जा सकता है कि संसर्गजा जाति के केन्द्रीय-रूप को प्रस्तुत स्थायिभाव का अभिव्यञ्जक समझा जाए और अन्य संसर्गप्राप्त रूपों को सञ्चारिभावों के अभिव्यञ्जक माना जाए। अर्थात् इन संसर्गजा जातियों द्वारा एक केन्द्रीय स्थायिभाव की परिधि में अनेक सञ्चारिभावों की अभिव्यक्ति संभव है। जब स्थायी (केन्द्रीय) स्वरावली का तिरोभाव कर के किसी अग्रभूत स्वरावली द्वारा किसी सञ्चारिभाव की अभिव्यक्ति की जाएगी तब केन्द्र से परिधि की ओर गति समझी जाए और जब पुनः केन्द्रीय स्वरावली में लौटेंगे तब परिधि से केन्द्र की ओर गति समझनी चाहिए। इस प्रकार संसर्गजा जातियों द्वारा नाट्य के धन धन बदलते हुए भावों का स्वर-चित्रण भी संभव होता है और पुन-पुन केन्द्रीय रूप पर लौट कर स्थायिभाव का समुचित परिपोष भी सिद्ध होता है। साथ ही रसों के गुणों की अभिव्यक्ति भी संभव समझी जा सकती है, यथा—एक ओर रौद्र तो दूसरी ओर कृष्ण, एक ओर वीर तो दूसरी ओर भद्रकृत, एक ओर धीमत्स तो दूसरी ओर 'भयानक', एक ओर शृंगार तो दूसरी ओर हास्य। * अस्तु।

संसर्गजा जातियों में नाट्य—अन्तर्गत रस भाव की दृष्टि से विभिन्न शुद्धा जातियों का 'संसर्ग' या समवाय कहा गया है, यह विचार-सरणी भाव्य होने पर भी कुछ प्रश्न अवश्य उद्भूत होते हैं। यथा—इन संसर्ग रूपों के निर्माण में क्या नियम रहा होगा? किस नियम के आधार पर इतने ही संसर्गज रूप बनाए गए? कम या अधिक क्यों नहीं बनाए? अमुक-अमुक जातियों का ही संयोग क्यों किया गया? अथवा वा क्यों नहीं किया गया?—इत्यादि। उदाहरण के लिए पाइजी के साथ गन्धारी या धैवती का ही संयोग क्या, अन्य किसी का क्यों नहीं? इत्यादि। अन्वकारों में तो केवल इतना ही उल्लेख किया है कि अमुक-अमुक जातियों के संयोग या संसर्ग से अमुक-अमुक संसर्गज रूप निष्पन्न होते हैं। ऐसे संसर्गज रूप एवादाश ही माने हैं और इतने में ही संसर्ग की मर्यादा बांध दी है। इस मर्यादा के कारण का कहीं कोई स्पष्टीकरण नहीं है। दूसरे शब्दों में यो कह सकते हैं कि इतने ही संसर्गी रूपों का निर्माण क्या किया गया? कम या अधिक का क्यों नहीं? इसका कहीं कोई उत्तर प्राप्त नहीं है। किन्तु उद्युक्त विचार सरणी के अनुसार 'जाति' के मूल को नाट्य प्रयोग में रस-भाव का पोषक तत्त्व मानने पर यह कहा जा सकता है कि नाट्यानुकूल रस-भाव की अभिव्यक्ति के लिए इतने ही समवायी रूपों का विनियोग आवश्यक और पर्याप्त समझा गया होगा।

* भरत ने रसों के इन गुणों का प्रतिगदन नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में किया है।

संस्पर्शा जातियों के समवायी रूपों की रचना के बारे में जो योजनाएँ हो सकती हैं, उनमें से दो दोस्त हम ऊपर तीसरे-चौथे विचार में पहले आए हैं, तीसरी योजना निम्नोक्त है—

रंगभूमि के रङ्ग को उज्ज्वल बनाने के लिए भरतमुनि ने कुतब की योजना का निदर्शन किया है। कुतब 'कुतब'-योजना में जातिों 'कु.' नाम रङ्गो-नाट्यभूमिवा; तबो नाम (स) तबति उज्ज्वलपनीति कुतब., अर्थात् "रङ्ग रङ्ग उज्ज्वलपति ही कुतब."। वीणा, वंशसादन, मारंङ्गन, पार्श्वन, वैपश्चिक आदि तब, धवनत, घन और गुपिर वाद्य-वादकों के समूह का कुतब-विन्यास नाट्य में प्रयुक्त होता था, जिसे आज हम स्थूलमान में वृन्द-सादन का रूप ममक सकते हैं; तबन् श्री-मुरारो का वृन्द-मन से बाले, भिन्न भिन्न व्याप्ति (Range) बाने तथा भिन्न भिन्न प्रकार की भावाभिव्यक्ति की सामर्थ्यवाले स्त्री-वृन्द वाले व मुरारो वंठी हों, कोविल वंठी हों, चातक वंठी हों, श्रीश्र कठो हों, या दादुर वंठी हों—इन सब विभिन्न बच्चों का वाद्य-सङ्ग संगत के माय नाट्य की भावाभिव्यक्ति के लिए यथाम्याल, यथारस विनियोग करते समय इन संस्पर्शा जातियों का उल्लेख होता होगा। आज विश्व की नाट्यभूमि को देखते हुए यह कहने में कोई बाधा नहीं है कि नाट्य के अन्तर्गत भावभूत संगीत प्रयोग में वाद्य-वृन्द तथा भिन्न गुण-धर्म के बण्ड आदि का समूहगत उपयोग जतिन-गान में होना ही होगा।

भरत की वही हुई संस्पर्शा जातियों के समवायी या सघोषी रूप अथवा ध्रुविङ्ग (Grouping) को देखते हैं उक्त अनुमान पुष्ट होता है।

मान लें कि किसी नाट्यप्रेक्षण में किसी रस-विशेष के प्रकाशनाथ किसी विशेष संस्पर्शा जाति का किया है। ऐसे अवसर पर उस जाति के न्यास स्वर से उचित स्वरावलि को स्वाभिभाव के निदर्शन के लिए प्रस्तुत किया जाए। उसके लिए विशेष प्रकार के बण्डों का और वाद्य-समूहों का कुतब प्रयोग किया जाए और उन्नी प्रेक्षकों में विभिन्न सञ्चारि-भावा के मञ्जार की अभिव्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न ग्रह-अंशदि स्वरों से उचित उन-उन सङ्घर्षित जातियों की उन-उन स्वरों से कुतब-सहित गान-क्रिया की जाए। स्थायि-भाव के गायक-समूह का गान समाप्त होते ही उनमें से जिस भी जाति का ग्रहण क्रमप्राप्त हो, उसकी स्वरावलि का वाद्यो में भूमिका के रूप में प्रकृत किया जाए। उमने पश्चात् भिन्न बण्डवाने गायक-समूह उसकी स्वरावलि में कुतब सहित गान करें और इस क्रम से भिन्न भिन्न स्वरावलि में भिन्न भिन्न सञ्चारिभावा का निदर्शन करते हुए बीच-बीच में जहाँ-जहाँ रसानुसृत प्रतीत हो, वहाँ-वहाँ स्थायी स्वरावलि पुनः प्रयुक्त की जाए।

उक्त विवरण से यह स्पष्ट हुआ होगा कि भरत-प्रतिपादित संस्पर्शा जातियाँ नाट्य-प्रसंग में रस-भावाभिव्यक्ति के लिए कैसे व्यवहृत होती होंगी। आज के नाट्य-मंगीव, सिने-संगीत, कुतब विन्यास, वृन्द-वादन, नृत्य-नाट्य (दिने), गीति-नाट्य (आनरा) आदि को देखते हैं और साथ ही भरत की नाट्यशास्त्रान्तर्गत जिन-जिन विषयों का उल्लेख हुआ है, उनका अध्ययन करते हैं तो कम से कम दो हज़ार वर्ष पूर्व लिखे गये, खेले गये और प्रयुक्त किये गये शास्त्र, नाट्य और संगीत विद्वानों के विवक्षित और उच्च भूमिका पर स्थित थे, इसका अनुमान लगा सकते हैं।

जातिगत रसप्रकरण

भरत नाट्यशास्त्र में उल्लिखित जातियों को हमने विभिन्न दृष्टियों से देखा और उन को वित्त प्रकार प्रत्यक्ष प्रयोग में लाया जा सकता है, इसका भी सोचकर विचार सज्जीकरण किया। अब इन प्रकरण में एव ही विषय अर्थात् है और यह है जातियों के सम्बन्ध में भरत की रस-दृष्टि। इस सम्बन्ध में भरत के वचन निम्नोक्त हैं। चौथम्,

प्राची तथा निर्णयसागर, बम्बई से प्रकाशित नाट्यशास्त्र के संस्करणों के पाठ हम एक साथ दे रहे हैं, जिससे पाठकों को ठाठभेद स्पष्ट गोचर हो सके। भारत के बच्चों के उद्धरण के पक्षान् एक तात्काल में सभी जातियों का भरतीकृत रस-दर्शन प्रस्तुत कर दिया गया है।

चौलम्भा (वनारस) संस्करण

पङ्गोदीच्यवती चैव पङ्गमध्या तथैव (च)।
 पङ्गमध्यमबाहुल्यात् वार्यं शृंगारहास्ययोः ॥१॥
 आर्षमी चैन पाङ्गो च पङ्गपरंनग्रहस्वरात्।
 वीराद्भुते च रौद्रे च निपादाङ्ग (दाश) परिग्रहात् ॥२॥
 गान्धारोरोपपत्त्या च कण्ठे पङ्गवैशिकी।
 धैवती धैवताशा च धीभस्ते समयानके ॥३॥
 ध्रुवाविधाने कर्तव्या जातिगाने प्रयत्नतः।
 रमं कार्यमवस्था च ज्ञान्वा योग्या प्रयोक्तृभिः ॥४॥
 पङ्गग्रामाश्रिता ह्येता विज्ञेया जातयो बुधैः।
 अत परं प्रवक्ष्यामि मध्यग्रामसमाश्रया ॥५॥
 गान्धारोरक्तगान्धार्योर्गान्धारशोपपत्तितः।
 कण्ठे तु रसे वार्यो जातिगाने प्रयोक्तृभिः ॥६॥
 मध्यमा पञ्चमी चैव नन्दयन्ती तथैव च।
 मध्यपञ्चमबाहुल्यात् कार्यं शृंगारहास्ययो ॥७॥
 मध्यमोदीच्यवती चैव गान्धारोदीच्यवती तथा।
 पङ्गपरंभाराणिगच्छ्या कर्तव्या वीररौद्रयो ॥८॥
 वार्मारवो तथा चान्ध्री निपादाशोपपत्तितः।
 श्रद्धुते तु रसे वार्यो जातिगाने प्रयोक्तृभिः ॥९॥
 वैशिकी धैवताशा स्यात् तथा गान्धारपंचमी।
 प्रयोक्तव्या बुधै सम्यक् धीभस्ते समयानके ॥१०॥
 एतैव पङ्गमध्या ज्ञेया सर्वरससंश्रया जातिः।
 तस्या हंसाः सर्वे स्वरस्तु विहिता प्रयोगविधौ ॥११॥

(ना० शा० २६१-११)

निर्णयसागर (बम्बई) संस्करण

पङ्गोदीच्यकरं चैव बहु (पङ्ग) मध्यं तथैव च।
 मध्याग्रमबाहुल्यात्कार्यं शृंगारहास्ययोः ॥१॥
 पाङ्गो त्वयापंमी चैव स्वरंशोपपत्तिसृष्टात्।
 वीररौद्राद्भुते-वेते प्रयोग्यो (ज्या) गानयोक्तृभिः ॥२॥
 निपादं (दा) शे प (च) नैपादो गान्धारो (री) पङ्गकैशिकी।
 कण्ठे च रसे कार्यं जातिगानविशारदैः ॥३॥
 धैवती धैवताशो तु धीभस्ते समयानके।
 धैवती कण्ठे योग्या चोन्मादे (?) पङ्गमध्यमा ॥४॥
 ध्रुवाविधाने कर्तव्या जातिगाने प्रयत्नतः।
 पङ्गग्रामाश्रिता ह्येताः प्रयोग्या जातयो बुधैः ॥५॥
 अत परं प्रवक्ष्यामि मध्यग्रामसंश्रया।
 गान्धारोरक्तगान्धार्योर्गान्धारशोपपत्तितः ॥६॥
 कण्ठे तु रसे वार्यो निपादोऽपि तथैव च।
 मध्यमा पंचमी चैव नन्दयन्ती तथैव च ॥७॥
 गान्धारपंचमी चैव मध्योदीच्यवती तथा।
 मध्यपंचमबाहुल्यात्कार्यो (र्याः) शृंगारहास्ययोः ॥८॥
 वार्मारवो तथा चान्ध्री गान्धारोदीच्यवती तथा।
 वीररौद्रैश्चुते कार्यं पङ्गपरंभारायोजिता ॥९॥
 वैशिकी धैवताशा स्याद्वीभस्ते समयानके।
 एतैव पङ्गमध्या ज्ञेया सर्वरससंश्रया जातिः।
 तस्याहंशाः सर्वे स्वरः (ः) सुविज्ञेया (स्तु विहिता)
 प्रयोगविधौ ॥१०॥ (ना० शा० २६१-१०)

जाति-नाम	ग्रह-श्रंश	रस	रस-निर्धारण का आधार	विशेषोद्देश
१. पादजो	सा, म, ग, घ	वीर, अद्भुत, रींद्र	पद्म, ग्रह-श्रंश	ग्रह श्रंशों में निपाद नहीं है।
२. धार्षणी	रि, नि, घ	"	श्रपम "	
३. गान्धारी	सा, ग, म, प, नि	पद्म	गान्धार श्रंश	
४. मध्यमा	सा, रि, म, ग, घ	शृङ्गार, हास्य	मध्यम का बाहुल्य	
५. पञ्चमी	रि, प (घ)	"	पञ्चम "	
६. धैवती	रि, घ	बीभत्स, भयानक	धैवत श्रंश	
७. नैपादी	नि, रि, ग	कण्ठ	निपाद श्रंश	
८. पद्मोदीच्यवती	सा, म, नि, घ	शृङ्गार, हास्य	पद्म, मध्यम श्रयवा	
९. पद्मवैशिरी	सा, ग, प	पद्म	मध्यम, पंचम बाहुल्य	
१०. पद्ममध्यमा	सप्त स्वर	शृङ्गार, हास्य, संचरस	गान्धार-निपाद श्रंश	
११. रक्तगान्धारी	(सा, रि, ग, म (प) नि	कण्ठ	पद्म-मध्यम-बाहुल्य-सप्तस्वर-श्रंश	ग्रह श्रंशों में निपाद नहीं है।
१२. गन्धर्वी	ग, प	शृङ्गार, हास्य	गान्धार श्रंश	
१३. मध्यमोदीच्यवा	प (सा, म)	"	मध्यम-पञ्चम बाहुल्य	
१४. गान्धारोदीच्यवा	सा, म (प ?)	वीर, रींद्र अद्भुत	पद्म-श्रपम श्रंश	
१५. वामरिची	(म) प, रि, नि घ	अद्भुत	निपादास (?)	
१६. धात्री	प, रि, ग, नि	"	"	ग्रह श्रंशों में श्रपम नहीं निपाद का कारण रस के संस्थापित है, उससे अद्भुत रस कैसे ?
१७. गान्धारपञ्चमी	प	बीभत्स, भयानक	धैवताश	
१८. कैशिकी	सा, ग, म, प, घ, नि,	"	"	

भरत ने जातियाँ के रस निर्धारित करने के लिए जो आधारभूत सिद्धान्त स्वीकार किया है, वह उनके निम्नोक्त वचन में प्रतिपादित है :—

यो यदा बलवान् यस्मिन् स्वरो जातिसमाधयात् ।
तत्प्रयुक्ते रसे गानं वार्यं गेहे प्रयोज्यते ॥

(ना. शा. २६।१२)

अर्थात् जब जिस जाति में जो स्वर बलवान् हो, तब प्रयोक्तृओं को उसी स्वर के अनुष्ठान रस में गान करना चाहिए ।

भरत ने भिन्न भिन्न स्वरो के बाहुल्य को भिन्न-भिन्न रसों की अभिव्यक्ति का कारण माना है । यथा :—

मध्यमपञ्चमभूयिष्ठं हारस्यशृङ्गारयोर्भवेत् ।
पद्मवैशिरीप्रयुक्तं वीररीद्राद्भुलेषु च ॥
गान्धारमत्तमप्रार्थं कण्ठे गानमिष्यते ।
तथा धैवतभूयिष्ठं बीभत्से समयाजके ॥

(ना. शा. २६।१३-१४)

मार्थि मध्यम पञ्चम वा बाहुल्य हास्य श्रुद्धार मे, पङ्क-ऋषभ वा बाहुल्य वीर-रौद्र-अद्भुत मे, गान्धार-निपाद वा बाहुल्य बरुण में और धैवत वा बाहुल्य बीभत्स-भयानक में उपयोगी होता है।

इस प्रसंग में यह स्मरणीय है कि गायन मे रसाभिर्भाय या भावामिव्यक्ति मुख्यतः निम्नोक्त यातों पर अवलम्बित रहती है—पारस्परिक स्वरान्तर, (frequency) सवादान्तर, अनुवादान्तर, विनावान्तर, सप्तकान्तर, स्वर-संगति, वाक्पाद उच्चार-भेद, स्वरो पर अल्प-अधिक ठहराव, विलम्बित मध्य-श्रुत गति, गमकभेद इत्यादि। भरत ने बाहुल्य-व्यञ्जन शीर्षक उल्लेखों अध्याय में पाठ्यविधि के प्रवरण में इसी विषय की विशद चर्चा की है ॥ 'पाठ्य' के लिए जो भी विधान है, वे सभी 'गीत' को भी लागू होते हैं, क्योंकि पाठ्य और गीत मे कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है। यद्यपि जातियों के प्रसंग मे केवल एक या दो स्वरों के बाहुल्य के आधार पर ही रस-निर्धारण किया गया है, तथापि 'पाठ्य-विधि' के अन्तर्गत जिन सब तत्त्वों पर विचार किया गया है, उन सबकी दृष्टि से भी जातियों वा भाव-पदा अथवा उनसे होनेवाली रस-निष्पत्ति मूढ रूप से विचारणीय है। यह विषय अत्यन्त गहन तथा मार्मिक विन्तन की अपेक्षा रखता है। स्थूल दृष्टि से यह जितना सुगम जान पड़ता है, वास्तव में उससे बड़ी अधिक दुर्गम, शूद्ध, सूढम तथा समस्या संकुल है।

उदाहरणार्थ सात श्रुद्धा जातियों में से प्रथम पाङ्गी और द्वितीय के भरत-व्यक्त रसों पर विचार करें। इन दोनों जातियों मे वीर, अद्भुत, रौद्र—ये तीन रस कहे गए हैं। पङ्क और ऋषभ इन दो स्वरो को भरत ने इन तीन रसों के वाहन माना है और इन्हीं दोनों के बाहुल्य के आधार पर क्रमशः पाङ्गी और द्वितीय में इन तीनों रसों की प्रभिव्यक्ति बताई है। इन जातियों के स्वर-रूप के साथ इनके रसों का समन्वय स्थापित करने के उद्देश्य से जब विचार करते हैं, तब कुछ प्रश्न उद्भूत होते हैं जो निम्नोक्त हैं :—

(१) पाङ्गी मे पङ्क ही ग्रह, भंश और न्यास है यानी हर पहलू से पङ्क इस जाति वा बलवान् स्वर है। किन्तु क्या पाङ्गी के इस पङ्क को ग्रहत्व, भंशत्व और न्यासत्व देने मात्र से अथवा इसके अधिक बार प्रयोग मात्र से वीराद्भुतरौद्र रसों की निष्पत्ति हो सकेगी ?

(२) पाङ्गी की स्वरवली इस प्रकार है—
 सा - रि - ग - म - प - ध - नि - सा।
 ३ २ ४ ४ ३ २ ४
 अथवा और पञ्चश्रुति गान्धार, तद्वत् त्रिश्रुति धैवत और पञ्चश्रुति निपाद प्रयुक्त होते हैं। पाङ्गी के इन स्वरान्तरालों से क्या वीर, अद्भुत, रौद्र, रसों का आविर्भाव हो सकेगा ?

(३) पाङ्गी की मूर्च्छना उसके ग्रह से, अरा से अथवा न्यास से—कहाँ से भी उत्पन्न हो—इन तीनों अथवा दो में पङ्कप्रथम के पङ्क ही से आरम्भ करना होगा और वही स्वरवली निष्पन्न होगी जो ऊपर दिखाई गई है। जिस स्वरवली में ऐसे अन्तराल समाविष्ट हैं जिन्हे हम ऊपर देख चुके हैं, उससे वाञ्छित रस-सिद्धि हो सकेगी क्या ?

पाङ्गी जैसी ही स्थिति द्वितीय की भी है। द्वितीय की मूर्च्छना ग्रह, भंश और न्यास की दृष्टि से अथवा से ही उठाई जाए तो निम्नलिखित भैरवी-सदृश रूप निष्पन्न होता है :—

अथवा की मूर्च्छना—रि—ग—म—प—ध—नि—सा—रि
 सा—रि—ग—म—प—र—नि—सा
 —२—४—४—३—२—४—३—

क्या द्वितीय की इस भैरवी-सदृश स्वरवली से उपर्युक्त रस निष्पन्न हो सकेगे ? यहाँ स्वानुभव का उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा। इलैण्ड से लेकर रशिया तक जहाँ-जहाँ भैरवी को प्रस्तुत करने का अवसर आया, वहाँ-वहाँ गीत

की भाषा में ध्वनिमा, उसके शब्दार्थ व भावना जाना केवल उम विशिष्ट स्वर-संयोग के श्रवण द्वारा बरगुप्त व अनुभूति पानी की धीरे तशुमार पातसूद्री धीरे समानाता (Critico) पूछने से—“क्या यह स्वरानुभूति बिल्कुल ठीक या बरुणा की छाया है ?”

आरंभ की इस गैरवी-सदृश स्वरानुभूति में पातसूद्री और गमवादि भेद प्रयुक्त करने पर भी बोलचाल-रस की निष्पत्ति संभव है क्या ? जैसी ध्वनियों में आरंभ तथा पातसूद्री के स्वर के साथ उठने रसा का संबंध है स्थापित किया जाए ? कि वा स्वर का बाहुल्य बनाया गया है, वा स्वर की गम के मूल स्वर गममें प्रयत्न मूल में प्राप्त स्वर समझें दाता प्रसार से उद्युक्त गमना वनी हो रही है। पातसूद्री का पत्न वा पदजग्राय वा मूल है ही। आरंभ में श्रवण का यदि पदजग्राय मूल स्वरानुभूति मग ग्रहण किया जाए तो यही श्रवण यही पदजग्राय स्थापित जा जाएगा। यदि पदजग्राय मूल श्रवण की मूलग्रहण म प्राप्त श्रवण का ग्रहण करें तो वह भा विद्युत्-ध्वनितानुभूति का मग श्रवण होने म वाञ्छित रस निर्गत में सहायक पैदा होगा ?

जो प्रश्न पातसूद्री और आरंभ की सम्बन्ध म ऊपर उल्लिखित हैं, वेने हा प्रश्न प्राय सभी शुद्धा जातियों के साथ जुड़े हुए हैं। उदाहरणार्थ गांधारी के ग्रह, अश, यास स्वर गांधार व उचिच स्वरानुभूति बरवाना सहज है। लो वरुण रस का उत्पत्ति कैसे होगी ?

उद्युक्त प्रश्नों के अनिश्चित एवं अर्थ सम या भी इस प्रसंग में उल्लेखनीय है। शुद्धा जातियों के ल उनके नामस्वरों पर से निष्पत्ति लिए गए हैं। यह सत्य है कि नामस्वर ही शुद्धा जातियों में ग्रह अश यास हाता है। किन्तु प्रत्येक शुद्धा जाति में जो एकाधिक ग्रह अश स्वर कहें उनके विनियोग से जय शुद्धाभा के विह्वल भेद उत्पन्न जाएंगे तब रस की स्थिति किस प्रकार समझी जाएगी ? तब क्या नाम-स्वर के स्थान पर जिस जिस स्वर का बर-अश मह अश के रूप म ग्रहण हो, उस उम स्वर के अनुसार रस निर्धारण करना होगा ? जहाँ विम जाति म जो ग्रह-अश ही क्या केवल उनके बाहुल्य मात्र से रस निष्पत्ति हो सकेगी ?

शुद्धा जातियों के रसा के सम्बन्ध म जो उल्लेखने होने ऊपर वही, उन व वहाँ अर्थिक उल्लेखने सगर्भ विह्वलता जातिया म हैं। ऊपर पृ० ६० पर दी गई सारिणी से यह स्पष्ट हुआ होगा कि कुछ सगर्भता जातियों के ग्रह अश स्वरो में भिन्न स्वरा का बाहुल्य बताकर उनका रस निर्धारण किया गया है। यथा— गांधारीदीचवा के अश-अश को ‘सा म’ हैं, किन्तु उसका रस बताते समय ‘सा रि’ का अश-अश कह कर धीरे रीद अशुक्त रसों के लिए उसे उद्योगी ठहराया गया है। साथ ही सगर्भता विह्वलता जातियों के एकाधिक ग्रह अशों का उनकी रस निर्गत में कैसा और किन्तु योगदान समझा जाए ? यह प्रश्न भी विचारणाय है।

उदाहरण के लिए वैशिकी जाति में सा, ग, म प, ध, नि’—ये छ स्वर अश कह गए हैं, किन्तु उनके रस निर्धारण के प्रसंग म केवल ‘धैवताश यह वर वासता भयानक रस कह दिए गए ह। ऐसी ध्वनियों में साथ साथ अश स्वरो का उच्च जाति की रस निष्पत्ति म क्या स्थान होगा ?

इन सब प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए हमने जो प्रामाणिक यत्न किए उनके उदाहरण-स्वरूप पदजग्रायों की गांधारीदीचवा—इन दो जातियों का रस टिप्पणी में विरहृत विवेचन नीचे प्रस्तुत है।

१ पदजग्राय—पदजग्राय में पदजग्राय की पातसूद्री और मध्यमगम की गांधारी—इन दो जातियों का सगर्भता कहा गया है और उसका व्यास स्वर गांधार स्थिर किया गया है। यह सगर्भता जाति पदजग्राय की है। अतः पदजग्राय के ही गांधार की ध्वनि यास स्वर माना होगा।

पदजग्राय की बरगुप्तभाषा कहा है और समस्त इमीति बरगुप्तभाषा गांधार की यासय दिया गया है। इसके ग्रह अश के रूप म सा, ग, प बताए गए हैं। इस सगर्भता जाति में पातसूद्री और गांधारी इन दो जातियों

का संसर्ग किए जाने पर भी ग्रह-शंशो के रूप में तीन स्वरों (सा, ग, प) को स्थान दिया गया है। प्रनीत होता है कि इसके पीछे ग्रन्थकारों का विरोध हेतु सन्निहित है। पङ्जग्राम वा 'पधन्' और मध्यमग्राम का 'सारिग्' एव ही है। 'सारिग्' और 'पधन्' ये दोनों ग्रामों के पारस्परिक प्रतिघोष हैं और इस प्रकार दोनों के मिलने से रसाविविधि का एक पूर्ण रूप खड़ा होता है। हम यह भी जानते हैं कि पङ्जग्राम का निपाद ही मध्यमग्राम वा गान्धार है। पङ्जग्राम के निपाद के और मध्यमग्राम के गान्धार को जोड़ने के लिए ही, रसभाव की दृष्टि से इन्हे आवद्ध करने के लिए ही पंचम को विरोध रूप से ग्रह-शंशो में स्थान दिया गया है ऐसा निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है। बुधजन से यह अज्ञात नहीं है कि पङ्जग्राम वा पंचम ही मध्यमग्राम वा पङ्ज है। और इस प्रकार पङ्जग्राम के पंचम को ग्रह अशा बनाने से जो स्वरावली उद्भूत होगी उसमें मध्यमग्राम की दृष्टि से पङ्जग्रामिक 'पधन्' ही 'सारिग्' हो जाये। पङ्जकैशिकी जाति के बन्धारस को देखते हुए यह कहने में कोई व्यवाय नहीं है कि उभयग्राम के गान्धार को न्यस बनाने के हेतु से ही भरत ने पंचम को ग्रह-शंशो में 'सा, ग' के ब्रलावा स्थान दिया है। पूर्वोक्त में पंचश्रुति गान्धार और उत्तरांग में पंचश्रुति निपाद वर्ण रस के बाहक माने गए हैं। पङ्जग्राम का पंचश्रुति निपाद ही मध्यमग्राम वा पंचश्रुति गान्धार बनता है। इन उभय गान्धारों का प्रयोग तभी समभव हो सकता है जब पंचम को ग्रह अशा में स्थान दिया जाए जिसमें 'सारिग्' के प्रतिघोष के रूप में 'पधन्' (मध्यमग्रामिक 'सारिग्') का प्रयोग हो सके। इन प्रकार उभयग्रामिक पंचश्रुति गान्धार जो कि बन्धारसबाहक हैं, प्रयुक्त हो सकते हैं और पङ्जकैशिकी की कण्ठरसप्रधानता की सिद्धि हो सकती है। संभवत इसी अभिप्राय से भरत ने पंचम को ग्रह-शंशो में स्थान दिया है।

इस जाति के कर्ण रस की ओर ध्यान रख कर, जब भी हम स्वर-सन्निवेश बनाएं यथवा कुनपयोजना करें तब मध्य या द्रुत गति से सदैव दूर रहे। साथ ही काकु-प्रयोग सहित स्वरो में मन्द बन्ध भी प्रयुक्त करें।

प्रथम पङ्ज को ग्रह अशा मान कर इसकी स्वरावली को देखें।

सारिग्-सारिज्ञा, सारिमग-सारिज्ञा, सारिमगृग्-सारिज्ञा, सापमपमगृग्-गृगृसारिज्ञा, सागमघपग्-मग्-रि स सा। सागमप स गमपघ स मपधन् स पधपग् स मगृग्-सारिज्ञा। सारिमपधग्-सारिमनिधग्-गृगृसारिमपधन्-सन्-घपधग्-मग्-सारि स सा।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, पङ्जकैशिकी के ग्रह अशा में पंचम को उभयग्रामिक स्वरावलीया के सन्निधत्स्यल के रूप में स्थान दिया गया है, नतीक पङ्जग्राम वा 'पधन्' ही मध्यमग्राम का 'सारिग्' होता है। तदनुसार पंचम को ग्रह अशात्व देने से पङ्जग्राम की स्वरावली में निम्नलिखित रूप से मध्यमग्राम की स्वरावली का दर्शन होगा। यहाँ यह स्मरणार्थ है कि पङ्जग्राम में अन्तर गान्धार का ग्रहण करते-करते ही मध्यमग्राम, न्यस, पंचश्रुति धैवत प्राप्त होता है। किन्तु यह पङ्जकैशिकी जाति पङ्जग्राम की हानि में और इसमें कर्ण रस का विधान हानि में इसमें पङ्जग्रामिक मूल गान्धार को ध्याय करके अन्तर गान्धार को स्थान नष्ट द सकते, क्योंकि (१) मूल पङ्जग्रामिक गान्धार वा त्याग पङ्जग्राम की जाति में वादनीय नहीं और (२) मूल पङ्जग्रामिक गान्धार ही पङ्जग्राम के पञ्चम को ग्रह अशात्व देने से कोमल धैवत का स्थान पाएगा जो रसदृष्टि से आवरणक है। अतः हम यहाँ पङ्जग्राम के मूल गान्धार को बनाए रखते हुए बीच-बीच में अन्तर गान्धार का प्रयोग करके तानि मध्यमग्रामिक स्वरावली का भी साथ-साथ दर्शन हो सके। यथा --

पंचम को ग्रह अशात्व देने से प्राप्त स्वरावली—१—ग स प मगृग्, ग म ग प स ग्, रिग्, पधधन्,

पंचम को पङ्ज वा स्थान देने से प्राप्त स्वरावली—२—सा स सान्, र पुत्, निष्, त्रि सा स घ्, पुत्र, सारि

म रि गं म प
१—प प ग्, सागऽमवपग्, साग, ग म, म प, पप, घनि,

नि प पु नि सा
२—रिसाप, मपऽनिरिवाप, मप, घनि, निसा, सारि, रिग्,

१—प प ग्, ग् रिग्ऽप,

२—रिसाप, पपऽप,

यदि मध्यमप्राग वा दर्शन इय स्वरावली में अभिप्रेत न समझा जाए तो केवल पञ्चमप्राग की दृष्टि में निम्नलिखित रीति से स्वर विस्तार किया जा सकता है—

पञ्चमप्राग के पंचम वा प्रह-भ्रंशत्व—१—गऽ म प ग्, प म प घ म प ग्, रिमपघ मघपग्, सारि,
पंचम को पञ्च मानने से प्राप्त

स्वरावली—२—साऽभिऽसाप, सानिऽसारिनिऽसाप, पुनिऽसारिनिऽसाप, मपऽ

१—रिमपऽ म प घऽ म घ प ग्, सारि, सारिमपघनि, घसांनि,

२—पुनिऽसाऽ निसाऽ निरिवा, मप, मपऽ सारि, रिमग्,

१—प प घऽग्, रिमग्, रिपऽरिऽ

२—रिसाऽग्, पनिऽग्, पऽपुऽ

पञ्च-पञ्चम का प्रह भ्रंशत्व तो हम देख चुके। अब गान्धार का प्रह-भ्रंशत्व इस जाति में विशेष विचारणीय है। यदि गान्धार को पञ्च वा स्थान देते हैं तो कल्याण सदृश स्वरावली प्राप्त होती है, जो पञ्चकैशिकी के रूप में अनुकूल नहीं हो सकती। अतः यहाँ हम गान्धार को गान्धार ही मान कर उसे आरभ-स्थान (प्रह) और कैशिकी (भ्रंश) तथा ठहुराव (न्यास) वा स्थान बना रहे हैं, उसे पञ्च वा स्थान देकर कल्याण-सदृश स्वरावली बनाना नहीं रस दृष्टि से अभिप्रेत नहीं प्रतीत होता।

गान्धार का प्रह-भ्रंशत्व

गुसारिग्, ग्मग्, ग् रिग्मग्, ग्मघपग्, ग् रिग्मपऽ, ग् रिग्सारिमग्, ग् रिग्सारिग्मग्,
ग् रिगानिऽसारिग्, ग् रिगानिऽघनिग्, ग् रिगानिऽसारिग्मग्, ग् रिगानिऽसां निऽपुऽपुऽपुऽसा सारि रिग्, इत्यादि।

यह पुनः उल्लेखनीय है कि गान्धारी जाति के न्यास स्वर गान्धार से उल्लिखित स्वरावली यी तो कल्याण-सदृश है, किन्तु मह होते हुए भी उस गान्धारी को पञ्च वा स्थान न देकर गान्धार ही मानकर उसका प्रह-भ्रंशत्व दिखाने से प्राप्त स्वरावली कल्याण की छाया को निवृत्त में फटने तक नहीं देगी। साथ ही यह भी स्मरणीय है कि पञ्च-पंचम को प्रह भ्रंशत्व देने से प्राप्त जो स्वरावली कोमल वारुण्य की अभिव्यक्ति कर चुकी है, उनकी छाया में, गान्धार के प्रह भ्रंश-न्यास से उपजाया हुआ स्वर-विस्तार कोमल-रुण्य ही बना रहेगा।

२. गान्धारोदीच्यया—गान्धारोदीच्यया जाति में निम्नोक्त चार जानियो वा संयोग कहा गया है—

गान्धारी, पादजी, धैवती, मध्यमा। चार जातियो वा समवाय होने पर भी इनके प्रह भ्रंश के रूप में केवल दो ही स्वर बने हैं—'सा' तथा 'म'। (गान्धारोदीच्ययांशौ विज्ञेयी पञ्चममध्ययो) इस प्रकार गान्धारी और धैवती के न्यास स्वर गान्धार धैवत को प्रह भ्रंश में स्थान नहीं प्राप्त है। इसका न्यास स्वर मध्यम है, जिसे मध्यमप्राग का समझना चाहिए, क्योंकि यह जाति मध्यमप्राग की है।

दूसरी ओर जातियों के रसप्रकरण में इस जाति के रस के सम्बन्ध में भरत का निम्नोक्त वचन विचारणीय है —

मध्यमोदीच्यवा चैव गान्धारीदीच्यवा तथा ।

पङ्कजर्भाशानिवास्या कर्तव्या वीररोद्रयौ ॥ (ना. शा. वारी संस्करण २६।५)

वामारिवी तथा चान्ध्रो गान्धारीदीच्यवा तथा ।

वीररोद्रेऽद्भुते वार्या पङ्कजर्भाशयोजिता ॥ (ना.शा. निर्णयसागर संस्करण २१।२)

स्पष्ट है कि एक ओर गान्धारीदीच्यवा जाति के प्रह भ्रशा में 'सा' 'म' रखे गए हैं और दूसरी ओर उसी जाति का रस बताते हुए 'सा रि' स्वरों का प्रह भ्रश र कहा है। इन दोनों उल्लेखों में सम्पूर्ण विराधामास है जिसका सामन्यस्व बिंशाना कठिन है। वीर, रोद्र ओर अद्भुत रसों के लिए "सरो वीरेऽद्भुते रौद्रै" यह कह कर इन दो स्वरों के साथ उन तीन रसों का सम्बन्ध भरत ने जोड़ा है। इस अर्थका मैं रण प्रकरण में बनाए हुए 'सा रि' स्वरों का प्रह-भ्रश र माना जाए अथवा जाति के लक्षणों में कहे गए 'सा-म' को ही प्रह भ्रश र दिया जाए? इस प्रसंग में तीन प्रश्न उद्भूत होते हैं—(१) भरत का स्वरों के रसों के सम्बन्ध में जो विधान है वह पङ्कजर्भासक सप्त स्वरों की दृष्टि से समझा जाए या मध्यमप्रामिक सप्त स्वरों की दृष्टि से समझें? (२) या ऐसा समझें कि पङ्कजर्भासक जातियाँ में पङ्कजर्भास के स्वर और मध्यमप्रामिक जातियाँ में मध्यमप्रामिक के स्वरों से तात्पर्य है? (३) या जिन जिन न्यास स्वरों से जाति की मूर्च्छना बनती है, उन उन स्वरों को पङ्कजर्भास मान कर उहाँ के अनुमान से बनने वाले स्वरों से रस का सम्बन्ध है? इन प्रश्नों की स्पष्टता प्रश्नों में कहीं उल्लेख नहीं होता। इसलिए हमने इन सप्तगंगा जातियों के स्वरों का, उनके सप्तगंगों का, उनके रसों का, उनके प्रह भ्रश-प्रासादिक नियमन का विवेचन करते समय भिन्न भिन्न विकल्पों के रूप में सारे सप्त गंगों का विवेचन प्रस्तुत कर देना उचित समझा है। इन सप्तगंगा जातियों के कौसे, किस प्रकार से, कौसे रस से सम्बन्ध किये जा सकते हैं उसके लिए हम जो विचार उद्भूत हुए, जो सभावनार्थ ध्यान में आईं उन्हें कितने ही रूप में कह आए हैं।

गान्धारीदीच्यवा जाति मध्यमप्राम की वही है, किन्तु उसमें दो पङ्कजर्भास की (पाङ्गी, चैवती) और दो मध्यमप्राम की (गान्धारी, मन्वना) जातियों का समावेश है। दोनों प्रामों की जातियों का तुल्य प्रमाण देखते हुए इन्हीं प्रश्न उठ सकता है कि गान्धारीदीच्यवा का न्यास स्वर मध्यम, पङ्कजर्भास वा समझा जाए या मध्यमप्राम का? इस प्रश्न का विवेचन इस प्रकार है।

गान्धारीदीच्यवा इस नाम से गान्धारी का प्राधाय सूचित होता है। साथ ही इसके वीर-रौद्र-अद्भुत रसों को देखते हुए गान्धारी की मूर्च्छना में उदार वल्ल्याण-गदश स्वरभ्रशों से इस सप्तगंगा जाति का सम्बन्ध जुड़ता-सा दिखाई देता है। किन्तु, गान्धारी तो हममें न प्रह भ्रश है और न न्यास ही है। हम जानते हैं कि गान्धारी को स्थूल मान से रूप रस का बाह्य मान लिया गया है, वहाँ इसलिए तो उसका इस जाति के प्रह भ्रशा में से बहिष्कार नहीं किया गया होगा? साथ ही वीर अद्भुतादिक रसों का आविर्भाव भरत ने जिस प्रकार 'सा' और 'रि' से माना है उसे देखते हुए हम ऐसा अनुभव कर रहे हैं कि यहाँ पर गान्धारी के गान्धारी को ही पङ्कजर्भास स्थापन दिया जाए और उसका रूपम जो चतुर्भुत है, और जो मध्यमप्राम का 'म' है उसे प्राधाय दिया जाए। उन 'सा रि' के प्राधाय में वादित रस सिद्धि प्राप्त हो गयेगी। (मध्यमप्राम का 'म' इस जाति का न्यास स्वर है और वही मध्यम उर्ध्वक गान्धारी की मूर्च्छना में स्थापन का स्थान पाता है)। भरत ने जातियों के रस प्रकरण में गान्धारीदीच्यवा में 'सा रि' का बाह्यत्व कहा ही है। गान्धारी जाति की मूर्च्छना में रूपम का स्थान आता है, उसे प्राधाय देने से मध्यमप्राम का मध्यम भी रूपम के रूप में न्यास का स्थान पा जाता है और साथ ही रस दृष्टि में रूपम का भी बाह्यत्व बन जाता है। इसलिए मध्यमप्रामिक गान्धारी में उचित वल्ल्याण गदश स्वरभ्रशों से इस जाति की मूल स्वरभ्रशों या स्वामिगंगा का प्रतिनिधि

मान कर उसी के संचारिभावों में ग्रन्थ संश्लेषण प्राप्त जात्रिया का समवाय किया जाए तो संभवतः भरत-व्यक्ति स्वतंत्र सिद्ध हो सकेगा। यथा :-

मध्यमप्राप्त मूल स्वरावली १—गूमपपनि सारिगं, गूरिसानि पपमगं,

ग प्राग के गान्धार की पङ्क्ति २—सारिगमप धनिघां, सानिनय म्गरिगा, गानने से प्राप्त स्वरावली

- १—रि म ऽ ग, ग रि म ऽ ग, रि सा रि म ऽ ग रि म प म ऽ, रि म प ध नि घ प म,
 २—नि रि ऽ सा, सा नि रि ऽ सा, नि ध नि रि ऽ सा नि रि ग रि ऽ, नि रि ग म प म ग रि,
 १—रि म रि प म ध प नि नि घ प म, प प सां ऽ नि घ प म रि म ऽ ग
 २—नि रि नि ग रि म ग प प म ग रि, ग म प ऽ प म ग रि नि रि ऽ सा
 १—रि म प ध सां रिं ऽ, ध सां गं ऽ गूं रिं सां निं ऽ ध प म गूं, रि म प म रि म ऽ ग—
 २—नि रि ग म ध नि ऽ, म ध सां ऽ सां नि घ प ऽ म ग रि सा, नि रि ग रि नि रि ध्या—

गान्धारोदीच्यया मे ऋषभ-रहित षड्ज भेद ब्रह्म गया है। एक श्रौर 'सा-रि' का अष्ट-व बजा कर रस-रत्न का रस निर्धारण और दूसरी श्रौर रस प्रकरणोक्त अष्ट स्वर ऋषभ का षड्ज-भेद निर्माण-विधि में लोप-विधान—इस भेद परस्पर विरोधी बातों की संगति कैसे बँटाई जाए ?

इसके श्रौडव भेद का ग्रन्थस्य विधान नहीं है। विन्तु इगकी रस सिद्धि के लिए समभवत श्रौडव रूप कल्पित उपादेय होंगे, क्योंकि खडे खडे स्वरो का आधातसहित उच्चार श्रौर श्रौडव स्वरावली के दूरस्थ अन्तराल—ये दोनों बँधे धोर-रौद्र रसों की अभिव्यक्ति के लिए उपयोगी हँ। इसी रस दृष्टि के अनुसार, षड्जकारी ऋषभ के सवादी पवम की लोप्य बना कर 'रि प' रहित कुछेक श्रौडव रूपों का निर्माण कर के यहाँ दिखाया जा रहा है।

ऊपर दी गई स्वरावली में से यदि मध्यमप्राप्तिक मूल 'रि-प' वर्ज्य करें तो 'सा- रि-म-प-ध-सां'—ऐसा श्रौडव रूप बनेगा। श्रौर यदि गान्धार को षड्ज मानने से प्राप्त स्वरावली के ऋषभ-पवम का लोप करने को 'सा ग-म-प-नि सां' यह हिएडोल की स्वरावली प्राप्त होगी, जो, निश्चित रूप से धोर रम की बाहक है।

षाड्जी का संसर्ग —षाड्जी में भी मध्यम को न्यासत्व देना होगा। प्रश्न ही सतता है कि यह मध्यम क्या षड्जप्राप्त का होगा या मध्यमप्राप्त का ? मध्यमप्राप्त का मध्यम ही षड्जप्राप्त का षड्ज है। इसलिए षड्जी के संसर्ग के समय षड्जप्राप्त के षड्ज को न्यास या ठहराव का स्थान बना सकते हँ। षाड्जी में नियमानुसार षड्ज को ही प्रह, अश, न्यास बनाने हुए षड्जप्राप्तिक मूल स्वरावली का उपयोग करना होगा। यह स्वरावली क्षम प्रकार है—

सा—रि—गू —म— प—ध—नि—सां
 —३ —२— ४—४—३—२—४—

इससे धोर-रौद्र रसों की निष्पत्ति किसी प्रकार समझ नहीं जान पड़ती, क्योंकि इसने स्वरावली का बरत फोमल भावों के लिए अधिक उपयुक्त हँ, बढोर या पश्य भावों के लिए नहीं। ऐसी अवस्था में यह प्रश्न होता स्वभाविक है कि धोर-रौद्ररस रसों की निष्पत्ति के लिए निम्नल गाधारोदीच्यया में षाड्जी के संसर्ग का विधान देने के पीछे भरत की क्या रस दृष्टि रही होगी ? सूक्ष्म श्रौर गहन विचार करने पर भरत के उस विधान की श्रौर ध्यान जाता है जिसमें उहाने आठ रसोंको चार युग्म (जोडों) में संश्लेषित किया है। यथा .--

शृङ्गारादि भवेदास्यो रौद्रात्तु करणो रसः ।
 वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्तिर्वीभत्साद्य भयानकः ॥
 शृङ्गारानुकृतिर्या तु स हास्य इति सजितः ।
 रौद्रस्यापि च यत्कर्म स ज्ञेयः करणो रसः ॥
 वीरस्यापि च यत्कर्म सोऽद्भुत परिबीजितः ।
 वीभत्सदर्शनं यच्च भवेत् सा तु भयानकः ॥

(ना. शा. ६।३६-४१)

अर्थात् शृङ्गार से हास्य, रोद्र से करुण, वीर से अद्भुत तथा वीभत्स से भयानक रस को 'उत्पत्ति' होती है। यथा--शृङ्गार का अनुकरण हास्य वा कारण होता है, रोद्र वा कर्म (प्रभाव) कारण होता है, वीर वा कर्म (प्रभाव) अद्भुत होता है और जो 'वीभत्स—दर्शन' (दैतने में जुगुप्साजनक) हो वह भयानक होता है।

इस भरत-प्रतिपादित सिद्धान्त के अनुसार रौद्र और करुण वा सहभाव समझना चाहिए अर्थात् 'रौद्र' का प्रभाव करुण के रूप में अभिव्यक्त होता है। नाट्य में जहाँ एक और एक या अधिक पात्रों द्वारा रौद्र रस का अभिनय होता है, वहाँ दूसरी और उस रोद्र का प्रभाव अभिव्यक्त करने के लिए एक या अधिक पात्रों द्वारा करुण रस का अभिनय भी रस-गरिषोप के लिए आवश्यक होता है। समवन. इसी दृष्टि से गान्धारोदीच्यवा में वीर-रौद्र अद्भुत रसों की अभिव्यक्त स्वरानुबन्धियों के साथ साथ करुण रस की अभिव्यक्ति के लिए पाङ्गों की स्वरानुबन्धियों का भी संसर्ग कहा गया हो। पाङ्गों वा स्वर विस्तार कुछ निम्न प्रकार से समझा जा सकता है:—

सा, सारिसा, सारिग्-सारिसा, सारिमग्-सारिसा सारिग्-सारिमग्-सारिसा, सारिमग्-सारिग्-सारिसा, सारिग्-सारिमग्-सारिसा, सारिमग्-सारिग्-सारिसा, सारिग्-सारिमग्-सारिसा, सारिमग्-सारिग्-सारिसा, निघन्ति-सारिग्-सारिसा।

मध्यमा वा संसर्ग—हम जानते हैं कि पङ्कजग्राम वा पङ्कज ही मध्यमग्राम का मध्यम बन जाता है। उस मध्यमग्राम के मध्यम को पङ्कज मान कर चलेंगे तो वही 'म-ध' ही 'सा-न' हो जाएगा। और अगर भरत के कथना-नुसार मध्यमा में स्वर साधारण (अन्तर-काकली) का प्रयोग किया जाए तो उसका स्वर-रूप इस प्रकार बनेगा:— 'सारिमग्-धनि-सं'। इसलिए वहाँ 'सागमध, निसंनिधमगसा' वहाँ 'सागमध, निसंनिधम ग'सा, अथवा—सागमधनिसंनिध धनिधमग, निसानि धनिधमगसा—ये प्रयोग किये जा सकते हैं।

यह मध्यमा वा 'रि-य' रहित औडव रूप हुआ। केवल ऋषभ वा रथाग करने से इसका पाङ्क रूप यो बन जाएगा. —

सागमधम, सागमधम धनिधम, गमगसा, सागमधम गमधम, मधनिसंनिध धनिधम, गमगसा।

ऊपर जो औडव पाङ्क रूप बनाए गए हैं, उनमें मध्यमा की स्वरानुबन्धियों के 'रि-य' तथा 'रि' वा क्रमशः सौग किया गया है। यदि वैयास न वरके मध्यममामिन मूल 'रि-य' अथवा 'रि' को वर्ज्य किया जाए तो निम्नलिखित औडव-पाङ्क रूप बनें—

मूल मध्यममामिक 'रि-य' वर्ज्य करने से प्राप्त औडव रूप—यथा सागमधम, सागमधमगसा, सानिसागमधम, सांनिधम, पनिसंनिधमगसा। इस प्रकार औडव मालथी वा रूप दिखाई देगा।

मूल मध्यममामिक 'रि' वर्ज्य करने से प्राप्त पाङ्क रूप—सामधमरिसा, सामधम, मधनिसंनिधमगमधम, मरि ५ सा।

यह पढ़ो भी आवश्यकता नहीं कि वे शीघ्र-माद्यन रूप नियम ही हम जानि के बीर, रीद्र, अद्भुत स्वरों सवारिमाना में प्रविष्ट हो जायेंगे। इस प्रकार विभिन्न योजनाया द्वारा हम भावानुबुद्ध स्वर नियमों का वर सवर्णित वा संचरण आनिर्गुन किया जा सकता है।

धैर्यता का ससर्ग—गान्धारीदीर्घ्यमा में गान्धारी श्रीर मध्यमा के अत्रिस्वर धैर्यता का भी ससर्ग रूप है। धैर्यता के स्वरगमूह में भैरवी श्रीर तोड़ी का मिला-जुला रूप आता है यह हम जानते हैं। विशेष रूप से स्थायि, प्रत्येक स्वर का आघात के साथ उच्चार, इत्यादि बाधनादि भेद प्रयुक्त न किये जाईं तो सामान्यतः उसी ससर्ग वस्त्रोपादान ही माननी पड़ेगी। हम दृष्टि से धैर्यता का ससर्ग बीर, अद्भुत श्रीर रीद्र-रस-वाहिनी गान्धारीदीर्घ्यमा में के बहा गया है, उक्त Contrast (असमानता, विरोध) के रूप में उच्चारण समझा जा सकता है। गन्धारी में भी भावा श्रीर रगा की मंत्री या साम्य सम्बन्ध के साथ-साथ उनके Contrast (असमानता, विरोध) का भी विशेष रूप है। रस निष्ठात में अनेक स्थायिभाव उपयोगी रहा होगा, उक्त परिणाम के लिए अत्रि प्रकार सवारि मंत्री के आवश्यकता होती है, उसी प्रकार अथ स्थायिभाव भी संगीत वन वर अत्यन्त के लिए उक्त परिणाम पर साते हैं। तदनुसार रीद्र के परिणाम के लिए मध्यमा का उपयोग उचित ही है। संभवत इतनी ही अत्रि गान्धारीदीर्घ्यमा में धैर्यता को स्थान दिया होगा। धैर्यता का स्वर विस्तार हम शुद्ध जातिया के प्रकरण में दिखा ही चुके हैं।

जाति साधारण

भरत के जाति निरूपण के विस्तृत विवरण के पश्चात् उनके परवर्ती मन्त्र का मन प्रस्तुत करने के पूर्व एतदु विषय का उचित प्रामाण्य है और वह है जाति साधारण। भरत ने कहा है—

द्वे साधारणे—स्वरसाधारण जातिसाधारणश्चेति। जातिसाधारणमेकप्रामासाना जातीनां जायोर्वा अर्थात् गाम प्रत्यङ्गदर्शन स्वरानुक्रमवगमात्। (ना० शा० २८)

अर्थात् 'साधारण' दो प्रकार का होता है—एक स्वरसाधारण, दूसरा जाति-साधारण। एक ग्राम (पञ्चम अथवा मध्यमग्राम) के अथवा दो अथवा अधिक जानियों का दूसरे ग्राम (मन्धमग्राम अथवा पङ्कग्राम) में स्वर के अन्वय में जो प्रत्यङ्गदर्शन होता है, वह 'जातिसाधारण' है।

भरत की जातिसाधारण उभयग्राम के परस्पर सम्बन्ध पर आदृत है। एक ग्राम की जाति या जानियों का अथवा दो जाति या जानिया में प्रत्यङ्गदर्शन ही जातिसाधारण है। अतः इसे स्पष्टतया समझने के लिए भरत उभयग्राम का परस्पर सम्बन्ध पुनः समझ लेना यहाँ आवश्यक है।

पङ्कग्राम और मध्यमग्राम के स्वरों में अत्यन्त तादात्म्य-सम्बन्ध है, जो कुछ व्यवहारगत अन्तर है वह केवल सनाभेद में निहित है। हम सिद्धान्त को हम 'समीतामलि' पञ्चम भाग में पृ० ५६-५८ पर भरत के शब्दों द्वारा स्पष्ट कर चुके हैं। यहाँ भरत के तत्सम्बन्धी वचन को उद्धृत करना माय प्रयोजन होगा। यथा—

द्वित्रिषैकपूञ्जनामिदं, द्विश्रुत्युक्तपद्विद्वेदोक्तं गावारे मूञ्जनाग्रामयोः स्वरत्वं पङ्कग्रामे। तद्वशात् मध्यमग्रामो निपादादिमत्त्वं (निपादादित्वं) प्रतिरच्यते। मध्यमग्रामोऽपि धैर्यतामार्धत्वात् (धैर्यतामार्धत्वात्) निपादोक्तत्वात् (अ) द्वैत्रिष्य भवति। तुल्यश्रुत्युक्तत्वात् संगम्यत्वं। अतः अत्रिप्रकारेण पञ्चमधैर्यता। तद्वशात् पारोक्तपद्विद्वेदोक्तं अत्रिप्रकारेण भवति। शेषाचारि मध्यम पञ्चम-धैर्यता निपादपङ्कग्रामा मध्यमादिन अ (पङ्कजादित्वं) प्राप्नुवन्ति। (ना० शा० २८)

• इस उद्धरण का पाठ तादात्म्य-सम्बन्ध के कारण और अत्रि स प्रकाशित सस्वरणा को मिला कर बनाया गया है तथा विषय के यथावत् प्रतिपादन की दृष्टि से इसमें हमने कोष्ठक में अत्रि और से संशोधन प्रस्तुत किये हैं।

भरत का यह वचन उस प्रकरण में है जहाँ कि मूर्च्छनामो के पूर्णा, पाड्या, भ्रोडवा श्रीर साधारणीकृता —ये चार भेद कहे गए हैं। इन चार भेदों के उल्लेख के ठीक बाद ही ऊपर उद्धृत वचन मिलता है। इन वचन में उभयग्राम का परस्पर तादात्म्य-भाव निहित किया गया है। एक ग्राम को मूर्च्छना-विशेष में ही दूसरे ग्राम की उक्ति हो जाती है, यह इसका तात्पर्य है। पञ्चग्राम के गान्धार का श्रुति उत्कर्ष करते उसी गान्धार को धैवत बना देने में मध्यग्राम की निश्चिन्ता ही जाती है और मध्यग्राम में धैवत का दो श्रुति अर्कण करके उसी को गान्धार बना देने से पुनः पञ्चग्राम की उपलब्धि हो जाएगी। यथा :—

पञ्चग्रामिक स्वरावली

—सा—रि—ग्—भं० गा०—म—प—ध—नि—सां

संज्ञाभेद से मध्यग्रामिक स्वरावली—म—प—म० भं०—ध—नि—सा—रि—ग्—म
—३—२— २—२—४—३—२—४—

भरत के इस उद्धरण का पाठ शुद्ध करके हम जिस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं उसी की पुष्टि दत्तिल और बुम्भा राणा के निम्नोद्धृत वचनो से भी होती है :—

गान्धारं धैवतीकृषीद् (द्वि) श्रुत्कर्षणाद् यदि ।
तद्वशान्मध्यमादीथ निपादादीन् यथास्थितान् ॥
ततोऽभूद् यावतिथ्येषा पञ्चग्रामस्य मूर्च्छना ।
श्रुतिद्वयापकर्षेण गान्धारीकृत्य धैवतम् ।
पूर्ववन्मध्यमाद्याथ भावयेत् पञ्चमूर्च्छनाः ॥

(दत्तिलम् २६-२८)

पञ्चग्रामभवा एव मूर्च्छना मध्यमात्रिता ।
चित्रं मध्यमगा एव साः स्युः पञ्चजगता यथा ॥
पञ्चे श्रुतिद्वयोत्कर्षाद् गान्धारी धैवतीभवेत् ।
द्विश्रुत्यपचयाद्ग्रामे मध्यमे धो गतां व्रजेत् ॥
तद्वशान्मादिका पञ्चे भजन्ते व्यादिता स्वराः ।
म्याद्याः स्युर्मादिका मध्ये ध्रुनिसाम्यात्स्वतः स्वराः ॥
एवं यावतिथा पञ्चग्रामे या मूर्च्छना भवेत् ।
तावतिथ्येव सा मध्ये चित्रमत्राभवत्स्वयम् ॥
वैजिकानाममयं पन्थाः सुगमः श्रुतिशालिनाम् ।

(संगीतराज, गीतरत्नकोश, स्वरोल्लास, स्वानादि-परीक्षण ३७०-७१)

ऊपर के उद्धरणों में प्रतिपादित सिद्धान्त के अनुसार उभयग्राम की मौलिक स्वरावलियों में तात्त्विक ऐक्य है, किन्तु संज्ञाभेद से दोनों का व्यवहारगत पार्यस्य है। अतः उभयग्राम की मौलिक स्वरावलियों में एक दूसरे का प्रत्यङ्गदर्शन निहित है। उभयग्राम के तात्त्विक ऐक्य पर आधुन इस 'प्रत्यङ्गदर्शन' के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार से भी उभयग्राम का प्रत्यङ्गदर्शन निम्न किया जा सकता है। संगीताञ्जलि पञ्चम भाग में मूर्च्छनाप्रकरण में हम स्पष्ट कर चुके हैं कि उभयग्रामिक सात स्वरों से जो मूर्च्छनाएँ निष्पन्न होनी हैं, उनमें मूक्षम श्रुत्यन्तर-भेद रहने पर भी सादृश्य पाया जाता है। जैसे पञ्चग्रामिक मध्यम और मध्यमग्रामिक मध्यम में स्वानगत ऐक्य नहीं है, किन्तु दोनों की मूर्च्छनामो से समाज-सादृश स्वरावली निष्पन्न होती है; इसी प्रकार अन्य सभी स्वरों की मूर्च्छनामो में सादृश्य-संबंध है। यह भी उभयग्राम का एक प्रकार का

प्रत्यङ्ग-दर्शन है। प्रथम प्रत्यङ्गदर्शन में संज्ञाभेद है, विन्तु स्थानिक है, द्वितीय में संज्ञा ऐक्य है, विन्तु स्थान-भेद होने पर उसे मूर्च्छा-सादृश्य है। त्रितय प्रकार का द्विविध प्रत्यङ्गदर्शन उभयप्राग में हमने अपनी उपाय किया जमी प्रकार का प्रत्यङ्गदर्शन उभयप्राग में उपाय जातियों में जाति साधारण द्वारा नग्न को समझे है। अत्र जातिगणधारण की भी दो प्रकार के समझा जा सकता है :— (१) स्थापन ऐक्य तथा संज्ञा-भेद से एवं (२) मूर्च्छागत सादृश्य में। यह दोनों प्रकार का जातिगणधारण समझ. नीचे दो शर्तियों में प्रस्तुत है।

१. उभयप्रागिक स्वरगत ऐक्य तथा संज्ञा-भेद से मिश्र जाति-साधारण

पदप्रथम की पाद्वी तथा मध्यमप्राग की मध्यमा		पदप्रथम की धार्वी तथा मध्यमप्राग की पश्ची		पदप्रथम की नैपादी तथा मध्यमप्राग की मध्यमी	
पाद्वी	मध्यमा	धार्वी	पश्ची	नैपादी	मध्यमी
सा	गा	सा	गा	सा	गा
—३	—३	—२	—४	—४	—४
रि	रि	रि	रि	रि	रि
—२	—४	—४	—२	—३	—१
ग्	ग	ग्	ग्	ग	ग
—४	—२	—४	—४	—२	—४
म	म	म	म	म	म
—४	—४	—३	—३	—४	—२
प	प	प	प	प	प
—३	—३	—२	—२	—४	—३
घ	घ	घ	घ	घ	घ
—२	—२	—४	—४	—३	—४
नि	नि	नि	नि	नि	नि
—४	—४	—३	—३	—२	—२
सं	सं	सं	सं	सं	सं

पदप्रथम का पदप्रथम तथा मध्यमप्राग का मध्यम, प०प्राग का श्रपम तथा म०प्राग का पक्षम, तद्वत् प०प्राग का निपाद तथा मध्यमप्राग का गान्धार वीणा पर एक ही स्थान पर स्थित हैं; इसीलिए पाद्वी—मध्यमा, धार्वी—पश्ची तथा नैपादी—गान्धारो— इन उभयप्रागिक जाति-युग्मों का प्रत्यङ्गदर्शन ऊपर प्रस्तुत किया गया है। इन युग्मों में ध्रुवन्तर-भेद के अतिरिक्त एक-एक स्वर की निरता के प्रयोग से पदप्रथमिक 'गान्धारोत्कर्ष' और मध्यमप्रागिक 'नैपादीपवर्ष' की स्मरण रखना आवश्यक है।

२. उभयप्रामिक मूर्च्छनासाहस्य से निष्पन्न जाति साधारण

उभयप्रामिक पङ्क का मूर्च्छना-साहस्य (काफ़ी-साहस्य)		उभयप्रामिक मध्यम का मूर्च्छना साहस्य (खमाज साहस्य)		उभयप्रामिक पञ्चम का मूर्च्छना-साहस्य (आसावरी साहस्य)		उभयप्रामिक धैवत का मूर्च्छना-साहस्य (तोडी-भैरवी साहस्य)	
पङ्कशा पाङ्की प. ग्राम	पङ्कशा मध्यमा म. ग्राम	मध्यमाशा पाङ्की प. ग्राम	मध्यमाशा मध्यमा म. ग्राम	पञ्चमाशा पाङ्की प. ग्राम	पञ्चमाशा मध्यमा म. ग्राम	धैवताशा पाङ्की प. ग्राम	धैवताशा मध्यमा म. ग्राम
सा	सा	सा	सा	सा	सा	सा	सा
—३	—३	—४	—३	—३	—४	—२	—२
रि	रि	रि	रि	रि	रि	रि	रि
—२	—२	—३	—४	—२	—२	—४	—४
ग	ग	ग	ग	ग	ग	ग	ग
—४	—४	—२	—२	४	—४	—३	—३
म	म	म	म	म	म	म	म
—४	—३	—४	—४	—३	—३	—२	—२
प	प	प	प	प	प	प	प
—३	—४	—३	—३	—२	—२	—४	—४
ध	ध	ध	ध	ध	ध	ध	ध
—२	—२	—२	—२	—४	—४	—४	—३
नि	नि	नि	नि	नि	नि	नि	नि
—४	—४	—४	—४	—४	—३	—३	—४
सां	सां	सां	सां	सां	सां	सां	सां

ऊपर प्रथम सारिणी में उभयप्रामिक संज्ञाभेद के आधार पर जातियों का प्रत्यङ्गदर्शन प्रस्तुत किया गया था। द्वितीय सारिणी में उभयप्रामिक मूर्च्छना-साहस्य का आधार लिया गया है। पङ्कप्रामिक पङ्क और मध्यमप्रामिक पङ्क का धीमा पर भिन्न स्थान होने पर भी दोनों की मूर्च्छनाओं में पर्याप्त साहस्य पाया जाता है। इसी साहस्य के आधार पर जातियों का प्रत्यङ्गदर्शन करने के लिए हमने यहाँ ग्रंथ स्वरों को पङ्क का स्थान देकर स्वरावलिषा बनाई हैं।*

* ध्यान रहे कि ग्रंथस्वर को पङ्क का स्थान देने की प्रत्याज्ञा किया यहाँ जातियों के प्रत्यङ्गदर्शन के प्रयोजन से ही की गई है। शुद्ध जातियों के स्वर रूप के नियामकता को त्याग दे ही निश्चिन्त मानने के सिद्धान्त में स्वयं कोई धारणा नहीं करनी।

मर्तग

भरतोक्त ध्वजस्वामिगार हगने कृष्ण, विष्णु तथा गणगांजा विष्णु प्राडिषों की रचना विभिन्न षट्पुषी वरुण को । धम ह्य इग मरुत प मे मर्तग की विषायाया का भी धाम दर्शन कर में, क्योंकि भरत के परवर्ती जगन्मर्तग में उगता प्रमुण रता है ।

ध्या रहे कि भरत ने जाडिषों के रवर-रूप दिगाणों के लिए विगी मूर्च्छंता का निर्देश नहीं ही दिया है । किन्तु मर्तग ने जाडिषों का विवरण देते समय उगरी मूर्च्छंताएं बताई हैं । यही यह भी कवेगनीय है कि भरत उदर-मद्रादि सप्तस्वर-मूर्च्छंताओं के अतिरिक्त मर्तग ने द्वादश-स्वर मूर्च्छंता भी कही हैं । धम जाडिषों के मर्तग में मद्रादरग मूर्च्छंता विषाया पर विषार करते समय उगरी द्वादश-स्वर-मूर्च्छंता पडति को धामोतगागम दृष्टि से प्रदम देत केन धामरपक है ।

मर्तग में द्वादश स्वर-मूर्च्छंता का प्रयोजन विरपान प्राप्ति धामा है । मया :—

धम मूर्च्छंतानिर्देश रवानात्रितयप्रादयधर्मिनि धधनापु मद्रादरगिदधधर्मिनि धधनाप द्वादशस्वरसमना दूर्च्छंता दृष्टव्या प्रयोगधाते । तथा बाहू कोहल.—

योजनयो धुधैनियं क्रमो लधयानुगारतः ।

संघाय्य मूर्च्छंता जाडिषमभापादिगिदधे ॥

धधनात् जाति, राग, भाषादि की गिदधि के लिए मूर्च्छंता का लधयानुगार क्रम रपारित करना चाहिए ।

स्मरण रहे कि कोहल के इग उदरल मे द्वादशस्वर मूर्च्छंता का कहीं उल्लेख नहीं है ।

इसी प्रसंग में मर्तग ने नौ दवेध्वर का उदरल भी दिया है : नन्दवेध्वरेणाप्युत्त—

द्वादशस्वरसमप्रा जानध्या मूर्च्छंता धुधे ।

जातिभाषादिगिदधयं तारमद्रादिगिदधे ॥

धधनात् जाति-भाषादि-गिदधि के लिए तथा तारमद्रादि गिदधि के लिए द्वादशस्वर मूर्च्छंता समझनी चाहिए ।

पहलपाम तथा मध्यममाम की मूर्च्छंताओं के द्वादश-स्वर-रूप मर्तग ने जिध प्रकार दिए हैं, वे निम्नेर सारिगिधों मे सष्ट हो जाण्ते और उन द्वादश स्वर मूर्च्छंता की भरतोक्त सप्तस्वर मूर्च्छंता से मिप्रता भी सष्ट हो जाण्ती ।

१. पहलपाम

सावे विव मूर्च्छंता-नाम	द्वादश-स्वर मूर्च्छंता	परस्परगत मूर्च्छंता नाम	माम का मूल धारंभस्वर (सप्तस्वर-मूर्च्छंता के अनुगार)
धैवतादि निषादादि पड्जादि श्रुपनादि गान्धारादि मध्यमादि पञ्चमादि	धनिसारिगमपधनिसारिग निसारिगमपधनिसारिगम सारिगमपधनिसारिगमप रिगमपधनिसारिगमपध ममपधनिसारिगमपधनि मपधनिसारिगमपधनिसा पधनिसारिगमपधनि	उत्तरमन्द्रा रजनी उत्तरायता शुद्धपाड्नी मत्सरीहृता अध्रजान्ता धभिद्धृता	पहल निषाद धैवत पञ्चम मध्यम गान्धार श्रुपम

२. मध्यमग्राम

सांकेतिक मूर्च्छना-नाम	द्वादश स्वर मूर्च्छना	परंपरागत मूर्च्छना-नाम	ग्राम वा मूल धारंभस्वर (सप्तस्वर मूर्च्छना के अनुसार)
नेपादादि रङ्गादि मृगभादि गायत्रादि पथ्यमादि उभ्रमादि धैवतादि	निसारिगमपधनिसारिगम सारिगमपधनिसारिगमप रिगमपधनिसारिगमपध गमपधनिसारिगमपधनि मपधनिसारिगमपधनिसा पधनिसारिगमपधनिसारि धनिसारिगमपधनिसारिग	सौवीरी हरिणाधा बलोपनता शुद्धमध्यामा मार्गी पौरवी हृष्यका	मध्यम गान्धार ऋषभ पडज निषाद धैवत पञ्चम

इन सारिगमियों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि केवल पडजग्राम की प्रथम मूर्च्छना में ही त्रिस्थानप्राप्ति का उद्देश्य पूर्ण हुआ है, क्योंकि वह पडज की मूर्च्छना है और धैवत से उसका धारंभ किया गया है। इस प्रकार मन्द्र मे 'पुंति' तथा तार में 'रिंरं' प्राप्त हो जाते हैं। किन्तु अन्य किसी भी मूर्च्छना में इस क्रम का पालन नहीं हुआ है। निषाद से धारंभ होने वाली मूर्च्छना 'रजनी' को इस क्रम के अनुसार पंचम से धारंभ करना चाहिए था; किन्तु उसे निषाद से ही धारंभ किया गया है। इस प्रकार न तो त्रिस्थान प्राप्ति का उद्देश्य पूरा हुआ है और न ही सप्तस्वर मूर्च्छनाओं के मौलिक आरम्भस्थानों के साथ द्वादश-स्वर मूर्च्छनाओं के आरम्भस्थानों का सामञ्जस्य स्थापित हो सका है। यह स्मरणीय है कि सप्तस्वर-मूर्च्छनाओं को यदि द्वादशस्वर मूर्च्छनाओं में, त्रिस्थान प्राप्ति के उद्देश्य से स्थापित करना हो तो वही श्वरोह-क्रम रखना चाहिए—यथा 'ध' के बाद 'प' से तथा 'प' के बाद 'म' से पडजग्राम की मूर्च्छनाएँ बनानी चाहिए। किन्तु मत्तग के विधान में इसके विपरीत आरोहक्रम रखा गया है। यानी 'सानिषयमगरि' इस क्रम में स्थित सप्तस्वर-मूर्च्छनाओं को 'धमगरिसानि' इस श्वरोह-क्रम से द्वादश-स्वरों में स्थित करना चाहिए था, उसकी वजाय उन्हें 'धनिसारिगमप' को आरोह-क्रम में रख दिया गया है। इस प्रसंग में मत्ता का निम्नलिखित वाक्य भी विचारणीय है :—

सारिगमधनि धन्या (?) मूर्च्छना धनिगमपाद्यात्रिय (?) मूर्च्छना द्रष्टव्या । (बृहद्देशी पृ० ३२)

इस पंक्ति का शुद्ध पाठ निम्नलिखित होगा .—

सारिगमपधन्याया सप्तस्वर मूर्च्छना धनिसारिगमपाया द्वादशस्वरमूर्च्छना द्रष्टव्या ।

अर्थात्—(पडजग्राम की) जो सप्तस्वर मूर्च्छनाएँ क्रमशः 'सारिगमपधनि' से धारंभ होती हैं, वही द्वादश स्वर-स्वयम्भानुसार क्रमशः 'धनिसारिगमप' से शुरू होती हैं। ध्यान रहे कि इस उद्धरण में सप्तस्वर मूर्च्छनाओं को भी 'सारिगमपधनि' को आरोह क्रम में रखा गया है। यदि इसी क्रम से द्वादश-स्वर-मूर्च्छनाओं के साथ सप्तस्वर-मूर्च्छनाओं को स्थापित किया जाता तब तो दोनों में सामञ्जस्य रहता। किन्तु इस उद्धृत वाक्य के बाद 'बृहद्देशी' के वर्तमान उपबन्ध पाठ में सप्तस्वर मूर्च्छनाओं का ता परंपरागत श्वरोह-क्रम ही रख लिया गया है और द्वादश-स्वर-मूर्च्छनाओं को आरोह-क्रम में ही बनाया गया है। इसीलिए क्रम-भंग ही छिट्टि हुई है और इसी क्रम भंग के फलस्वरूप न तो त्रिस्थान प्राप्ति का प्रयोजन ही सिद्ध हो पाया है और न ही सप्तस्वर-मूर्च्छनाओं के साथ सामञ्जस्य स्थापित हो सका है। अन्तु ।

द्वादश-स्वर-मूर्च्छना का प्रयोजन मत्तग ने तो 'त्रिस्थान-प्राप्ति' या 'मन्द्रमध्यतारगण्डि' इतना ही कहा है। किन्तु बोह्वन और नन्दिनेश्वर ने जो बचन उन्होंने इस प्रकरण में उद्धृत किए हैं, उनमें इस प्रयोजन के अनिश्चित 'जानि राधासिगण्डि' पर ही विशेष बल दिया गया है। इस द्वितीय प्रयोजन की सिद्धि भी द्वादश-स्वर-मूर्च्छना में होती है या नहीं, यह भी हम जानें। दोनों ग्रामों की जानिया में उन्होंने जिन-जिन मूर्च्छनाओं का उल्लेख किया है, व निम्नोक्त गारिणी में लिखाई गई है। ध्यान रहे कि इस गारिणी में हम मत्तग की बहो हुई जानिया मूर्च्छनाओं का उल्लेख करने पर रहे हैं। वे मूर्च्छनाएँ सप्त-स्वर की हैं या द्वादश स्वर की हैं, इस बारे में माँग मी है। इसविषय पर द्वादश-स्वर-मूर्च्छना-नन्दिनि का उल्लेख विशेष रूप से प्रस्तावित किया है, उगो का उद्धृत जति प्रकरण में गण्यता जग

प्राप्त है। इससे प्रतिरिक्त यह स्पष्ट पता भी पड़ता है कि मतंग ने जानियों की मूर्च्छनाओं के नामों को प्रसार से उल्लेख किया है, वहाँ 'ऋषमादि', 'पंचमादि', 'धैवतादि'—इस प्रकार के नाम दिए हैं तो वहाँ पराशर सप्तस्वर-मूर्च्छना-नाम तथा हृष्यना आदि प्रयुक्त किए हैं। इससे कुछ भ्रम हा सकता है कि वहाँ सप्तस्वर-मूर्च्छना समझी जाए और वहाँ द्वादश-स्वर समझी जाए। किन्तु उनके द्वादश स्वर मूर्च्छना के ग्रामह को देखते हुए इनके प्रकार के नामोन्लेख को निम्न सारिणी में उनके स्व-निर्मित द्वादश स्वर मूर्च्छना के क्रम से ही रचना करने उचित मन है। उदाहरण के लिए यदि हृष्यना मूर्च्छना नाम पड़ा है तो उसका द्वादश-स्वर-मूर्च्छना रूप धैवत से आरंभ होता है और सप्तस्वर रूप पंचम से। हमने तदनुसार उसका द्वादश स्वर रूप धैवतादि रखा है और साथ ही पाठकों के सीधे के लिए प्रत्येक मूर्च्छना के सप्तस्वररूप का आरंभस्थान भी दिया दिया है। तदनु जहाँ ऋषमादि मूर्च्छना बड़ी है, वहाँ क द्वादश स्वर मूर्च्छना का नाम मानकर उसका सप्तस्वर-नाम तदनुसार बलौपनता दिया दिया है। पाठक इसी प्रकार सब मूर्च्छनाओं के लिए समझ लें। कुट्टेन जातियों की मूर्च्छनाओं का नामोन्लेख मतंग के बृहदेशी के वर्तमान उल्लेख पत्र में प्राप्त नहीं होता। ऐसे स्थानों पर प्रस्त बिन्दु लगाकर 'रत्नाकर' में प्राप्त उल्लेखों से पूरित कर ली गई है। 'रत्नाकर' में जातिगत मूर्च्छनाओं के विषय में मतंग की बृहदेशी का ही अभिमत अनुसरण स्पष्ट दिखाई देता है। इतना ही 'बृहदेशी' के जो अशुभ प्रकरण ने छुप्त है, उनकी पूरित 'रत्नाकर' के आधार पर नि सदेह की जा सकती है।

मतंगोक्त जातिगत मूर्च्छनाएँ

जाति नाम	ग्राम	मूर्च्छना का द्वादश-स्वर नाम	द्वादश स्वर के अनुसार सप्तस्वर-नाम	सप्तस्वर मूर्च्छना का अपना आरंभ स्थान	जाति का न्यास स्वर
१. पाङ्गी	पङ्ज	धैवतादि	उत्तरमन्द्रा	पङ्ज	पङ्ज
२. आपंभी	"	पञ्चमादि	अभिरुद्गता	ऋषभ	ऋषभ
३. धैवती	"	धैवतादि	उत्तरमन्द्रा	पङ्ज	धैवत
४. नैपादी	"	गान्धारादि	मत्सरीश्रुता	मध्यम	निषाद
५. पङ्जकैशिकी	"	?	—	—	गान्धार
६. पङ्जमध्यमा	"	मध्यमादि	अप्रकान्ता	गान्धार	पङ्ज, मध्यम
७. पङ्जोदीच्यवा	"	गान्धारादि	मत्सरीश्रुता	मध्यम	मध्यम
८. गांधारी	मध्यम	धैवतादि	हृष्यना	पञ्चम	गान्धार
९. मध्यमा	"	? ऋषमादि	बनोपनता	ऋषभ	मध्यम
१०. पञ्चमी	"	?	"	"	पञ्चम
११. मध्यमोदीच्यवा	"	मध्यमादि	मार्गी	निषाद	मध्यम
१२. गांधारोदीच्यवा	"	धैवतादि	हृष्यना	पञ्चम	मध्यम
१३. रत्नगांधारी	"	ऋषमादि	बलौपनता	ऋषभ	गान्धार
१४. मैथिली	"	गान्धारादि	शुद्धमध्यमा	पङ्ज	ग, प, नि
१५. गान्धारापञ्चमी	"	"	"	"	गान्धार
१६. नागार्थी	"	पङ्जादि	हरिणाथा	गान्धार	पञ्चम
१७. सान्धो	"	मध्यमादि	मार्गी	निषाद	गान्धार
१८. मन्थली	"	हृष्यना (धैवतादि)	हृष्यना	पञ्चम	"

जातियों के स्वर-रूप का निर्णय कैसे किया जाए ? जिस आधार पर किया जाए ? ऐसा प्रश्न है कि इसी प्रश्न के हल के लिए मतंग ने जातियों की मूर्च्छनाओं का उल्लेख किया है। यहाँ यह पुनः भरत ने शुद्ध जातियों में तो उनके नाम-स्वरों को ही प्रह-प्रंश, न्यास कहकर और न्यास को अपरिवर्तनशील १-३-३ न्यास स्वरों द्वारा ही अपनी अभिप्रेत जातिगत मूर्च्छनाओं का निर्देश कर दिया है। किन्तु मतंग ने उपर्युक्त भरत-प्रवस्था का यथायत् उल्लेख करके भी शुद्ध और संसर्गजा जातियों की भिन्न भिन्न मूर्च्छनाओं का स्वतन्त्र रूप से रूपण किया है और इन मूर्च्छनाओं का न्यास-स्वर के साथ कोई सामंजस्य नहीं है।

उपसंहार

मतंगव्यक्त मूर्च्छनाएँ भरतोक न होने पर भी उनके स्वीकार में हमें आपत्ति न होनी यदि हमें उन छँनाओं द्वारा प्राप्त स्वरानुसृतियों में शुद्ध जातियों के रूपों का और उनके सप्तम से बनी हुई संसर्गजा जातियों के मवायी रूपों का यथायत् दर्शन उपलब्ध होता। किन्तु मतंग की जातिगत मूर्च्छनाओं का विभिन्न पहलुओं से जो दर्शन मने ऊपर किया, तदनुसार भरत के अनुयायियों का यही कर्तव्य है कि वह उन्हीं की परंपरा का अनुसरण करे और नवी प्रतिपादित न्यास स्वर की अपरिवर्तनशीलता, जो मतंग की भी मान्य है, उसके आधार पर न्यास स्वर को ही जाति-स्वर-रूप का निवामक माने। इस सिद्धान्त के अनुसार हम इसके पूर्व जातियों का विवरण दे ही चुके हैं।

यह भी सत्य है कि मतंग का 'बृहदेशी' आज जिस ह्रा में उपलब्ध है, उसमें पाठ प्रतिशय भ्रष्ट और अपूर्ण है; यहाँ तक कि कई पृष्ठ के पृष्ठ लुप्त हैं। मतंग के इस जाति-अनुसरण की वर्तमान दुरूहता के लिए यह बलुस्थिति भी पर्याप्त मात्रा में उत्तरदायी है। इसलिए जब हम इस प्रसंग में प्राप्त उल्लेखों से मतंग का मिथ्यात्व समझने की प्रयत्न प्रकट करते हैं, तब इस वचन में प्रत्यक्ष के प्रति अन्याय की कोई भावना नहीं है; उनके प्रति हमें सम्पूर्ण उपासना है। सत्य का प्रकाश हम उन्हीं के उल्लेखों में खोजते हैं। हाँ, जहाँ-जहाँ कठिनाइयाँ हो वहाँ उन्हें स्पष्ट कर देना तो हमारा कर्तव्य हो जाता है।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' इस वेदिक प्रार्थना के अनुसार हम भी प्रकाश पाने के लिए प्रार्थना करते हैं और जो कुछ आनंद प्राप्त हो उसे सानुभव विनिरत करने के बल की कामना करते हैं। इसलिए जिस सत्य की जैसी उपलब्धि हुई है, यत्पूर्वक जो संसा समझ में आया है, उसे उसी रूप में रख देने के कर्तव्य का पालन कर रहे हैं।

इस प्रकार के उपसंहार में मतंगोक्त द्वादश स्वर मूर्च्छना पर भी अपनी मन्तव्य देना हम आवश्यक समझते हैं। हमने देखा कि मतंगोक्त द्वादश स्वर मूर्च्छना से जितने विरोध प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। विस्मयन प्राप्ति की दृष्टि से भी यह द्वादश स्वर विषम अनवश्यक ठहरता है, क्योंकि सप्तस्वर मूर्च्छना में भी तारमरादि का मिद्धि के लिए उन्हीं स्वरों का तीना सप्तको में उपयोग किया जा सकता है। जिसकी सहज उपलब्धि सप्तस्वर मूर्च्छनाओं में ही परंपरा से प्राप्त है, उसके लिए द्वादश स्वर मूर्च्छना का विधान आवश्यक नहीं ही है। हमने यह भी देखा कि जातियों के स्वररूप निर्धारित करने में भी द्वादश स्वर मूर्च्छना की कोई उपयोगिता नहीं है; इसलिए हम भरतोक सप्तस्वर मूर्च्छनाओं को ही प्राप्त मानते हैं। मतंग के परवर्ती जिन धाचार्यों ने उनकी द्वादश स्वर मूर्च्छना को अप्राप्त माना है, उनमें से 'सगीतराज' के रचयिता कुम्भा राणा के शब्द निम्नोक्त हैं :—

अथ वा मूर्च्छना प्राह द्वादशस्वरसंभवा । मतङ्गस्तन्मतं नैव सुन्दरं प्रतिभाति मे ॥
 अथैव कोहलापायौ नन्दिकेश्वर एव च । मतङ्गमनुष्यैश्चैतन्ननुस्तिह वच्यते ॥
 द्वादशस्वरसप्तमा ज्ञातव्या मूर्च्छना बुधैः । जातिभाषादिसिद्धयर्थं तारमन्द्रादिसिद्धये ॥
 विस्मान्प्रतिसिद्धयर्थं द्वादशस्वरमूर्च्छना । प्रयोक्तव्यान्वया चोदावाडको नैव सिद्धवतीति ॥
 विस्मान्प्रतिभिर्यन्तं यावद्भागो न मूर्च्छति । न तावत्सुन्दरीरूप लाभः संजायते विद्याय ॥

न च ताम्बरीरेव त्रिम्बानश्यामितोमत्र । अत्र प्रतिगमायते मुग्धाणिपुनकमनः ॥
 क्रमात्स्वराणामारोहोत्तररोहो मूर्च्छनैति यन् । लक्षणं तद् विद्विष्यन् क्रमादारोहगुणते ॥
 यद्युक्तां जानिमापादितारमन्द्रादिगिद्धये । द्वादशस्वरगुण्येन मूर्च्छनां स्वाध्रपोविना ॥
 नन्दयन्त्या तदव्याप्ते तदाश्रयशतंभवान् । पाङ्नीटुचितारत्रनिश्यातिर्लोप्यादिमंभवान् ॥
 अतमत्राद्गमतायैत्यातारमन्द्रावधी वृत्ते । न तावन् क्रमतां चारे रक्तिः पुत्राणि जायते ॥
 विसर्गादिसमावेशाद्रक्तिमङ्गो यतः स्मृतः । ईपत्साशौल्लङ्घनाद्यैः क्रमभङ्गस्य शासनात् ॥
 भूतानोपयोगित्वं मुख्यमगा प्रयोजनम् । न रागजनिरपातयोर्न सप्तस्वरैरिता ॥

(संगीतराज, गीतरत्नमोश, रत्नगोलाल ३ (२-६४))

धर्मात्—“मर्तंग ने जो द्वादशस्वर-मूर्च्छना कहा है, वह मुझे 'गुन्दर' (उचित्र) प्रतीत नहीं है। कोहलाचार्य और नन्दिकेश्वर ने मर्तंग के मत का अनुसरण करके जो कुछ कहा है वट इस प्रकार है—इसकी जातिभाषादि सिद्धि के लिए और तारमन्द्रादि त्रिस्थान की सिद्धि के लिए द्वादशस्वर-मूर्च्छना प्रयुक्त नहीं की जाती। जब तब राग का त्रिस्थान में विस्तार न किया जाए तब तक उसका शरीर (रा) युपजना की प्रतीतिगोचर नहीं बनता । सप्तस्वरो से त्रिस्थान व्याप्ति संभव नहीं होती, अतः द्वादशस्वर-मूर्च्छना आवश्यक है। इसका समाधान यह है—'मूर्च्छना का लक्षण है—क्रम से सप्तस्वरा का आरोहोत्तररोह । इस लक्षण का द्वादशस्वर-मूर्च्छना में हुनन होना ही है क्योंकि उनमें क्रम से सप्त स्वरो का आरोहोत्तररोह नहीं होता । यह जो कहा गया है कि जाति-भाषादि-सिद्धि के लिए द्वादशस्वर मूर्च्छना आवश्यक है—वह भी यथार्थ नहीं है, क्योंकि नन्दयन्तो जाति में द्वादश-स्वर से भी काम नहीं बन पन्नरश्च स्वरो से नन्दयन्तो की सिद्धि होती है । साथ ही यह भी विचारणीय है कि पाङ्ग-श्रीडव जाति-नेत्रो म त्वे स्वरा की गिनाई न होने से द्वादशस्वर मूर्च्छना डाई या तीन सप्तका में व्याप्त हो जाएगी । यदि लोप्य स्वरो की गिनाई की जाए तो फिर पाङ्ग ओडव जातिया या रागा की सिद्धि नहीं हो सकेगी । इस प्रकार द्वादशस्वर मूर्च्छना नन्दयन्तो के प्रसंग में अश्यास्त्रि-दोष-युक्त है और पाङ्ग-श्रीडव जानियो या रागो के लोप्य स्वरो के प्रसंग में यह दोष-युक्त है । इन दोषो के अतिरिक्त विसर्गादि अन्तरालो के समावेश के कारण इस मूर्च्छना-पद्धति में रक्तिमत्त्व होता है । अतः द्वादशस्वर मूर्च्छना का केवल कूतान में उपयोग ही संभव है । उनसे 'राग की उदात्ति संभव नहीं है अतः सप्तस्वर मूर्च्छना ही प्राज्ञ है' (द्वादशस्वर नहीं) ।”

शाङ्गदेव

मर्तंग के पश्चात् शाङ्ग देव के 'संगीत रत्नाकर' का उल्लेख क्रम प्राप्त है । 'संगीत रत्नाकर' के जति को देखने से ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि शाङ्ग देव ने इस सर्वत्र में मर्तंग का ही अनुसरण किया है । हम देखते हैं कि शाङ्ग देव के पूर्ववर्ती अशकारों में जातियो की मूर्च्छनाया वा उल्लेख मर्तंग ने ही किया है । 'रत्नाकर' में उल्लेख का प्रविचल अनुसरण मिलता है । उदाहरणार्थ पाङ्गी जाति के त्रये 'मूर्च्छना धैवतादिवा' इन शाङ्गों का रक्ति ने मर्तंग के अनुसार प्रयोग किया है । पाङ्गी जाति शुद्धा जातियो में प्रथम है । शुद्धा जानियो की व्याख्या देते हुए साष्ट कहा गया है कि उनसे प्रह, अरा और ग्यास उनके अपने नाम-स्वर से ही होते हैं । इस कथन से यह स्पष्ट है कि पाङ्गी जाति का मह, अरा और ग्यास पञ्ज ही है । यह होते हुए भी इसी मूर्च्छना धैवतादिना क्यों कही गई ? अरा या ग्यास—इन तीन में से जो भी जाति के स्वर रचन का नियामक माना जाए वही में, उसी स्वर से मूर्च्छना बन

ॐ धाम्ब में तो मर्तंग ने द्वादशस्वर मूर्च्छना के प्रकरण में कोहल धीर नन्दिकेश्वर को पूर्वाचार्य मानकर मत उद्धृत किया है । ऐगो अवस्था में कुम्भ का यह कथन कि मर्तंग के मत का अनुसरण कोहल और किया है, निरर्थक है ।

ए। अर्थात् पाङ्जी की मूर्च्छना पङ्ज से ही बहनी चाहिए। उनके स्थान पर धैवतादि मूर्च्छना बटने वा क्या भेद है ? उसी प्रकार 'मार्दभी' की मूर्च्छना 'पंचमादि', 'गान्धारी' की 'धैवतादि', मध्यमा की 'ऋषमादि', 'पंचमी'—'तो' की 'ऋषमादि', नैषादी की 'गान्धारी'—यों जातियाँ की मूर्च्छनायें शाङ्गदेव ने बही हैं।

जातियों के स्वर-रूप का निर्णय जिस आचार पर हो यानी उनमें प्रयुक्त स्वरों के अंतराल कैसे रहेंगे, यह जिस पर निश्चय किया जाए ? दो मामों की मूर्च्छना निम्न अन्तरालों की होती हैं। शाङ्गदेव ने तो अपने ग्रन्थ में उन्नाम्रा के अतिरिक्त स्वरों के शुद्ध विद्युत भेद भी बड़े हैं। उनमें से उन उन जातियों में कौन से शुद्ध विद्युत स्वर क होंगे इसकी कोई स्पष्टता इन्होंने नहीं की है। यदि उनकी कही हुई जातिगत मूर्च्छनाओं की जातियों के स्वर-रूप निर्णय मान लें तो पाङ्जी की धैवतादि मूर्च्छना कहने से पाङ्जी के ग्रह अंश और न्यास जो पङ्ज ही ह उसकी त्रिंति कैसे बैठेगी ? साथ ही यह भी स्मरणीय है कि एव ही धैवतादि या ऋषमादि मूर्च्छना को कई जातियों के साथ संबद्ध ज्ञाया गया है। इसमें स्पष्ट है कि जातिगत मूर्च्छनाओं की जातियों के स्वर रूप का निर्णय मानने से कोई प्रयोजन ब नहीं होता। साथ ही यह भी हमें कहना पड़ता है कि स्वरालित और कथित शुद्ध विद्युत स्वरों का भी जातियों के स्वर-रूप स्पष्ट करने के लिये उपयोग नहीं किया है। ऐसा उपयोग यदि किया होता तो अनुमान करने के लिए कुछ आचार मिल जाता।

शाङ्गदेव ने भिन्न भिन्न जातियों के स्वर-प्रस्तार के साथ-साथ गीत भी दिये हैं, जो उनके पूर्ववर्ती किसी ग्रन्थ में लब्ध नहीं हैं। * 'रत्नाकर' के ये जाति गीत मर्तंगीत जाति प्रस्तारों के स्वरों में ही अविकल रूप से जड़ित हैं; पाठकों सौकर्य के लिये यहाँ हम उनके कुछ जातिगत उद्धृत करते हैं और साथ ही मर्तंग के जाति प्रस्तार भी दे रहे हैं।

शुद्धा जातियों—मर्तंग की शुद्धा जातियों के विवरण में स्वर-प्रस्तार प्रायः उपलब्ध नहीं है, विन्तु सप्त जातियों में शाङ्गदेव द्वारा मर्तंग का जिस प्रकार का अविकल अनुसरण पाया जाता है उससे यह मानने में कोई बाधा नहीं आती है कि शुद्धा जातियों के प्रस्तार-गीत भी मर्तंग के प्रस्तारों के अनुसार ही बनाये गये होंगे। सर्वप्रथम हम इन्द्राग की पाङ्जी और मध्यमस्राग की गान्धारी इन दो जातियों के प्रस्तार गीत यहाँ उदाहरणार्थ उद्धृत कर रहे हैं।

पाङ्जी

मर्तंग

शाङ्गदेव

तत्र पाङ्ज्या पञ्चमामसम्बन्धाया अंशा महा पञ्च
नि। तद्यथा पङ्जगान्धारमध्यमपञ्चमधैवता (महा
ग ?) महा अशाश्व। गान्धारपञ्चमामपन्था (सो ? सी)।
शुद्धोना पाङ्जा पङ्जी न्यास। पङ्जगान्धारयो
पञ्चधैवतयोश्च सङ्गति। गान्धारोऽतिवेलापित्वात्।
स्वरगमन च सङ्गति। पञ्चस्वरररा तारगति। पङ्ज-
रात् परा वा म (न् ? न्द्र) गति। पङ्जधैवतयोश्च
धैवतत्वं च सर्वधैव नान्ति। सम्पूर्ण पाङ्जा। यदा
पूर्णा गोपते तदा ऋषभपञ्चमयोनिपादपञ्चमयोरन्तर्व-
धैवत्। पुन —

पाङ्ज्यामशा स्वरा पञ्च निपादधैवतविज्ञिता।
निनीपात्पाङ्ज सोऽन पूर्णं ये काकली कश्चिन् ॥६०॥
सगवो सवयोश्चान सगतिर्धैवतस्तु ग।
गाधारोऽशो न नेलोऽनो मूर्च्छना धैवतादिका ॥६१॥
धिया ताल पञ्चसाधिरथ चैककलाऽधैवत।
क्रमाग्नान्धाधैवतवृत्तिदधिणा गीतय पुन ॥६२॥
मागधी सभाविता च पृथुतेति क्रमादिमा।
नैऋतिकद्रुजाया च प्रथमे प्रेक्षणे स्मृत ॥६३॥
विनियोगो द्वादशान वला षष्ठ सधुः कला।

* नाग्यदेव के 'भरतभाष्य' में बही जातिगीत उल्लिखित हैं, जो कि शाङ्गदेव ने दिए हैं। विन्तु नाग्यदेव का भी अर्थ निश्चय नहीं हो पाया है, इन्हींके लिए उपरिलिखित सामान्य उल्लेख कर दिया गया है।

ये चिना हीनता यस्या स्यात् चेतस्या तु सोऽनन् ।
इति वचनात् । य (धा ? दा) पाड्या पीयत तदा
ऋषभस्याल्लय्य वार्यम् । शेषाया स्वराणा यदृत्वम् ।
अस्याथ दशाशना । तद्यथा । शुद्धा विटृताथ पञ्चमूर्गा-
श्वत्वार पाड्या गान्धारोऽशो पाड्यापत्रादात् तेनाशा स्कुम्यते
तेन लिखिता पड्याशो न शुद्धत्व पड्याश्वानयात् सम्पूर्णावस्था-
यामष्टविध उभयम् । पाड्याश्वानया न (य ? व) विधयम् ।
शुद्धा परित्यज्य चतुर्विधा पाड्यो त्रिष्टुता बोद्धव्या ।
अस्याथ धैवतादिमूर्च्छना पञ्चराशिधिये मार्गे मागधी गीति
पञ्चराशिद्विकल वातिनमार्गे सम्भाविता गीतिथ्युपल
पञ्चराशि दक्षिणे मार्गे कृपुना गीति । अनेन क्रमेण
सर्वासा जातीना बोद्धव्यम् । वीररौद्राद्युता रना कार्या ।
प्रथमोऽशोने ध्रुवागाने त्रिनियोग ॥

अस्या पाड्याया पड्यो न्याम । गांधारपञ्चमा-
वायासौ । धराटी दृश्यते । अस्या प्रस्तार —

१. पाड्यो

१. सा सा सा सा पा निध पा धनि

त भ व ल ल ट

२. री गम गा गा सा रिग धत धा

न य ना यु जा धि

३. रिग सा री गा सा सा सा सा

क

४. धा धा नो निसं निध पा सां सां

न ग सू तु प्र ण य

५. नी धा पा धनि री गा सा गा

के लि स मु द्ध

६. सा धा धनि पा सा सा सा सा

व

७. सा सा गा सा मा पा मा मा

स र स ह त ति ल क

८. सा गा मा धनि निध पा गा रिग

प का नु ले प

९. गा गा गा गा सा सा सा सा

न

१०. धा सा री गरि सा मा मा मा

प्र ण मा मि वा म

११. धा नी पा धनि री गा री सा

दे ह ध ना न

१२. रिग सा री गा सा सा सा सा

लं

पाड्यो जाति के प्रस्तार गीत की टीना में कलिनाथ ने स्वरो के 'अल्परय बहुत्व-परिज्ञान' के लिए गीत के अन्तर्गत
छाप हुए स्वरो की सख्या का निर्देश किया है । यथा—पड्या ३६, ऋषभ १२, गांधार २४,
मध्यम ८ पचम ८, धैवत १६, निषाद १२—वीर यह भी कहा है कि प्रस्तुत गीत का पद्य
बला प्रस्तार पड्याजित पाड्यो का है । प्रत्येक बला में स्वरो की कितनी मात्रा हैं, कौन सा स्वर लघु है, कौन सा शुभ है,
यह भी कलिनाथ ने प्रत्येक जातिगीत की टीना में विस्तारपूर्वक बताया है ।

पाड्यो की मूर्च्छना 'धैवतादि' नहीं गई है । क्या ? 'पड्यादि' क्यों नहीं ? इस प्रश्न के साथ ही यह
भी विचारणीय है कि शाङ्गदेव को कही हुई 'धैवतादि' मूर्च्छना का भी तो विषय हुए प्रस्तार-गीत में कोई प्रतिनिधित्व
दिसाई नहीं देना ।

जाति गीत में प्रयुक्त स्वरा की सख्या निर्दिष्ट करने से कौन सा प्रयोग गिष्ट होता है ? अल्परय बहुत्व का
परिज्ञान तो प्रयुक्त स्वरा की इस सापेक्ष स्थिति से समझा जा सकता है । अर्थात् कौन स्वर धनि वार या न्यून वार

प्रयुक्त हुआ है इसकी गिनती से अल्पत्व बहुत्व वा स्थूल परिज्ञान हो जाता है, विन्तु प्रहत्व अंशव न्यासत्व वा परिज्ञान कैसे हो ? यदि इन्ही सदशाओं के आधार पर ग्रहण, अंशव न्यासत्व का भी निर्णय करने का यत्न किया जाय तो वह भी समीचीन नहीं होगा, क्योंकि अंशव अश्वके लिये मीन हैं और टोकाकार ने स्वयं "अश्वत्वबहुत्वपरिज्ञानार्थं" ही कह कर संख्या निर्देश किया है, प्रहत्व अश्वत्व आदि के परिज्ञानार्थ नहीं। मान लें कि गीत के आरंभ में चार बार 'सा' रहने के कारण 'सा' को प्रहत्व प्राप्त है, विन्तु छठी गीत की छन्द यत्नाएँ अग्यान्य स्वरो से आरंभ होती हैं; वहाँ प्रहत्व का क्या होगा ? पाठजी के शुद्ध स्वरूप में तो प्रह अश्व न्यास आदि सभी कुछ पड़ जा रहा है। उन सबका निदर्शन या प्रतिनिधित्व कहाँ, कैसे सम्भवा जाए ? पूरे गीत में ३६ बार पड़ जा का प्रयोग हुआ है; इसीलिए अंशव न्यासत्व आदि पड़ ज में ही आरोपित किये जाएँ क्या ? जिस प्रकार गीत की कई एक बड़ियाँ पड़ ज से भिन्न स्वरो से आरंभ की गई हैं, उसी प्रकार पाठजी के छन्द गीत छन्द स्वरो से आरंभ नहीं किए जा सकते क्या ? यदि नहीं, तो इसका अर्थ स्पष्ट है कि केवल गीत के आरंभ के स्वर को ही प्रहत्व प्राप्त है और इसके अधिक और कोई महत्व 'प्रह' को प्राप्त नहीं है। यदि ऐसा ही मान लें तो गीत रचना के वैधिय का लोप हो जाएगा। दूसरी ओर हम देखते हैं कि पाठजी के गीत में बीस बार गान्धार, सोलह बार धैवत, बारह-बारह बार मध्यम निषाद और आठ-आठ बार मध्यम पंचम का प्रयोग हुआ है। प्रह, धरा, न्यास, पड़ ज की अज्ञाता से इन स्वरो की स्थिति कैसे सम्भवी जाय ?

पाठजी जाति के प्रस्ताव-गीत को टीका के अन्त में कल्लिनाथ ने कहा है :—

अर्थ प्रस्तावः पड़जाश्वे गान्धारान्धराश्वेऽप्येवमेवाश्ववृत्तानि सम्पन्निवचार्योद्धारो नेयः। गान्धारान्धराश्वमनि स्वस्थानस्थितानामिव। तेषां स्थायित्वकरणमपि वीणायामुपतन्त्रीणां स्वरनादसाध्यापादनमिति रहस्यम्।

अर्थात् यह प्रस्ताव ('ते भवत्लाट' वाला) पड़जाश्व पाठजी का है। गान्धारदि जब अंश बनाए जाएँ तब भी इसी प्रकार बहुत्वादि से सम्पन्न विचार करके, प्रस्ताव बना लेना चाहिए। गान्धारदि का अंशत्व भी उनके स्वस्थानस्थित होने पर ही होता है। उन (गान्धारदि) का स्थायित्व-करण यानी उन्हें स्थायी बनाना भी वीणा की उपतन्त्रियों (चिकारियों) को (उन-उन स्वरो के) स्वनानुसंगे स्थित करना ही है। यह रहस्य है।

इस उद्धरण का तात्पर्य यह है कि जब, जिस स्वर को अंशव देना हो यानी उसे 'स्थायी' स्वर बनाना हो तब उसी स्वर में वीणा की उपतन्त्रियों (चिकारियों) मिला ली जाएँ। इस प्रकार भिन्न २ अंश स्वरो में चिकारियाँ मिलाने का विधान वहाँ तक और किस प्रकार क्रियाप्राप्त हो सकता है, उस पर विचार करें।

हम जानते हैं कि 'रिगमपधनि'—इन छ. स्वरो का जनक पड़ ज है। पड़ ज के निरन्तर गुणन से ही उसके अनुपात से अन्य स्वरो की स्थिति सिद्ध होती है। इसलिए किसी भी वीणा में मुख्य तन्त्रियों में से कम से कम दो तन्त्रियाँ अवश्य पड़ ज में मिलाई जाती हैं। उनमें पड़ ज के परिचय के लिए चिकारियों में भी एक अथवा दो तारों पर पड़ ज निनादित होना रहे ऐसा व्यवस्था रखी जाती है। आज के व्यवहार से हम यह भी जानते हैं कि राग के अंश स्वर के प्रतिचय के लिए पंचम, मध्यम, अथवा गान्धार, निषाद जैसे स्वरो को भी चिकारियों में स्थान देने की क्रिया विशिष्ट गुणित्वों में गाई जाती है। जैसे तानपुरे के प्रथम तार को पंचम, मध्यम अथवा गान्धार, निषाद में—राग के अंश (प्रमुख) स्वर के अनुसार मिलाया जाता है, उसी प्रकार चिकारियों को भिन्न २ स्वरो में मिलाने की विधि भी समझी जा सकती है और व्यवहार्य भी हो सकती है। पंचम, मध्यम वा पड़ ज के साथ संवाद-संबन्ध तो सर्वत्रिहित है ही, सप्तश्रुति गान्धार वा भी पड़ ज से, पंचम से या निषाद से संवाद है, तद्वत् निषाद वा पंचम से और गान्धार से संवाद-संबन्ध प्राकृतिकरीत्या स्थापित है। इस प्रकार, भिन्न २ स्वरो में चिकारियाँ मिलाने का धेन सीमित है, क्योंकि उनमें संवादस्वर की अनिवार्य आवश्यकता है। उदाहरणार्थ तीर्थ मध्यम अथवा कोमल मध्यम में चिकारियाँ मिलाना प्राप्त नहीं हो सकता।

उपर्युक्त दृष्टि से यह निवारणीय है कि पड़जाश्वमि अथवा मध्यमप्रामित्र पंचश्रुति गान्धार-निषाद में चिकारियाँ मिलाने पर वीणा का संवाद-संग किम प्रकार स्थिर रहे सकेगा ? पञ्चश्रुति गान्धार निषाद वा तो पड़ ज और पंचम—

दोनों के साथ सम्बन्ध है, इसलिये उनमें विचारियाँ मिलाने की गुंजाइश समझी जा सकती है (यद्यपि ऐया व्यवहार नहीं है) किन्तु पञ्चमप्रायिक अथवा मध्यमप्रायिक गान्धार-निपाद में विचारियाँ मिलाना न सहज है, न प्राकृतिक स्यादसिद्ध है और न ही वर्णप्रिय हो सकती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि उभयप्रायिक जातियों के सभी अक्षरों में विचारियाँ मिलाने की क्रिया व्यवहारात् नहीं हो सकती।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि भिन्न २ स्वरों में विचारियाँ मिलाने पर भी पञ्च के स्थान में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। जैसे ध्राज भी राग के अक्षर (प्रभुय) स्वर के परिष्कार के लिए विचारियाँ अथवा तरङ्ग के तारा की छेड़ दिया जाता है, कुछ वैसा ही अभिप्राय यदि कल्लिनाय के ऊपर उद्धृत विधान का हो तब तो वह उपर्युक्त सवाद मर्यादा के भोवत क्रियाप्राप्त हो सकता है। किन्तु यदि कोई उसका यह अर्थ लगाए कि विचारियाँ में अक्षर स्वरों को पञ्चत्व्यानीय मानकर तदनुसार स्वर व्यवहार करना है तो वह अर्थ क्रियाशून्य की दृष्टि से अर्थव्यह्वार्य हो नष्ट जाएगा।

कल्लिनाय का उपर्युक्त विधान एक अर्थ दृष्टि से भी भिन्न है। एक एक जाति में चार, पाँच छ या सात तब जो अक्षर माने हैं, उन सभी की अक्षरत्व देकर उनमें विचारियाँ मिलाना और शीघ्र वादन करना भला कैसे समझा जा सकता है ? एक साथ तो अधिक से अधिक दो स्वरों में ही विचारियाँ मिलाई जा सकती हैं और उन दोनों में भी अक्षरत्व की अनिवार्य शर्त तो है ही। एक के बाद एक स्वर को अक्षर बनाकर भी तुरन्त विचारियाँ कैसे मिलाई जाएँगी ? वादन क्रिया के बीच बीच में उस प्रकार मिलाने बैठना कैसे संभव होगा ? यह कहा जा सकता है कि उस अवस्था में शुद्धा जातियों में क्रमशः अक्षर परिवर्तन से पञ्चाक्षर पाङ्कजी, गांधाराक्षर पाङ्कजी, मध्यमाक्षर पाङ्कजी, धैवताक्षर पाङ्कजी—या शुद्धा जातियों के शुद्ध-विकृत भेदा को एक के बाद एक लिया जा सकता है। यानी एक समय पर एक ही स्वर को अक्षरत्व देकर भी वादन किया जा सकता है। किन्तु, ससर्गवा विद्वता जातियों में एकाधिक जातियों का संसर्ग एक साथ कैसे दिवाया जाएगा ? जातियों के समवायी रूपों का निर्माण इस विधि में कैसे किया जा गा ?

कल्लिनाय का ऊपर उद्धृत रहस्योद्घाटन इन सब प्रश्नों का जनक है, जिनके समाधान के बिना यह विधान क्रिया में प्राक्त नहीं हो सकता। गुणितन ऊपर उल्लिखित दृष्टियों से स्वयं इस विधान की शायता जांच सकते हैं और निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

गान्धारी

मतग

तत्र गान्धार्या गान्धारपञ्चममध्यमपञ्चमनिपादा इहा त एवाशा । पञ्चस्वरपरस्वार याखपरस्तनपरो वा मद्र । अक्षरमहीन पाङ्कवम्, अक्षरमधेयतहीनमौदुनितम् । पूर्णवित्याया मूपमवैकल्योरत्वात् शेषाणा बहुल्यम् । स्वरजाडित्याद् गान्धारो न्यास । पञ्चममध्यमावपन्यासौ धैवतवर्णयोः सङ्गतिः । तद्यथा—गान्धारी यदा सन्पूर्णा गीयते तदा मध्यागिा इति गायन्ति इति प्रयोग (गि ? ग) स्यात् । यदा अक्ष (प) गहीना गीयते अक्षरप्रवेशान (?) मध्यागिा इति प्रयोग स्यात् । यदा औदुक्ता गीयते तदा उत्तर (स्वर ?) स्वरप्रवेशे भागागा इति प्रयोग स्यात् गायन्ति इति प्रयोग कदाचिदिति न स्यात् । दशरिभक्तमस्या

शाङ्गदेश

अथ गान्धारी

पञ्चाशा रिषवज्या स्युर्गायानां संगति पुन ।
न्याशाशाभ्या तदप्येषा धैवताह्वयम् अनेत् ॥६७॥
रितोपरिधनोराभ्या पाङ्कवौदुक्ते क्रमात् ।
पञ्चम पान्द्रेषी निसमध्यमपञ्चमा ॥६८॥
अंशाडिपत्वौदुक्ति कता पोटश कीर्तिता ।
मूर्च्छना धैवतादि स्यात्तात्पर्यपुनो मत ॥६९॥
विनियोगो ध्रुवागतो सुवीर्यप्राणो भवेत् ।

अस्या गान्धार्या गान्धारो न्यास । पञ्चमपञ्चमा गान्धारी । गान्धाराक्षरमधेयैरावन्त्या हृष्यन्ते । अस्या

एकदशशकाः श्रुदा विकृताः पूर्णं पञ्चपञ्चारः पाठ्या प्रस्तारः—

भीडुवित एक. मूर्च्छना घैवतादि. चञ्चलुटस्ताल. एककलविधः
चित्रभागं मागधी द्विकले. वातिके सम्भाविता चतुष्कले दक्षिणे
पृथुला रस. वक्ष्य. मात्रा दक्षिणे वातिके चित्रे मन्त्रा
ध्रुवागान् तुलीयप्रेक्षणने विनियोगः ।

२. गाघारी
१. - गा गा सा नी सा गा गा गा
ए तं
२. गा गम पा पा घम मा निघ निसं
र ज नि व धू मु ख
३. निघ पोन मा मपरि गा गा गा गा
वि भ्र म दं
४. गा गम पा पा घम मा निघ निसं
नि शा म य वररो ह
५. निघ पनि मा मपरि गा, गा, गा सा
त वः सु-ख वि ला त्त
६. गा सा गा गा गा गम गा गा
व पु क्षा ह म म-ल
७. गा गम पा पा घम मा निघ निसं
मृ दु कि र ण
८. निघ पनि मा मपरि गा गा गा गा
म मृ त म वं
९. री गा मा घम री गा सा सा
र ज ल गि रि शि ख र
१०. नी नी नी नी नी नी नी नी
म गि श क ल श ख
११. गा गम पा पा घम मा निघ निसं
व र यु व ति दं त
१२. निघ पनि मा मपरि गा गा गा गा
पं क्ति नि भं
१३. नी नी पा नी गा मा गा सा
प्र ण मा मि प्र ण य
१४. गा सा गा गा गा गम गा गा
र नि व ल ह र व तु
१५. गा पा मा मा निघ निर्मं निघ पनि
दं
१६. मा परिग गा गा गा गा गा गा
श शि भं

गायारो में भी पाठ्जी के सदृश धैयतादि मूर्च्छना ही नहीं है। जो उलमनों और प्ररन हम पाठ्जी के प्रवरण में व्यक्त कर चापे हैं वही गायारो में भी लागू होते हैं।

अब हम संसर्गा जातियो में से सर्वप्रथम पड्जमधीयमा जाति को ले लें। पड्जमधीयमा में सप्तस्वर प्रश्न श्रंश हैं और पड्जमधीयमा न्याता हैं। इसमें पाठ्जी और मध्यमा जाति का संसर्ग है। यह जाति संसर्गाजा त्रित्वा जातिशः सर्वरसाश्रया नहीं गई है क्योंकि सभी स्वरों को इसमें संशत प्राप्त है। जब जो स्वर श्रंशः पाएगा, उसी स्वर के अपने रस के अनुसार जाति की रस-निपत्ति होगी, ऐसा शास्त्र-बचन है। यहाँ भी हम शास्त्र-देन और मर्तंग के दिए हुए जाति-लक्षणों के साथ साथ मर्तंगोक्त प्रस्तार और 'रत्नाचरोक्त' जाति-गोत भी दे रहे हैं।

पड्जमधीयमा

मर्तंग

शास्त्र-देन

(पट् ? श्रंश) सप्त स्वरः पड्जमधीयमाया भिषथ ते ॥
 सङ्गच्छते निरुलोऽश्या (गा ? झा) हते वा (नि ? दि) ता विना ।
 निलोपे निगलोपे च पाठ्जीवदुविते मते ॥ ५३ ॥
 पाठ्जीवदुवयो स्याता द्विभ्रुती तु विरोधिनी ।
 गीतितालकलाऽदीनि पाठ्जीवमूर्च्छना पुनः ॥ २५ ॥
 मध्यमादिरिह शेषा पूर्ववद् विनिषोऽनम् ।
 अस्या पड्जमधीयमौ न्यासी । सप्त स्वरः अपन्यासाः ।

अथ पड्जमधीयमा

श्रंशः सप्त स्वरः पड्जमधीयमाया भिषथ ते ॥
 संगच्छन्ते निरुलोऽश्र द्गाहते वादिता विना ।
 निलोनिगलोपान्या पाठ्जीवदुविते मते ॥ ८६ ॥
 पाठ्जीवदुवयो स्याता द्विभ्रुती तु विरोधिनी ।
 गीतितालकलाऽदीनि पाठ्जीवमूर्च्छना पुनः ॥
 मध्यमादिरिह शेषा पूर्वावद्विनियोजनम् ।

प्रस्तार —

अस्या पड्जमधीयमाया पड्जमधीयमौ न्यासी ।

सप्त स्वरः अपन्यासाः । अस्याः

प्रस्तार :—

मागासग (घष) मानिपनिमा (१) ।
 मामासरो गरिनि (च) पघापा (२) ।
 मागारीया मामासा (३) ।
 पागधपरिगिरिगिरिगसवसया । रिगिरिगसासा ।
 सामारिगिरि (५) (?) ।
 निषधरीमम मामामामा (६) ।
 मानाधगमम पपधपनिमग (७) ।
 घाधपरिगम गारिगसप्तमग (८) ।
 मगाधनिषम धरधमपापा (९) ।
 मामगमामा पधधमगमग (१०) ।
 धगधपरिगिरिगिरिगसधता (११) ।
 निरसरिमगमामामामा पड्जमधीयमा । य ॥

१०. पड्जमधीयमा

- १ मा गा सग पा धा मा निष निम
र ज नि व धू मु ख
२. मां मां सो रिगं मेगं निष पय पा
बि ला स लो च
३. मा गा री गा मा मा सा छा
नं
४. मा मगम गा मा निष पध पम गमम
प्र वि क सि त कु धु द
५. धा पध परि रिग मग रिग सधस सा
द ल के न रं नि
६. निष सा री मगम मा मा गा धा
ध

७. मां मा मंगंम मंध धंपं पंधं पंमं गंमंगी
या मि ज न न य न
८. धा पध परि रिग मग रिग सधस सा
हृ ट या मि मं दि
९. मा मा धनि धस धप भप पा पा
नं
१०. मा मांम मा निध पंध पमंगं गा मा
प्र ण मा मि दे य
११. धा पध परि रिग मग रिग सधस सा
भृ मु दा धि वा सि
१२. निध सा री मगम मा मा मा मा
नं

इस गीत की और प्रस्तार को गा बजा कर देखा जाए तो स्पष्ट हो जाएगा कि सप्तस्वरो का अंशत्व, ग्रहत्व, अपन्यासग्य, पड्ज, मध्यम का न्यस्तत्व एवं पाड्जो व मध्यमा जाति का संयोग—ये सब पड्जमध्या के लक्षण जो उसके स्वरूप को निष्पन्न करनेवाले हैं, इस प्रस्तार गीत में प्रकट नहीं होते। इस दुर्बोध रहस्य का उद्घाटन न तो ग्रन्थकार के शब्दा में उपलब्ध है और न टीकाकारों की टीका में ही कहीं यह दर्शन होता है कि इस जाति को सर्वरसाश्रया जो कहा गया है तदनुसार उसमें भिन्न २ रसों का आविर्भाव कहाँ, किस प्रकार होता है।

पड्जमध्या में पड्जग्राम की पाड्जो और मध्यमग्राम की मध्यमा इन दो जातियाँ का जो समवाय बताया गया है, उस समवाय का सम्यक् दर्शन इस प्रस्तार गीत में किस प्रकार किया जाए अथवा के यचना में इस समस्या को मुसद्धाने के लिए कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। अतएव इस प्रसंग में आज के कुछ सम्मिथ रागों की धोर ध्यान जाना स्वाभाविक है। तदनुसार एक उदाहरण यहाँ अत्रासंगिक नहीं होगा।

एक अमेरिकन विद्यार्थी (डॉ० हैरल्ड पावर्स) जो कर्णाटकीय संगीत का विधिवत् अध्ययन किए हुए थे, भारतीय (हिन्दुस्तानी) संगीत की विशिष्ट राग-मढति में प्रवेश पाने के हेतु से हमारे पास आकर रहे थे। वे राग बसन्त-वहार की रचना को सुनकर सुरन्त यह पहचान गये थे कि उसमें नाम के अनुसार भिन्न २ दो रागों का सम्मिश्रण है। इतना ही नहीं पड्ज, मध्यम और पचम ये तीन स्वर दोनों रागों के साथ स्थल हैं, जहाँ से एक राग में से दूसरे में प्रवेश किया जाता है, यह भी वे समझ गये थे। उसी रचना से यह भी उनके ध्यान में सहज आ गया था कि मिथल प्राप्त रागों (बसन्त और वहार) में ग्रहत्व, अरात्व, न्यासत्व प्राप्ति विन विन स्वरा का है। इस उदाहरण का देखते हुए यह बहना पडता है कि कुछ इसी प्रकार की स्पष्टता पड्जमध्या या अन्य किसी स्वसंज्ञा जाति के प्रस्तार में अथवा गीत में पाठक या अनुसन्धित को अपेक्षित होती है। यह आकाशा अपूर्ण रहने पर ये प्रश्न उभा के त्या बने रहते हैं कि पड्जमध्या जाति के दिए हुए गीत में, प्रस्तार में, पड्जमध्या के अंतर्गत दो जातियाँ का ससर्ग, सप्तस्वरो का अंशत्व, ग्रहत्व, 'सा-म' का न्यासत्व, और सर्वरसत्व क्या तक स्फुट होता है? ये प्रश्न निरन्तर ही रहते हैं, यह हम ऊपर कह आये हैं। जिन्हे प्रथम अनुभूति पानी हो वे इस गीत को गा बजा कर देख लें।

गान्धारोदीच्यया

मतम्

शाङ्गदेव

अथ गान्धारोदीच्यया

गान्धारोदीच्यया तु द्वावशौ पञ्जमध्यमी ॥२५॥
 रिक्तोपात् पाडव नैव पूर्णैर्वेऽ (शोतरात्मना ? शोतराल्पता) ।
 अल्पा नियमगाधारा पाडवने प्रकीर्तिता ॥२५६॥
 रिचयो स (गमिजे ? इतिवै) या धैवतादिश्च मूच्छता ।
 तालरचचतुगे नैव कला षोडश कीर्तिता ॥२५७॥
 विनियोगो ध्रुवागाने चतुधप्रेतणे मत ।

अस्या म (०५) मो यास । पञ्ज धैवतावपयासो ।

प्रस्तार —

सासातामा	पाधपमामा	(१) ।
धापागमा	सासासा	(२) ।
धानीसासा	मामापापा	(३) ।
नीनीनीनी	नोनीनीनी	(४) ।
मामाधानिस	नीनीनीनी	(५) ।
मामामारि	गागसासा	(६) ।
गागमवारध	मायनिरापा	(७) ।
रिगसासाध	नीनीबाबा	(८) ।
(गारिगसासनि)	गारिगसासा	(९) ।
सासासाम्ना	मनिधनीनीनी	(१०) ।
धामासावारि	गागासासा	(११) ।
गासासासा	मासामारिगा	(१२) ।
गापासापा	गागासासा	(१३) ।
नीनिपापा	नीपात्पापा	(१४) ।
नीनीबापा	धापामापा	(१५) ।
धापासामा	सामासामा	(१६) ।

गाधारोदीच्ययती । म ॥

गान्धारोदीच्यया तु द्वावशौ पञ्जमध्यमी ॥२६॥
 रिक्तोपात्पाडव नैव पूर्णैर्वेऽशोतराल्पता ।
 अथा नियमगाधारा पाडवने प्रकीर्तिता ॥
 रिचयो सगतिर्नैवा धैवतादिश्च मूच्छता ।
 तालरचचतुगे नैव कला षोडश कीर्तिता ॥
 विनियोगो ध्रुवागाने चतुधप्रेतणे मत ।

अस्या गान्धारोदीच्यया मध्यमी यास । पञ्ज
 धैवतावपयासो । अस्या प्रस्तार —

११ गान्धारोदीच्यया

१	सा	सा	पा	मा	पा	ध	पा	मा
	सी							
२	धा	पा	मा	मा	सा	सा	सा	सा
	म्य							
३	धा	नी	सा	सा	मा	मा	पा	पा
	गौ	री		मु	खा			डु
४	नी	नी	नी	नी	नी	नी	नी	नी
	रु	ह	दि		व्य	नि	ल	क
५	मा	मा	धा	निय	नो	नी	नी	नी
	प	रि	डु		वि	ता		चि
६	मा	पा	मा	परिग	गा	मा	सा	सा
	त	मु	पा		द			
७	गा	मय	पा	पय	मा	धनि	पा	पा
	प्र	नि	र	सि	त	हे		म
८	री	गा	सा	सध	नी	नी	धा	धा
	क	म	ल	नि	भे			
९	गा	रिग	सा	सनि	गा	रिग	सा	सा
	अ	ति	र	चि	र	कां		ति
१०	सा	सा	सा	मा	मनि	धनि	नी	नी
	ग	ख	द		र्वे	णा		मः
११	मा	पा	मा	परिग	गा	गौ	सा	सा
	ल	नि	के		त			

१२.	गा	रा	गा	सा	गा	पा	गा	दीर्घ
	म	न	ति	ज	श	री	र	
१३	गा	गा	गा	सा	गा	गा	गा	सा
	ता			ह	न			
१४.	नी	नी	पा	धा	नी	गा	गा	गा
	प्र	ण	मा		मि	गा		रो
१५	नी	नी	धा	पा	धा	पा	मा	पा
	च	र	ण	यु	य	म	नु	प
१६.	धा	धा	सा	सा	मा	मा	मा	मा
	मं							

इस जाति के लक्षणों में निपाद का अल्प व बहने पर भी प्रस्तार में उसका विपुल प्रयोग किया गया है, तद्वत् लक्षण में कहा हुआ गान्यार का अल्पत्व भी प्रस्तार में दिखाई नहीं देता। इस जाति में पाञ्जी गाधारी धीर धैवती व मध्यमा का संयोग है और इसका धीर रोद्र रम कहा गया है। इस प्रस्तार-गीत में न तो इन चार जातियों का संयोग स्फुट होता है धीर न हो इस जाति के रस को अभिव्यक्ति होती है। प्रस्तार-गीत की षोडश कलाओं में कौन स्वर कितनी बार आना है, इसकी गणना कर के देखने पर भी इसके षट्, अश, न्यास, सप्तम और रस का अस्फुटत्व बना ही रहता है। लक्षणों में कही गई 'रि-च' सगति भी प्रस्तार में नहीं है।

कैशिकी

मतम्

कैशिक्यामुपभाषाया निवावरी (व ? य) दा तदा ।
 न्यास पञ्चम एव स्वादन्यदा (वि ? द्वि) ध्रुवी मती ॥
 अन्धे तु निगान्यासा (न्) निघयोरशयोविदु ।
 रितीपरिखलोपेन पाडवौर्ध्वते मतम् ॥२६ ॥
 रिख्यो निबबाहुत्वमशाना सङ्गतिमिय ।
 पाडवौर्ध्विते (ह ? द्वि) ह क्रमाद् पञ्चमधैवती ।
 पाड्वीवत् पञ्चाएयादि गान्यारादिस्तु । मूच्छेना ।
 पञ्चम (ओ ? प्रे) क्षणगत ध्रुवाया विनियोजनम् ॥२६५॥
 अस्या (गान्या) रपञ्चमनिपादा न्यासा ।
 रिचर्जा षट् सप्त वा स्वरा अपन्यासा ।

प्रस्तारः—

धाधनिघनि गागागा (१) ।
 पापामाधनि निघराकापा (२) ।
 धानोसासा रोरीरौरो (३) ।
 सांसासारी गामामामा (४) ।
 मधानोषा (मा) धामापा (५) ।

शाङ्गदेव

अथ कैशिकी

कैशिक्यामुपभान्येथा निगान्शौ यदा तदा ।
 न्यास पञ्चम एव स्वादन्यदा द्विध्रुवी मती ॥६५॥
 अन्धे तु निगान्यासानिघयोरशयोविदु ।
 रितीपरिखलोपेन पाडवौर्ध्विते मतम् ॥६६॥
 रिख्यो निबबाहुत्वमशाना सगतिमिय ।
 पाडवौर्ध्विते द्विष्ट क्रमात्पञ्चमधैवती ॥६७॥
 पाड्वीवत्पञ्चाएयादि गान्यारादिस्तु मूच्छेना ।
 पञ्चमप्रेक्षणगतध्रुवाया विनियोजनम् ॥६८॥
 अस्या कैशिक्या गाधारपञ्चमनिपादा न्यासा । रिचर्ज्याः
 षट् सप्त वा स्वरा अपन्यासा । अस्या ।

प्रस्तारः—

१३. कैशिकी
 १ पा धनि पा धनि गा गा गा गा
 के' ली ह ता

निगरीसाधनि रीरीरीरी (६) ।
 गारीसासा पाधामामा (७) ।
 गागागामा मानोपनीनो (८) ।
 गागानीनी गागागामा (९) ।
 गागानीनी पागागापा (१०) ।
 मापागामा पागामामा (११) ।
 धामागानिसानीनोगामा (१२) ।

कैशिकी । म ॥

२. पा पा मा निघ निघ पा पा पा
 पा म त तु
 ३. धा नी सां ता री री री री
 नि भ्र म वि छा सं
 ४. सा गा ना रो गा मा मा मा
 ति ल व यु त
 ५. मा धा नो धा मा धा गा पा
 गु धो ध्वं वा ल
 ६. गा री सा धनि री री री री
 सो म नि भ
 ७. गा री सा सा धा धा मा मा
 मु ख व म ल
 ८. गा गा गा मा मा निघनि नी नी
 भ्र स म हा ट
 ९. गा गा नी नी गा गा गा गा
 व स रो जं
 १०. गां गां नी नो' निघं पां पां पां
 हृ दि मु ल व
 ११. मां पां मां पां पां पां मां मां
 प्र ण मा मि लो च
 १२. सां मां गां निघंनि नो' नो' मां गां
 न वि रो पं

इसमें पाङ्गी, गान्धारो, मध्यमा, पचमो और नैपादी इन पांच जातियों का संयोग बड़ा गया है, गान्धार, टिप्पणी
 निपाद और पचम न्यास हैं, और श्रुपम यो छोड़ कर 'सगमपधनि' में छ स्वर ग्रह-अंश हैं और यही अन्यास भी हैं ।

इसके गीत प्रस्तार को देखते हुए प्रत्यक्ष गा बजा कर यह अनुभव लिया जा सकता है कि उसमें जाति के किन किन लक्षणों का समन्वय या सामञ्जस्य प्राप्त होता है। साथ ही विवरणोंक अत्यन्त-गहृत्व के नियम का भी इसमें पालन नहीं हुआ है। इन प्रकार देखने से यह स्पष्ट होने में कोई प्रत्येक नहीं रहेगा कि इस प्रस्तार में भी अन्य जाति प्रस्तार के सदृश वादित पल सिद्ध नहीं होती ।

उभयप्राय की दो शुद्धा तथा तीन संवर्गजा जातियों के उदाहरण हमने ऊपर देते : यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि मात्वात्मगत स्थायी या संचारी भावों की अभिव्यक्ति में इन जाति प्रस्तारों द्वारा कैसी व कितनी सहायता उपलब्ध होती होगी, संवर्गजा जातियों में जिन जिन जातियों का संघर्ष बड़ा गया है एवं जिन रसों का आविर्भाव सूचित किया गया है उन सबकी वहाँ सब सिद्ध होती है, यह सब कुछ बुद्ध-जनों के लिये हर पहलू से विचारणीय है। इस विषय पर हम अपने विचार ऊपर की टिप्पणियों में स्पष्टता से व्यक्त कर ही आए हैं ।

ऊपर दिए गए शुद्धा-विभ्रता जातियों के प्रस्तार-गीतों के उदाहरणों से यह स्पष्ट हुआ होगा कि जिन-जिन जातियों के जो-जो स्वर-प्रस्तार वर्तमान में दिए हैं, उन्हीं को अविकल बनाए रखते हुए 'रत्नाकर'कार ने उनमें गीत के शब्द बैठाने

दिए हैं अथवा इसी रूप में ये गीत उन्हें किसी परंपरा द्वारा प्राप्त हुए होंगे। इन प्रस्तार-गीतों में उन-उन जातियों का कितना और कैसा दर्शन होता है यह हम ऊपर कह आये हैं। मर्तंग ने तो प्रत्येक जाति के ग्रह, ग्रंथ और न्यास के अनुसार स्थूल मान से, अत्यल्प रूप में स्वर-प्रस्तार का एक ढाँचा प्रस्तुत किया है। उदाहरण के लिये प्रट्ट, ग्रंथ, न्यास यदि 'सा' या 'ग' है तो आरंभ में 'सा' या 'ग' का विपुल प्रयोग दिखा कर, बीच-बीच में भी उन स्वरो का बहुतरन रख कर, निवमानुसार स्वर-संगति आदि का प्रयोग करके अन्त में 'सा' या 'ग' पर ही न्याग करके दिता दिया है। शुद्धा जातियों में मद्र मे, और विकृताओं में तार में न्यास या समाप्ति दिखाई है। भरत ने तो "विकृतास्वनियमात्" कह कर यहाँ बताया है कि विकृता जातियों में यह नियम नहीं है कि न्यास मद्र में हो हो, अर्थात् मद्र में भी ही सवता है और मध्य या तार में भी हो सकता है। किन्तु मर्तंग के स्वर-प्रस्तारों में और शाङ्गदेव के गीतों में विकृता जातियों में नियम से तार में ही न्यास किया गया है; यहाँ तक कि प्रस्तार को समाप्ति तार सप्तक में मध्यम, पंचम, अथवा निषाद तक पर भी गई है। विद्वज्जन इस बात पर ध्यान दें कि इस प्रकार की गीत-समाप्ति क्रिया में वहाँ तक व्यवहार्य है। मर्तंगोक्त प्रस्तारों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि ये यथार्थ गीत में प्रयुक्त करने के लिये नहीं ही बनाए गए हैं। आज भी हम देखते हैं कि किसी भी राग के स्वर-प्रस्तार में से ठीक उसी क्रम से या उसी रूप में गीत रचना नहीं होती। इसलिये मर्तंग के इन जातिगत प्रस्तारों में शाङ्गदेव द्वारा अथवा किसी अन्य द्वारा जो गीत बिठाये गये हैं, उनमें गीत के लिये आवश्यक स्वर रचना का अभाव दिखाई देता है। गीत में स्वर-संछेद, माधुर्य, स्वरो का क्रम प्रवाह, शब्दों के अर्थों उच्चारण की व्यवस्था, यदि और शब्दार्थ का अद्भुत सम्बन्ध ये सब बातें अनिवार्य आवश्यक होती हैं, जिनका लोकोक्ति तक में स्वाभाविक रूप से वास्तव होता है। किन्तु हम देखते हैं कि इन तत्त्वों का 'रत्नाकर' के जाति-गीतों में दर्शन नहीं होता। प्रत्येक कलाकृति का मूल्यमान उसको aesthetic value या मोक्षार्थ भावना के आधार पर ही होता है। इन जाति गीतों को aesthetic value की प्रतीति इन्हें मा-बजा कर देखने से और ऊपर लिखी कसौटी पर बसने से ही सकती है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जातियों के प्रस्तार-गीतों के विषय में जो कुछ भी ऊपर कहा गया है, वह उनके गीत अंश से ही सम्बन्ध रखता है, पाठ्य अंश से नहीं। हमने उन गीतों की स्वर-रचना को ही आलोचनात्मक दृष्टि में देखा है, उनके पाठ्य-अंश मानी गीतों में प्रयुक्त देवदुति-भरक पद्यों की उक्तृता तो असंदिग्ध ही है। मर्तंगोक्त स्वर-प्रस्तारों में इन पद्यों को जड़ देने के फलस्वरूप मति-भंग, शब्दार्थ व्यवच्छेद आदि दोषों की जो सृष्टि हुई है, उसको धीरे धीरे ऊपर सनेत्र किया हो है।

ऊपर शुद्धा और ससंज्ञा विकृता जातियों के प्रस्तार-गीतों के सम्बन्ध में हमने जो कुछ टिप्पणियाँ दी, उनके अतिरिक्त इन जाति गीतों के सम्बन्ध में यह भी विचारणीय है कि यत में, देवपूजनार्थ नाट्य में, महफिल में अथवा परिवज परिवार में रसभाव-नोपगार्थ, अथवा लोकरजनार्थ इन गीतों को गाया जाय तो क्या इनमें अमीष्ट मिद्धि प्राप्त हो सनेगी? प्राचीन गौरव गाथा के मोह को त्याग कर यदि इन गीतों को गाकर देखें तो ये संगीत को आदिम अवस्था के द्योतक नहीं प्रतीत होते ह क्या? जिस काल में संगीत शास्त्र में श्रुति, स्वर, ध्रान, मूर्च्छना का इतना सूक्ष्म विरलेपण होता था, तथा नाट्य में रसभावानुकूल संगीत की रचना होती थी, उस काल का संगीत क्या इतनी आदिम अवस्था में रहा होगा? विद्वान् नही हाता, अद्धा बिचलित होगी है। अत यह संशय होना नितात स्वाभाविक है कि ये प्रस्तार-गीत उस काल के संगीत का मधुमुक्त प्रतिनिधित्व करते हैं या नहीं?

जिस काल में जाति लक्षणों का इतना पूर्ण, गहन, सूक्ष्म और विशद विवेचन हुआ, उस काल में जाति गान का इतना भविष्यत रूप भला बिचे रहा होगा? यदि प्रत्यक्ष संगीत-प्रयोग इतना सीमित ही रहा होता, तो इतने छायाओं के विवेचन का क्या प्रयोजन था?

-हम जानते हैं कि आज के लक्ष्य में एक ही राग में अनेक प्रकार की स्वर-रचना वाले गीत विभिन्न ढालों में उरलक्ष्य होते हैं; श्रीर रागो के नियमित ढाँचों में रचना का आज इतना विपुल क्षेत्र विस्तृत है, कि 'एन-एन-राग' में पचासों रचना ध्रुपद संग में, स्वात संग में, ठुगरी-ठण्णा में, भजनो में और गजल-गव्याली में नियमान होते हुए भी आज तक अनगिन रचनाएँ होती रही हैं, हो रही हैं और भविष्य में भी होती रहेंगी। एन ही नियमित ढाँच में से इतनी विविध रचना के क्षेत्र को उपलब्ध, यही तो भारतीय राग पद्धति की विशेषता है। भारतीय जाति, जो कि इस राग-पद्धति का मूल-रूप है, उतना स्वरूप क्या इतना संशुचित, निर्जोष, श्रीर गतिहीन रहा होगा कि शताब्दियों तक 'रत्नाकरोक्त' एक-एक गीत को ही एन-एक जानि का प्रतिनिधि मममा जाता रहा ? एतद् है कि ऐसी 'निर्जोषता भरत या मतंग को अभिप्रेत नहीं हो रही होगी। संभवतः इष्टोनिद् उन्होंने उदाहरण-स्वरूप गीत देने की आवश्यकता नहीं समझी होगी। साथ ही यह भी निवारणीय है कि जिस जाति मान का स्वरूप भरत ने इतना व्यापक बनाया है, कि यहाँ तक यह डाला है कि "मन्त्रिन्द्रगीयते लोके तत्सर्वं जातिषु स्थितम्"—उम जातिगान का इतना संशुचित क्षेत्र कैसे रहा होगा ?

शाङ्ग-द्वयोक्त जातिगीतों का वेदसादर्य

'रत्नाकर'कार पं० शाङ्गदेव ने इन जातियों को सामवेदसंभृत बनाया है, 'तं भवत्साटादि' पदों की बहुलक, कह कर उन्हें अपरिवर्तनीय ठहराया है, उनके मध्यायध प्रयोग को महत् पुंण्य जनक बनाया है और उनके अनियमित प्रयोग को महत् पातक-रूप कहा है। इस सम्बन्ध में उनके अपने शब्द और बह्निनाथ की टीका निम्नोक्त है :—

ब्रह्मप्रोक्तपदे. सम्यक्प्राप्तुता. शंकरस्तुती ॥ १३३ ॥

अपि ब्रह्महृणं पापाज्जातय. प्रपुनन्त्यम्. ।

श्रुत्वा यज्ञैषि सामानि क्रियन्ते नान्यथा यथा ॥ १३४ ॥

तथा सामसमुद्भूता जातयो वेदसमिता. ।

(सं० २०:१ ७. १३३-३४)

प्राक्पूर्वं शंकरस्तुती शंकरस्तुति विपरीतवृत्त्य ब्रह्मप्रोक्तपदे, ब्रह्मणा चतुर्भुलेण प्रोक्तप्रियते. पदे: 'तं भवत्साटादि' इत्यादिभिर्गोत्रविरवा सम्यग्भूतातिरेवेणोक्ता गीताब्देमू चाडग्गादयो जातयो ब्रह्महृणमपि ब्रह्मघ्नमपि पुर्यं पापाद् ब्रह्महृत्याह्णान्मोषवित्वा प्रपुनन्ति पूतं कुर्वन्ति। अनेन सम्यग्जातिगानस्य महापातकप्राप्यधिसत्त्वमुक्तं भवति। एवं सामर्थ्यं जानीनामुक्तनियममुक्तानामुगादिमन्सादर्यहेनुत्वेनाभिर्संघाय तासामनियमप्रयोगं निषेवति ऋच इति। ऋचो यज्ञैषि सामानि यथाज्यथा न क्रियन्ते इत्यर्थोऽप्यारणादिविपरीत्वेन न प्रपुनन्त्ये, तथा सामसमुद्भूताः सामान्य समुत्पन्ना अतएव वेदसमिता वेदसदृशा जातयोऽन्यथा न क्रियन्ते; स्वररचनालादिविपरीत्वेन न प्रयोक्तव्या इत्यर्थः। एतेन विपरीतप्रयोगे प्रत्ययायः सूचितो भवति ॥

(बह्निनाथ की 'वत्तानिधि' टीका)

ऊपर के उदाहरणों का तात्पर्य यह है कि ये जातियाँ जब 'ब्रह्मप्रोक्त' पदों के माध्यम से शंकर स्तुति में प्रयुक्त होती हैं, तब वे ब्रह्महत्या तक वे पापी को पुनीत (वापसुक्त) बना देती हैं। जिस प्रकार ऋच, साम, यजु—इस वेदत्रयी के मन्त्रों को अन्वया नहीं करावते अर्थात् उनके उच्चारण और स्वर में जोई परिवर्तन नहीं कर सकते, उसी प्रकार 'गाम से समुद्भूत इन जातियों को भी सममना चाहिए, क्योंकि वे वेदसंमित हैं, अर्थात् वेदसदृश हैं। इन्हें स्वर, पद, तापादि के विपरीत से प्रयुक्त नहीं करना चाहिए। विपरीत (नियम विरुद्ध) प्रयोग से प्रत्ययाय होने की संभावना है।

हम जानते ही हैं कि 'संगीत रत्नाकर' मुनिग्रन्थ नहीं है। जिन मुनियों के ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनमें से किसी में 'ब्रह्मप्रोक्त' पदों की परंपरा का उल्लेख नहीं है। इसलिए पं० शाङ्गदेव के इन विधानों के सामर्थ्य में

मुद्य'एते'प्रप्र उपस्थित होते हैं जो नितान्त विचारणीय हैं। इस संबन्ध में अपनी ओर से मुद्य न वह कर केवल उन प्रश्नों को ही हम विद्वान् के सम्मुख रख देना समुचित समझते हैं। वे शीर-शीर विवेक से स्वयं उनके उत्तर पाकर सत्यानृत का निर्णय कर लें।

'रत्नाकर' में जाति गान के रूप में उल्लिखित पदों को 'ब्रह्मप्रोक्त' कहा गया है। यदि वे पद शाङ्गदेवप्रोक्त नहीं हैं, तो इन पदों को उरत्तान्य उन्हें कहा से हुई ? इन पदों के निर्माता न सही, 'द्रष्टा' कौन थे ? मलय मुनि के 'बृहदेत्यों' में इन जातियों के जो स्वर प्रस्तार दिए गए हैं, कृपण्डे उन्हीं स्वर-प्रस्तारों के नीचे इन पदों को रखा गया है। क्या मता को, शाङ्गदेव के बहुत पूर्ववर्ती होने पर भी, वे ब्रह्मप्रोक्त पद उपलब्ध नहीं थे ?

'सगौन रत्नाकर' में सात शुद्धा और एकादश ससर्गजा—यों मिलाकर कुल अष्टादश जातियों में केवल एक-एक पद ही दिया है। 'हम जानते हैं कि भरत ने प्रत्येक शुद्धा जाति के प्रह-अंश, भग्न्यास-परिवर्तन से एवं संपूर्णत्व-भंग से विपुल संशयक विवृत भेद बनाने का विधान दिया है। 'रत्नाकर' के टीकाकारों ने भी कहा है कि प्रह-अंश-परिवर्तन से शुद्धा जातियों के विवृत भेद बना लिए जाएं। सामवेद-संभूत तथा ब्रह्मप्रोक्त इन अष्टादश जाति-गीतों में ही यदि जातिगान सीमित हो तो फिर इन विवृत भेदों को कहाँ स्थान मिलेगा ? इनकी रचना कौन करेगा ? नाट्य-प्रयोग में ऐसी अनेक रचनाएँ क्या नहीं हुई होगी ? यदि ये विवृत भेद प्रयोगगत नहीं थे तो क्या नाट्यान्तर्गत स्वायत्त, संचारी भाषा की अभिव्यक्ति तथा नवरसादि की सिद्धि इन अष्टादश ब्रह्मप्रोक्त गीतों में ही परिपूर्ण होती थी ?

'शुद्धा' या ससर्गजा जातियों में क्या एक-एक ही गीत-रचना थी ? क्या इनमें उल्लिखित प्रह अंशदि नियमों के अन्तर्गत अन्य रचना को कोई स्थान नहीं था ? अथवा अन्य रचना करने का निषेध था ? क्या शाङ्गदेव के काल में जाति गान का ऐसा ही स्वरूप रहा होगा ? यदि ऐसा ही हो तो भरत का वचन "अर्कचिद्गीयते लोके तत्सर्वं जातिषु स्वितम्" कैसे सार्थक समझा जाए ?

हम स्वानुभव से जानते हैं कि कुछ अपनी परंपरा को अक्षुण्ण रखने के लिए अपने विद्यालयों से आप्रहपूर्वक प्रवचनोत्पत्त स्वरालोकों का यथायथ परिपालन कराते आए हैं। प्रमादवश, अनभ्यासवश, विस्मृतिवश, अनवधानवश अथवा भ्रमनावश यदि विद्यार्थी से उसमें किंचित् भी परिवर्तन का अपराध हो जाए तो वह अस्वयं माना जाता रहा है। क्या इन गीतों को अपरिवर्तनीय कहने के पीछे कोई ऐसी ही भावना तो सतिहित नहीं रही होगी ?

शाङ्गदेव द्वारा इन पदों को वेद की भांति अपरिवर्तनशील बहने का क्या तात्पर्य है ? इन्हें अपरिवर्तनशील क्यों स्वीकार किया जाए ? हम जानते हैं कि वेद के मन्त्रों या ऋचाओं में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों के किंचित् परिवर्तन मात्र से अर्थ के अर्थ ही हो जाते हैं। पातञ्जल महाभाष्य का नन्मोद्धत वचन प्रसिद्ध ही है :—

दुष्ट शब्द स्वरतो वर्णतो वा, मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वजो यजमान हिनस्ति, यथेद्रशशु स्वरतोऽपराधात् ॥

(पातञ्जल महाभाष्य, पल्पशाहिक १-१-१)

अर्थात् स्वर सच ही अथवा वर्णसंबन्धी दोष से दुष्ट (दुष्ट) शब्द जब मिथ्या (अयथार्थ) रूप से प्रयुक्त होता है, तब वह अपने (वास्तव) अर्थ को नहीं वह सकता अर्थात् उससे यथार्थ बोध नहीं होता। ऐसा 'दुष्ट' (दोषयुक्त) शब्द वाग्वज्य (वाणी-रूपी वज्य) बन कर यजमान (प्रयोक्ता) का ही हानन करता है। जिस प्रकार स्वर के अपराध से 'इद्रशशु' ने किया था।

'इद्रशशु' की कथा इस श्लोक के भाष्य में इस प्रकार दी है :—

पुरा विस विश्वरूपो त्वष्टु पुने इद्रेण हते षुणितस्वयष्टा इद्रस्य हन्तारं हित्तिवानिश्ये । इद्रस्याभिपारो
 युनेगारुगतत 'इद्रशुबुर्दंस्व' इति मत्र ऊहित । तने द्रम्य शर्मयिता शतयिता या भव—इति क्रियाशब्दीय शशुबुद
 आशिनो न तु इद्रिाभ, ताराभयने हि वट्टुश्रीहित पुनयारमभिद । तनेत्रागित्तव सिद्धे सति 'इद्रम्य शशुबुद, इत्यशायै
 प्रतिपाद्येभ्तोदाते प्रमोदथ्य आशुदात् श्रित्तना प्रयुत् इति—अर्पातरामिथादिद्र एव वृत्रम्य शतयिता संपत्त, ।

शतपथ ब्राह्मण मे इतो वषा की दा शब्दो मे वहा है —

अथ मद्रुनीद्रिद्रशुबुर्दंस्वत्ति । तन्मांडु हैतमिद्र एव अपानाप मद्रु शशुबुदस्वत्ति शशुबुर्दंस्वत्ति शशुबुद ह
 स एवे द्रमहिन्यत्त ॥

(शतपथ ब्राह्मण १. ६ ३. १०)

इत उदरणा वा सातयं यह है कि इद्र न जब त्पटा मे विश्वरूप नामक पुन की हत्या मर दी तब त्पटा ने कुणित
 हाकर 'इद्रशुबुर्दंस्व' इस मत्र के साथ यज्ञ किया और जनना प्रयोजन महा था कि इद्र के शशु की बुद्धि हो अपत्ति उक्त
 मत्र से वे इद्र के शशु की उत्पत्ति की कामना करते थे । किन्तु 'इद्र का शशु' इस प्रकार का अर्थ तत्पुरुष समास से ही
 निरन सतता था और इसी लिए 'इद्र शशु' को अनीदात् रपता अचरना था, किन्तु श्रुति ने 'मात्पुदात् (आदि
 में उदात्) प्रयोग किया । उसने तत्पुरुष के स्थान पर वट्टुश्रीहि समाम का अर्थ हो गया 'इद्र शशु है जिसका' । इस
 स्वर अपराध के कारण इद्र का शशु ता उत्पन्न नहीं हुआ अपितु यज्ञ से जिस वृषाभर की उत्पत्ति हुई उस इद्र ने हा मार
 दिया । स्वर प्रयोग सम्भव हुआ होता तो 'इद्र का शशु उत्पन्न हा (वटे)' ऐसा अर्थ निर्गत होना और यन से उत्पन्न
 वृष ने इद्र को मार दिया होता ।

स्वर सम्बन्धी इस बडोर नियम-पालन की व्यवस्था के अतिरिक्त, हमें स्मरण है कि बाल्यरान में सहित के
 अध्ययन के समय केवल स्वर ही नहा, अपितु वेदमन्त्रपाठ के समय श्वात की प्रक्रिया पर भी प्रोपेणित संतुलन रखन का
 गुर की ओर से आग्रह रहता था । जहाँ-तहाँ स्वच्छापूरवक श्वात सेना और छाडना आग्रह नहीं था, यकीन श्वासीच्छ्वास
 प्रक्रिया अतिपमित होने से भी वेदार्थ में परिवर्तन होने का भय माना जाता था । हा सब कारणों से वेदमन्त्रों का शब्दाकार,
 स्वर और श्वात प्रक्रिया इन सबका नियमन निगान्त आशुदक मानकर उनके विचरीत प्रयोग में विचरीत फल का दर्शन
 करना उस प्रकार के प्रयोग की पापरूप समझना और उनके लिए प्रापचित का विधान देना इनमें कोई अनौचित्य नहीं
 दिखाई देता । किन्तु इन जातिगत पदों में, उनके स्वरा में या पदा के स्वर समोको को आरिबतनशील मानन में क्या
 उसी प्रकार अर्थ का अर्थ हीन की समावता है ? इन प्रस्तार-भीना में पदों का जहाँ-जहाँ यति भग हुआ है, यह क्या
 दोषाई नहीं है ? जातिगत के अत्यंत इन पदों को सनातन, अपीस्वेष या अनादि तो नहा वह सवते । एसी अवस्था
 में शाङ्गदेव का यह विधान कि "ऋक, यजु साम की अति इन जातिगत पदों की भी अयथा नहीं किया जाना चाहिए"
 किस रूप में माना जाता जाय ?

'रत्नाकर' के परवर्ती अक्षरकारों में रामामाय (स्वरमेतानानिधि), शुभंकर (संगीतदामोदर), श्रीकण्ठ (रत्नोमुदी)
 सोमनाथ (रागविबोध), धर्मेबन (गगीतपारिजात), धीनिवास (रागतस्वविबोध),
 शाङ्ग देव के परवर्ती हृदयनारायणदेव (हृदयकौतुक), व्यंकटमसी (चतुदण्डिकशाशिका), दामोदर पण्डित
 द्रव्यकार (संगीत दर्पण) लोचन (रागतरंगिणी), पुण्डरीक विठ्ठल (सद्भाग्यशेखर), रागमाला,
 रागमञ्जरी) आदि ने जाति प्रकरण को अपने ग्रन्थों में समानिष्ट नहीं किया है ।

जिन जिन अक्षरकारों ने 'जाति' या उल्लेख आवश्यक समझा है वे हैं—नायदेव (भारतभाष्य), * कुम्भा
 राणा (संगीतराज) रघुनाथ भूष (संगीत सुधा) और तुलनापिन (संगीतसारामृत) । इन सब अक्षरकारों ने जाति

* नायदेव 'रत्नाकर' के पूर्ववर्ती, परवर्ती या समकालीन हैं, इसका निर्णय अभी नहीं हो सका है ।

निरूपण में प्रायः शाङ्गदेव का ही अनुसरण किया है। उहां जातियां के सङ्ग, उनकी मूर्धनाभार 'स भवनत्तादि' प्रप्रोक्त' पर 'रत्नाकर' में से प्रायः जहां के व्यां उतार लिये हैं। केवल नायदेव इसके अग्रवाद हैं और उनकी विरोधता यही है कि उन्होंने जातिभा की मूर्च्छना नहीं की है। जातियों की मूर्च्छनाभा पा उल्लेख सर्वप्रथम मतग में मिलता है और उसी का अविश्लेष अनुसरण शाङ्गदेव ने किया है, यह हम देख ही चुके हैं। ऐसी अवस्था में शाङ्गदेव के बाल के समीपवर्ती नायदेव का जातिभा की मूर्च्छना न करना काफी महत्त्व रखता है। इसी यह सचित मिलता है कि समस्त इस सम्बन्ध में मतग से भिन्न कोई विचारधारा भी प्रचलित रही होगी।

शाङ्गदेव के परवर्ती संगीत-ग्रन्था में जाति प्रवरण की उपर्युक्त चर्चा से यह निष्कर्ष निश्चयतः है कि 'रत्नाकर' के पश्चात् इस विषय का विकास समाप्तप्राय हो गया था और हमने सम्बंधित विचारधारा मरुद्ध हो गई थी। जाति की रागा की जननी के रूप में जा प्रतिष्ठा प्राप्त थी, वह लुप्त हो गई और रागा की जाति से विच्छिन्न बरके स्वतंत्र रूप से निरूपित किया जाने लगा। इसीलिए मध्ययुग के ग्रन्थकारों ने या तो जाति विषय को अछूता ही छोड़ दिया और या फिर गतानुगतिक भाव से 'रत्नाकर' का अनुकरण करने में ही सन्तोष मान लिया।

उपसंहार

'संगीतरत्नाकर' के पश्चात् मध्ययुग से लेकर आधुनिक युग तक जिन ग्रन्थकारों ने 'जाति'—विषय का अपने ग्रन्थों में समावेश अथवा उल्लेखमान किया है, वे दो श्रेणियों में बाँट जा सकते हैं—एक वे जिन्होंने केवल गतानुगतिक भाव से संगीत रत्नाकर अथवा अन्य प्राचीन ग्रन्थकारों के प्रायः अनुरूप उद्धरण अथवा भाषान्तर प्रस्तुत किये हैं और दूसरे वे जिन्होंने इस विषय को नटप्रायः 'पुराण तथा स्मृतिकरण के अयोग्य' कह कर इसका अध्ययन, विन्तन, मनन अनावश्यक ठहराया है। पहली श्रेणी में प्राचीन शास्त्रों के प्रति 'लौकिक' श्रद्धा है, किन्तु द्वितीय श्रेणी में उसका अभाव है। हमारा यत्न इन दोनों से भिन्न श्रेणी का है जिसमें प्राचीन शास्त्रोक्त जाति-व्यवस्था के प्रति राष्ट्रीय श्रद्धा रखते हुए विद्यार्थियों तथा जिज्ञासुओं में वही भाव प्रसारित करने का उद्देश्य निहित है। भरत, मतग अथवा शाङ्गदेव के जाति प्रतिपादन को उद्धृत कर देना अथवा उसका भाषांतर मात्र प्रस्तुत करना गुणम मात्र अग्रव्य है किन्तु उससे उपर्युक्त उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। अब हम उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त जो यत्न किये गए, जो कुछ जैसा भी बन पड़ा, वही यहाँ जाति प्रवरण में प्रस्तुत किया गया है।

'इतिहास' कह कर हमने अपने यत्न की यही 'इति' कहा की है। हम मानते हैं कि इस विषय में बहुत सी अन्य बातें विचारणीय हैं। उदाहरणार्थ आंध्री, रक्तगांधारी ('गांधार' देश से संबंधित ?) गांधारोदीच्यवा, पञ्जोदीच्यवा, मध्यमोदीच्यवा या 'उदीच्यवा' का उत्तरदिशा से संबंध ? इस प्रकार कुछ जाति-नाम विभिन्न देश प्रदेशों से संबंध रखते हैं। इसका क्या तात्पर्य रहा होगा ? यह एक विचारणीय प्रश्न है, जिस पर विचार करना अभी शेष है। तद्वत् 'वैशिकी' अथवा 'पंडजवैशिकी' इन जाति नामों में 'वैशिक' का समावेश क्या उन उन जातियों में वैशिक स्वर-साधारण का प्रयोग सूचित करता है ? यह और ऐसे कई एवं अर्थ प्रश्न विस्तार रूप से विचारणीय हैं। हमारा दृढ़ विश्वास है कि भरत का 'यत्किञ्चिदुच्यते लोके तत्सर्वं जानिषु स्थितम्' यह वचन आज भी हर दृष्टि से, हर पढ़ने से क्रियागत रूप से पूणतया सार्थक हो सकता है। जिस प्रकार भारतीय प्रायः व्यवस्था के साथ आज के शुद्ध या प्राकृतिक ग्राम का सम्बंध स्थापित हो सका है, उसी प्रकार भारतीय जाति व्यवस्था के साथ आज की राग-मदति का अविच्छिन्न सम्बंध भी अवश्य स्थापित हो सकेगा। इस विषय पर अधिक विचार प्रत्युत भारतीय की द्वितीय बीणा (रागशास्त्र) में किया जाएगा।

राग और राग वर्गीकरण

भरत मतग-शाङ्गदेवोक्त जाति विषय को हमने विभिन्न दृष्टिकोण से देखा। अब 'राग' और 'राग-वर्गीकरण' के विषय पर विचार करना प्रसन्न है।

भरत-काल में रागों का अस्तित्व था या नहीं, इस विषय पर हम पृ० २-५ पर खर्चा कर चुके हैं। किन्तु यहाँ 'राग' के इतिहास पर कुछ विशद विचार अपेक्षित हैं। भरत धीर मर्तग के अनिर्दिष्ट इस प्रयोग में नारद का नाम उल्लेखनीय है। नारद-श्रुति नारदीय शिक्षा के उस उल्लेख पर यहाँ हमें किये विचार करना है जिसमें प्राप्त संग्रामों को अधिवाश सेसक्तों ने 'मामराग' के साथ संबद्ध किया है। ये सप्त संग्राम निम्नलिखित श्लोकों में प्राप्त होते हैं :—

श्रुपमोस्थितः पद्भ्रततो पैयतसहितश्च पञ्चमी यत्र ।
 निगतति मध्यमरागे (मामि ?) तन्निपादे पाठ्यं विद्यात् ॥
 यदि पञ्चमो विरमते गान्धारधान्तरस्वरौ भवति ।
 श्रुपमो निपादसहितस्ते पञ्चममीदृशं विद्यात् ॥
 गान्धारस्याधिपस्थेन नियारस्य गतागती ।
 पैवनस्य च दीर्घत्वात् मध्यमग्राम उच्यते ॥
 ईपत्सृष्टो निपादस्तु गान्धारचाधिपौ भवेत् ।
 पैयतः कम्पितो यत्र पद्भ्रग्रामं तु निर्दिशेत् ॥
 अन्तरस्वरसंयुक्ता चावलिर्ग्रामं दृश्यते ।
 तं तु साधारितं विद्यात् पञ्चमस्य तु कैशिकम् ॥
 कैशिकं सावयित्वा तु स्वरीः सर्वैः समन्ततः ।
 यस्मात्तु मध्यमे ग्यासस्तस्मात् कैशिकमध्यमः ॥
 कारलिर्दृश्यते यत्र प्राधान्यं पञ्चमस्य तु ।
 करयपः कैशिकं प्राह मध्यमग्रामसंभवम् ॥

(नारदीय शिक्षा)

इन श्लोकों में से केवल प्रथम श्लोक मे ही 'मध्यमरागे' इस पद में 'राग' शब्द का प्रयोग मिलता है। किन्तु, यह पद भी सन्देहास्पद है, क्योंकि 'तन्निपाद पाठ्यं विद्यात्' (उत्ते निपाद-पाठ्य समभन्ता चाहि) इस वाक्यांश से स्पष्ट है कि नारद मुनि की अभिप्रेत संग्राम या निरूप्य पद 'निपाद-पाठ्य' है, न कि 'मध्यमराग'। इसीलिए हमने 'मध्यमरागे' के स्थान पर 'मध्यमग्रामे' पाठ प्रस्तुत किया है। नारदीय शिक्षा के अन्य किसी श्लोक में या अन्य किसी भी पूर्वानुसृत संदर्भ में 'राग' का उल्लेख नहीं है। फिर भी अनेक आधुनिक लेखकों ने इस संग्रामों को 'मामराग' मान लिया है, क्योंकि इनका भरत के ध्रुवा-प्रकरणोक्त संग्रामों से साम्य है धीर कयोनि मर्तग ने भरतोक्त संग्रामों को शुद्ध गीत के अन्तर्गत शुद्ध ग्राम-रागों से संबद्ध कर दिया है। नारदीय शिक्षा, भरत के नाट्यशास्त्र धीर मर्तग के बृहदेशी में जिन मिलती-जुलती संग्रामों का उल्लेख मिलता है, वे नीचे एक साथ दी जा रही हैं।

नारदीय शिक्षा (नारद)	नाट्यशास्त्र (भरत)	बृहदेशी (मर्तग)
१. निपाद पाठ्य	१. मध्यमग्राम	१. मध्यमग्राम
२. पञ्चम	२. पद्भ्रग्राम	२. पद्भ्रग्राम
३. मध्यमग्राम	३. साधारित	३. साधारित
४. पद्भ्रग्राम	४. कैशिक मध्यम (अथवा पंचम)	४. पञ्चम
५. कैशिक	५. कैशिक	५. कैशिक
६. कैशिक मध्यम		६. पाठ्य
७. साधारित		७. कैशिकमध्यम

भरलोक्त सज्ञाओ का 'राग' के साथ संबन्ध जोड़ना उचित नहीं है, यह हम ऊपर पृ० २-३ पर दिखा चुके हैं। नारदीय शिक्षा में वे ही हुई उग्युक्त सप्त सज्ञाओ का भी 'राग' के साथ कोई स्पष्ट संबन्ध नहीं दिखाई देता। ऐसी अवस्था में यह विचारणीय है कि इन नामों द्वारा किस विषय का निरूपण प्रत्येक राग को प्रतिष्ठित है? नारदीय शिक्षा का विषय 'गान्धर्वगान' नहीं, अपितु 'सामगान' है। वेद के छ भगों में से शिक्षा का संबन्ध वर्णोच्चार तथा वैदिक स्वर-पद्धति से है। नारदीय शिक्षा में वर्णोच्चार के अतिरिक्त वैदिक स्वरों का, गान्धर्वगान में कहे हुए श्रुति-प्रामादिक व्यवस्था के साथ संबन्ध जोड़ने का प्रयत्न किया गया हो ऐसा प्रतीत होता है। इसी प्रसंग में ऊपर की सज्ञाओ की सार्थकता समझी जा सकती है। इस अनुमान को इन सज्ञाओ से ही स्वतः पुष्टि मिलती है। यथा—'पङ्कजग्राम', 'मध्यमग्राम' एक निश्चित श्रुति-स्वर-व्यवस्था के धोतक हैं। 'सत्पारित' (अन्तर वाक्सीयुक्त) 'केशिक' आदि नाम स्वरों की अवस्था विशेष के सूचक हैं। तद्वत् 'पाञ्च सज्ञा छ स्वरों के विशेष सन्निवेश की परिचायक है। हाँ, यह सत्य है कि इन सज्ञाओ के जो लक्षण नारदीय शिक्षा में दिये गए हैं, उनमें विशिष्ट स्वर-सन्निवेशों की ओर सनेत किया गया हो, ऐसा अवश्य प्रतीत होता है। किन्तु उनमें 'राग' के लक्षणों को पूर्णता प्राप्त नहीं होगी। अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि साम-संगीत में प्रयुक्त स्वर-सन्निवेशों को निर्देशित करने के लिए ये सज्ञाएँ प्रयुक्त की गईं होंगी, किन्तु इतने मात्र से उन्हें रागवाची नहीं माना जा सकता, क्योंकि उनके लक्षणों में उस विकसित अवस्था या पूर्णता के दर्शन नहीं होते जो दर्शावच रागलक्षणों-में हमें परंपरा प्राप्त है।

नारदीय शिक्षा में 'राग' का स्पष्ट उल्लेख नहीं ही है, यह हमने देखा। 'नारदीय शिक्षा' के परंपरातः उपयुक्त सप्त सज्ञाओ का 'कुडुमस्तार्द' (दक्षिण के पेदाकोटा राज्यान्तर्गत) की चट्टानों पर खुदे हुए स्वरगम (स्वर-प्रस्तार) में उल्लेख मिलता है। उक्त शिलालेख का काल सातवीं शताब्दी ई० के आस पास निश्चित किया गया है। यहाँ भी उग्युक्त सप्त सज्ञाओ के साथ 'राग' शब्द का प्रयोग कहीं नहीं है। इसलिए 'राग' के संबंध में जो भ्रष्टता नारदीय शिक्षा के सदर्भ में हम देख चुके हैं, वही इस शिलालेख में भी सामने आती है। साथ ही यह प्रश्न भी विचारणीय है कि नारदीय शिक्षा का विषय ठो साम संगीत था, किन्तु इस शिलालेख का विषय यदि साम-संगीत न होकर गान्धर्व-संगीत रहा हो तो उसमें नारदीय शिक्षा की सज्ञाओ की क्या भीर कैसी सार्थकता रही होगी? संभव है अनुसन्धान द्वारा इस प्रश्न पर कभी प्रकाश पड़ सकेगा। जिस प्रकार विद्वानों ने नारदीय शिक्षा में रागों के अस्तित्व का अनुमान किया है उसी प्रकार उन्होंने इन शिलालेखों में भी उन्हीं सप्त 'रागों (?) के स्वर-प्रस्तार का वर्णन किया है। किन्तु 'राग' में जिन लक्षणों से पुनः विशिष्ट स्वर-सन्निवेश अपेक्षित हैं, उनका इन शिलालेखों में अभाव होने से हम इनका 'राग' के साथ स्पष्ट संबन्ध स्वीकार करने में असमर्थ हैं। मतग का 'बृहद्देशी' इस शिलालेख का प्रायः समकालीन माना जा सकता है। अतः यह भी अनुसन्धान का विषय है कि 'बृहद्देशी' में उल्लिखित राग सज्ञाओ के साथ उक्त शिलालेख के 'स्वरगम' का कैसा भीर कितना संबन्ध है।

ऊपर हमने देखा कि नारदीय शिक्षा में रागों का उल्लेख स्वीकार करके 'राग'-व्यवस्था को भरतकाल से भी पूर्ववर्ती सिद्ध करने का जो यत्न कुछ लेखकों ने किया है, यह वास्तविक तथ्यों से पुष्ट नहीं होता। भरत के नाट्यशास्त्र में भी 'राग' का उल्लेख नहीं है, यह हम ऊपर पृ० २४ पर बत चुके हैं। अतः यह कहने में कोई बाधा नहीं है कि 'राग' का सुस्पष्ट उल्लेख अथवा उपलब्ध ग्रन्थों में से सर्वप्रथम भर्तृहरि के 'बृहद्देशी' में ही प्राप्त होता है।

* सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ स्व० प्रो० पी० धार० भण्डारकर भी भरत के ध्रुवप्रनरणीक श्लोकों के सम्बन्ध में प्रायः उसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं, जिसे हम ऊपर पृ० २४ पर उल्लिखित कर चुके हैं। यथा,—

In the first place let it be noted that only five names, likely to be understood as being those of the above mentioned Rāgas occur in these verses. Secondly, the Manuscript A (3) reads Madhyama for Pancama which further reduces the amber for the Manuscript. A I may remark, is on the whole more trustworthy than those on which the printed edition is

मत्तग ने रागा का वर्गीकरण मुख्य रूप से प्रायराग और भाषाराग अथवा दशो राग इतरे विभागों में किया है। विष्णु संख्या में विस्तार, विरास और प्रपला इष्ट विभा वर्गीकरण की प्रायश्चयता रही होती। मत्तग की राग-वर्गीकरण व्यवस्था को देखने से यह स्पष्ट होता है कि उन प्राय राग का विरास, विष्णु संख्या में विस्तार और प्रचलन हा चुका था। मत्तग के पूर्व कुछ शास्त्रियों राग व इत विरास क्रम में अन्वय स्थानीत हुई हागी। विष्णु उच काल का कोई अय उपलब्ध नहीं है। इसलिए आज मत्तग के 'बृहदेशी' में राग-व्यवस्था की जो प्रथम उपलब्धि होती है, वह पर्याप्त रूप से विवक्षित और विस्तृत है।

'राग' के स्पष्ट उल्लेख के साथ-साथ मत्तग के 'बृहदेशी' म राग-वर्गीकरण का भी विस्तृत विवरण मिलता है। 'वर्गीकरण' के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि नाट्य प्रयोग में पूर्व-रत, भिन्न २ प्रवय, पञ्चमपिपा इत्यादि के प्रसंग में जिन जिन स्वर सन्निवृत्ता को प्रयोग म लाया जाता था, उन सन्ना वर्गीकरण भरत ने १८ जातिया में किया है। अतः यह कहा जा सकता है कि जातियां कदाचित् स्वर सन्निवृत्ताओं के वर्गीकरण की सर्वप्रथम व्यवस्था की प्रतीक हैं।

मत्तग ने अपने रागा का सप्त गीतियो के अन्तर्गत विभाजन किया है। यथा—शुद्धा, भिगा, गीडी, राग, वापारणी, भापा और विभापा। उन्होंने अपने पूर्वाचार्यों में से याष्टिक, दुर्गाक्षि, शाङ्ख और भरत के मत का भी इस प्रसंग में उल्लेख किया है। इन सब का मतोज्ज्वल मत्तग ने जिस प्रकार किया है, वह नीचे एव साथ प्रस्तुत है —

याष्टिक	दुर्गाक्षि	शाङ्ख	भरत
भापा, विभापा और अन्तरभापा	शुद्धा, भिगा, गीडी, वसरा और सापारणीः	भापागीति	भागवी, अर्धभागवी, सन्निवृत्ता और वृष्टुता

भरत की चार गीतियो के लिये यह उल्लेखनीय है कि वे विभिन्न नेय द्वाका के अन्तर्गत अन्तर-विभाग से सम्बन्ध रखती हैं। यो तो 'गीति' सन्ना स 'गान'-क्रिया के साथ सम्बन्ध जान पहचान है विष्णु भरतीक 'गीति' का स्वर प्रयोग या स्वर विन्यास के साथ सम्बन्ध महा है, अतः गान क्रिया म प्रयुक्त पदो या पद्यों की वर्ण सघटना से सम्बन्ध है। मत्तग न भी अपने 'बृहदेशी' में इन चार (भरतीक) गीतियो का द्वाद-अन्तर के प्रवरण में वृथवा रूप से उल्लेख किया है। उच प्रवरण में गान क्रिया का कोई प्रसंग नहीं है। भरत और मत्तग के निम्नादृत वचना से यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

based Thirdly, it must be remembered that none of these names occur as belonging to Ragas in the special chapters of the work treating of music. All this at once makes one think that the names, as used here do not belong to Ragas at all and this conjecture is borne out by the explicit statement contained in the first sloka which Kallanatha has not quoted. From this sloka it is evident that the rules in the following verses are not for the use of Rāgas of these names but for the two Gramas and the Sadhārana mentioned in an earlier part of the work. Thus music in the Madhyamagrāma is to be used in the Mukha portion of a Nāṭaka and again in Vīmarsā (or Avamarsā) music in the Sadhāgrāma in the Pratimukha music in the Sadhārana (Sadhāritam is thus a mistake for Sidhāranam) in the Gurbhā and music in the Kāśikā in the Nṛsahana. It is thus clear that the seven Ragas of this inscription did not exist in the time of the Bhāratiya Nāṭya Śāstra' (Kudumala: Inscription on Music by Rao Bahadur P. R. Bhandarkar, Epigraphia Indica Vol. VII (1914) p. 266)

• दुर्गाक्षि की पाँच गीतियो का ही 'संगीत रत्नानर' में ग्रहण किया गया है।

भरत

मर्तग

धृत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि गीतीनामपि लक्षणम् ।
 प्रथमा भागधी ज्ञेया द्वितीया चाधर्मागधी ॥
 संभाविता तृतीया च चतुर्थी पृथुला स्मृता ।
 भिन्नवृत्तिप्रगीता (विनिवृत्तप्रवृत्ता) या सा
 गीतिमगधी मता ॥
 अर्धकालनिवृत्ता च विज्ञेया त्वधर्मागधी ।
 संभाविता च विज्ञेया युर्वक्षरसमन्विता ॥
 लघ्वक्षरकृता नित्या पृथुला संप्रकीर्तिता ॥

अथ गीति प्रवक्ष्यामि द्वादोऽक्षर..... ।
 (संभाविता) च विज्ञेया युर्वक्षरसमन्विता ॥
 चित्रे चैक्यले ताले विज्ञेया गीतिमगधी ।
 वार्तिके द्विक्रता ज्ञेया गीति संभाविता युषे ॥
 दक्षिणे पृथुला गीतिस्ताले ज्ञेया चतुष्कले ।
 अनेनैव विधानेन गातव्या गीतयो युषे ॥
 द्विगुणविनिवृत्ता च चित्रे गीतिस्तु मागधी ।
 लघुप्लुतकृता चैव तदर्धे चार्धमागधी ॥
 संभाविता युर्वृत्तो पृथुला दक्षिणे लघु ॥

(ना. शा. काशी संस्करण २६।७६-७६.

यम्भई संस्करण २६।३८-४०

(५० १७३ १७७ ५३ ४६-५०)

इन उद्धरणों का संक्षेप में यही भावार्थ है कि गीत के 'पदों' (शब्दों) में गुरु स्वरों की संघटना से 'संभाविता' गीति और लघु भक्षरों की संघटना से 'पृथुला' गीति की निर्णयिता होती है। 'मागधी' और 'अधर्मागधी' गीतियों का संबंध गीत के पदों (शब्दों) की आवृत्ति (पुनरावृत्ति) की प्रक्रिया के साथ है। शाङ्करदेव ने भी इन चार गीतियों का इसी अर्थ में निरूपण किया है। और राग-वर्गीकरण के लिए गृहीत पाँच गीतियों (शुद्धा भिन्ना आदि) से इन्हें व्युत्पन्न किया है। बल्लिनाथ ने भी इन दो प्रकार की गीतियों की भिन्नता निम्नोद्धृत शब्दों में कही है।—

ननु पूर्वोक्तान्यो मागध्यादिगीतिभ्योऽयुक्तानां शुद्धाऽदिगीतीनां को भेद इति चेत्, उच्यते। मागध्यादयः प्राधान्येन पदतालाश्रिताः, शुद्धाऽऽदयस्तु, प्राधान्येन स्वराश्रिताः * * * ।

(स० २० २।१।२ पर बल्लिनाथ टीका) ।

अर्थात् यदि यह प्रश्न किया जाए कि मागधी आदि गीतियों से शुद्धा आदि गीतियाँ किस प्रकार भिन्न हैं, तो उसका उत्तर यही है कि मागधी आदि प्रधानरूप से 'पदताल' के आश्रित हैं और शुद्धा आदि प्रधानरूप से स्वर के आश्रित हैं।

मत्तङ्ग ने जिन सात गीतियों के अन्तर्गत राग-वर्गीकरण किया है उनके जो लक्षण दिये हैं उनसे भी यह पूर्णतया स्पष्ट होता है कि इन गीतियों का मुख्य संबंध स्वर प्रयोग से ही है। यथा —

मन्द्रामद्रेथ तारेथ ऋजुभिल्लिले समे । स्वरैथ ध्रुतिभि पूर्णा चोक्षा गीतिवदाहृता ॥

सूरमैथ प्रचलैथकैवल्लारितप्रसारिते । ललितैथारमद्रेथ भिन्ना गीतिवदाहृता ॥

प्रयोगैथ द्वेते वार्या मिश्रामिथैरच मानवे (?) ईपप्रारिगते निश्चिन्नलितैथारदोति ॥

सोच्छ्वानै खण्डस्रैरैथ भिन्ना गीतिवदाहृता ॥

मोहाल्लवलिनेरवाणि त्रयो गीजस्रव शोभना ।

इस उद्धरण में 'ध्रुति' 'दण्ड' 'रिच' आदि जिन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है उनका स्पष्टीकरण यहाँ प्रायोगिक नहीं है। उरता विशद स्पष्टीकरण प्रणयन-भारती (द्वितीय भाग) में किया जायगा ।

* गियथ प्रणिपादा की शृंगला की दृष्टि से, मुद्रित क्रम में यहाँ कुछ परिवर्तन करना पड़ा है ।

'ओहाव' से संभवतः 'मोहा' संबंधी स्वर प्रयोग से तात्पर्य है। 'मोहा' या 'माहा' या 'मोहाली' का लक्षण मतलब में इस प्रकार दिया है :—

हारोराययोमोहालोहालो परिचीतिता । विबुधै हृदये न्यस्य मोहाधी मद्रथा भवेत् ॥

दुना द्रुततया वार्या स्वररचनेन गीतिता । मोहामी ललितता चापि दृष्टादप्येन वर्णना ॥

सामाधारं समा चैव वार्यारोहावरोहणौ । प्रविश्यामेण त्रिस्थाने गौरी गीतिरदाहृता ॥
सलितैर्गमनेरिचभैः प्रसन्नैरीरसी । समैः रजकैः स्वरसन्दर्भं रागगीतिरदाहृता ॥
चतुर्णामपि यणाना यो रागः शोभनो भवेत् । स सर्वो दृश्यते येषु सैन रागा 'दति स्मृताः' ॥
श्रद्धुभिर्नलितैः विश्रुतं सूदमासुधमैरथ मुधने । ईषद्दुतीरथ कर्तव्या । मृदुभिर्गलितैस्तथा ॥
प्रयोगैर्मंछणै सूधमैः श्राद्धुभिर्भैः सुयोजितैः । स्वरेः साधारणा गीतिर्गीतिते । रागदाहृता ॥
एवं साधारणा ज्ञेया सर्वगीतिसमाश्रया ।

प्रयोगैर्गमनैः श्रद्धणैः श्राद्धुभिः सुयोजितैः कम्पितैः कोमलैर्दीप्तिर्मातृकोणाकुनाचिती । ॥
ललितैः सुकुमारैरथ प्रयोगैरथ सुसयतैः । भाषागीतैः समाख्याता एषा गीतिविचक्षणैः ॥
यथा वै रज्यते सोवस्तथा वै संप्रयुज्यते । सतिर्वैर्द्वैर्द्वैर्द्वैर्दीप्ति कम्पितैरीरसीः समैः ॥
तारातिहारैर्मंछणैर्मध्ये मध्यमदीपितैः । गमनैः श्रोत्रसुखदेवैर्ललितैस्तु यदृच्छया ॥
विभाषागीतस्तु सयोग्या यथा लोकोऽनुरज्यते ॥ (वृ० पृ० ८२-८४)

इस उद्धरण के संक्षिप्त भावार्थ के अनुसार सात गीतियों के लक्षण हम प्रकार हैं :-

१—चोक्षा अथवा 'शुद्धा गीति—मन्द्र, मध्य, तार स्थानों में श्रद्धु (सरस) सलित, सम, पूर्ण (श्रुतियों से पूर्ण) स्वरो का प्रयोग ।

२—मिन्ना गीति—सूधम, कम्पित, वक्र, सलित, तार, मन्द्र, द्रुत, ईषत्कम्पित, तारदीपित, उच्छ्वास-सह, सण्ड-सण्ड में स्वरो का प्रयोग ।

३—गौड़ी गीति—भोहाटी (गमक) सह, ललित, सम, विश्रामरहित स्वरो का प्रयोग ।

४—रागगीति—सलित, गमकयुक्त, प्रसन्न, रजक, स्वरसन्दर्भों का प्रयोग ।

५—साधारणगीति—सब गीतियों के लक्षणों के एकत्र समावेश से निष्पन्न ।

६—भाषा गीति—श्रद्धण, काकु सहित, सुयोजित, कम्पित, कोमल, दीप्त, सलित, सुकुमार स्वर प्रयोग । जिस प्रकार लोकरजन हो उसी प्रकार इस गीति का प्रयोग किया जाता है ।

७—विभाषा गीति—सलित, दीप्त, कम्पित, सम, तारातिहार, मखण, मध्यम दीपित, श्रोत्रसुखद गमक से युक्त । इसमें लोकरजन की दृष्टि से स्वेच्छानुसार इन स्वर प्रयोगों का सफलान विनियोग किया जा सकता है ।

प्रश्न हो सकता है कि प्राचीनों द्वारा भिन्न २ गीतियों के निरूपण का तथा उनके अन्तर्गत राग विभाजन का क्या तात्पर्य है ? क्या इन्होंने यह गमना जाए कि रस-भाव की दृष्टि से भिन्न २ रागों का उनके अनुवृत्त गमनादि स्वरप्रयोग तथा क्लिप्तमिन्न मध्य द्रुत आदि लयप्रयोग-युक्त भिन्न २ गायनवादन शैलियों में प्रयोग करने का विधान है ? मसंग ने रागों का गीतियों के अनुसार जो वर्गीकरण किया है, उसमें यह स्पष्ट होता है कि एक काल में भिन्न २ रागों का भिन्न २ लयों,

त्रिस्थानवरणैर्मुक्ता स्व(नि)स्थानचननाकुला । चतुर्भिधा तपोहासो कर्तव्या गेयवेदिभिः ॥

(वृ० पृ० ८२)

अर्थात् हवार धीर उवार के योग से 'शोहासी' (गमक विशेष) निष्पन्न होती है । ठोसी को हृदय में (गे के नीचे) सगावर मन्द्र स्थान में 'भोहाटी' का प्रयोग हो सकता है । मन्द्र, मध्य, तार तीनों स्थानों से 'शोहाटी' का सम्बन्ध है । उनमें द्रुत धीर द्रुततर लय में स्वरगमन का प्रयोग रहता है । यह भोहाटी चार प्रकार की होती है । (इस उद्धरण का पाठ 'संगीत रत्नाकर' २।१।५ की 'सुधावर' टीका में उद्धृत मंत्र के पाठ के अनुसार शुद्ध किया गया है) ।

भिन्न २ गनको. भिन्न स्वानों (सप्तों) और भिन्न उच्चार—प्रकारों से प्रयोग हुआ करना या। विभिन्न रागों की इसी प्रयोगगत भिन्नता ब्यथा विविधता का शास्त्रीय निरूपण गीतियों में किया गया है।

उत्पुङ्गु वैशिष्ट्य के बुद्ध भ्रमरोप आज भी हमारी राग-रचना में विद्यमान हैं, यद्यपि गीतियों के रूप में उनके शास्त्रीय निरूपण का प्रथम प्रयोग के साथ सम्बन्ध हम भूल बैठे हैं। उदाहरण के लिए कल्याण, किन्कोटी, भैरवी, काफ़ी जैसे रागों में स्वरों का सीधा, सम प्रयोग शुद्ध गीत के अन्तर्गत समझा जा सकता है; तद्वत् दरवारी, महार, पूरिया जैसे रागों में मन्द्र-मध्य स्थात में मन्द्र गति में गमकयुक्त प्रयोग का जोड़े गीत के साथ संबन्ध जान पड़ता है; वहार, जैजैयन्ती, भैरव, देसी आदि रागों में स्वरों के सूदन और वक्र प्रयोग के बाहुल्य में भिन्ना गीत का अस्तित्व दिखाई देता है। उची प्रकार झडगा, सोहनी जैसे तारव्याप्ति और स्वरित गति वाले रागों में 'धैरवा' (बेगवरा) गीत का स्पष्ट दर्शन होता है; तद्वत् सरल, वक्र, गमकयुक्त स्वरितगतियुक्त—इन सब प्रकार के स्वर-प्रयोगों का मिश्रण तो आज के अधिकांश रागों में विपुल मात्रा में दिखाई देता है। उदाहरण के लिए मारुविहग, भूपाली, हनोर, केशर, आसारो आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

हमारे आज के राग-प्रयोग में 'गीत'-रचयिता के अल्प भ्रमरोप प्राप्त होने पर भी यह निःसंदेह कहना पड़ता है कि आज हम अधिकांश रागों को एक ही ढर्रे से, एक ही विस्तार-रूप से गाने बजाते हैं। आज हम रागों को प्रकृति, रस, स्वरान्तराल, स्वरोंवार, समाधिक गति की ओर न देखते हुए प्रायः एक ही धैर्य से प्रत्येक में विलम्बित भाषण, महानामा, चालनाम, ताल का प्रयोग और विलम्बित, मध्य, द्रुत सभी तालों का सञ्चार करते हैं। इस प्रकार रस-रंग वी जो क्षति होती है और भाव-भंग वी जो अवस्था अस्तित्व में आती है, वह निःसंदेह शोचनीय है। उदाहरण के लिए हम कई स्थानों पर, किन्तो ही बार यह निवेदन कर चुके हैं कि तोड़ी जैमो प्रीड़ प्रोपिनभित्ता, विरहदग्गा, परम दु खिता रगिनी मे केवल गमकयुक्त हो नहीं, अरिनु सभी प्रकार की तानों का प्रयोग रस-भाव की दृष्टि से निगिद्ध मानना चाहिये; उक्त विरहदग्गा के दुख का आविर्भाव आलाप तक हो सीमित रखना चाहिये क्योंकि उसके विचारों की अभिव्यक्ति आलाप से हो हो सकती है; गमक की तानों में, द्रुतगति की तानों से या मध्य किंवा प्रकार की तानों से नहीं हो सकनी, बल्कि उनके निरान्त विरहीत भाव खड़ा होगा। किन्तु इसके सरल आरोहवरोह के कारण इसमें इनकी तानव्यक्ति होती हैं कि इसके रस वा संयुक्त विरोधात् हो जाता है। कई बार विदेही लोग पूछते हैं कि तानों में तो तोड़ी का कण रस कहाँ भी दिखाई नही देता। तब कहना पड़ता है कि रस-दृष्टि से इनमें तानों का प्रयोग निरान्त अप्राप्त होने पर भी हमें परेच्छा से अनिच्छा कर्म करना पड़ता है

हम जानते हैं कि कुछ धोना भी तानवाची की ही राह देना करते हैं और उमो को सराहना के लिए तलर रहते हैं। परन्तु धोतामा की मनोवृत्ति तैगर बरने वा कार्य भी तो कलाकार का हो है। किन्तु कलाकार को कौन कहे ? प्रसाह मे मर बोई वह जाते है और शास्त्रमन 'नरे' मार्ग को खोजने वाला, दिखाने वाला, प्रयुक्त करने वाला यदि कला-मन में अपना मन बहा है, मनमत्ता है, करके दिखाना है, तर भी "कोन सुने काने वहाँ ये दुख बतियाँ" यानी स्थिति सामने धानी है। लोक को खोजने वाला विरला हो होगा है। लोकर-मन्दा मे ऊंचा उडा हुआ वह विरला ही आनी तन सिद्धि से सत्य-मय का निदर्शन करेगा। शोमद् राजचन्द्र ने कहा है—“मयूँ अक्सर एतुं बयारे प्रावरो ? बयारे मायुं वास्तान्तर निर्भय जो, सर्वसंबन्धनुं बन्धन तोदन छेरी ने वीवरनुं, वाई महसुधन मे पन्व जो।” अलु।

उत्पुङ्गु चर्चा वा सारास यही है कि प्राचीन गीति-रचनाओं में रागों के गमक-भेद, लय-भेद, स्थान-भेद आदि के वैज्ञानिक नियमन को जो विचारधारा निहित है, उनके अनुसार आज के लक्षण रागों का नियमन परम वाद्यनीय है। ऐसे नियमन से ही हमारे संगीत का भाव-मन्य गुण और सरल हो सकता है।

मन्य मे ऊार दो गई गान गीतियों में मे प्रथम पाँच में प्रास्ताविक वा चर्चा-रूप निम्न है और दोन दो (भाषा और विभाषा) में दोनो रागों वा। उनका यह चर्चा-रूप परिशिष्ट में (क) तालिका में प्रस्तुत है।

शाङ्गदेव

शाङ्गदेव ने मतंग के सदृश पाँच गीतियों के अन्तर्गत ग्रामरागा वा विभाजन किया है। किन्तु उन पाँच गीतियों के नाम दुर्गंशक्ति के मतानुसार शाङ्गदेव ने प्रह्लाद जिनके हैं। यथा:—शुद्धा, मित्रा, गीरी, वेसरा और साधारणी। मतंग ने वेसरा के स्थान पर रागगीति का ग्रहण किया है। शाङ्गदेव ने इन पाँच गीतियों के लक्षण इस प्रकार दिये हैं:—

... ... शुद्धा स्यादवशैलैस्सितैः स्वरैः। मित्रा यज्ञैः स्वरैः सूक्ष्मैर्मधुरैर्गमनैर्वृता ॥
गाढैस्त्रिस्थानगमकैरोह्यतीनलिनैः स्वरैः। ह्यारोधारयोगे वा हून्यस्ते चिदुते भवेत् ॥
वेगबन्धुः स्वरैर्वर्णचतुष्टोऽप्यतिरक्तिनः। वेगस्वर रागगीतिर्वेसरा चोच्यते सुषे ॥
चतुर्गोतिगतं सप्तमं श्रित्वा साधारणो मता। शुद्धाऽऽदिगीतियोगेन रागाः शुद्धादयो मताः ॥

(सं० २० २।१।३, ७)

अर्थात्—अथक (सरल), ललित स्वरों से शुद्धा; यज्ञ, सूक्ष्म, मधुर गमनों से मित्रा; गाढ़, त्रिस्थान-व्यापी गमनों से शुद्ध, 'भोहाटी' सहित (ह्यार-औत्तार के योग से और गले के नीचे विद्युत् लगाने से उदात्त) ललित स्वरों से गीरी; चारों वर्णों में वेगग्रहित स्वरों के रक्षिपूर्ण प्रयोग से वेसरा और चारों गीतियों के लक्षणों के मिश्रण से साधारणी गीति निर्गम्य होती है। 'शुद्धा' आदि गीतियों के योग से राग भी 'शुद्ध' आदि नाम पाते हैं।

देशी रागों के वर्गीकरण के लिए मतंग ने भाषा और विभाषा—इन दो गीतियों को प्रह्लाद किया है, यह हम देव चुके हैं। किन्तु शाङ्गदेव ने रागाङ्ग, भाषाङ्ग, क्रियाङ्ग और उगाङ्ग इन चार विभागों में देशी रागों का वर्गीकरण किया है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि शाङ्गदेव के 'भाषाङ्ग' का मतंग की 'भाषा' अथवा 'विभाषा' के स्तव शब्द-साम्य होते हुए भी 'अर्थ-साम्य' नहीं है। मतंग ने 'भाषा' 'विभाषा' का संबन्ध सीधे ग्रामरागों के साथ जोड़ा है अर्थात् यह धरता है कि प्रत्येक ग्राम-राग को इनकी 'भाषा' है और इनकी 'विभाषा' है। किन्तु शाङ्गदेव ने 'भाषाङ्ग' का इस प्रकार से ग्राम-रागों के साथ संबन्ध न जोड़कर उनका 'देशी' रागों के एक प्रकार विशेष के रूप में स्वतन्त्र निरूपण किया है। साथ ही उन्होंने मतंगों के 'भाषा-विभाषा' का भी पृथक् निरूपण किया है। उनका राग—वर्गीकरण परिशिष्ट में तालिका (ख) के रूप में प्रस्तुत है।

मध्ययुग की राग-वर्गीकरण व्यवस्था

'संनोत रत्नाकर' के पश्चात् 'ग्राम-राग' और 'देशी-राग' वर्गीकरण के स्थान पर राग रागिणी और मेल-वद्धति के नाम से दो अन्य वर्गीकरण-वद्धतियाँ अस्तित्व में आईं; किन्तु 'सङ्गीत रत्नाकर' के परवर्ती वाच वा एन विराट् ग्रन्थ ऐसा भी प्राप्त है जिसमें 'ग्राम-राग' और 'देशी-राग' का ही मतंग शाङ्गदेवों के ढाँचा वर्गीकरण के लिए ग्रहण किया गया है। यह ग्रन्थ है—जलसेन अथवा कुन्ना द्वारा रचित 'सङ्गीतरत्न' जिसका वाच पन्द्रहवीं शताब्दी ई० का पूर्णतः माना जाता है इस एक धनवाद को छोड़कर, मध्ययुग के प्रायः प्रारंभ में ही राग वर्गीकरण की दो धाराएँ अस्तित्व में आईं—एक की दृष्टि ने रागों के आधार रूप को लक्ष्य करके उनमें पुनः पञ्चीय वा दशान्त किया, उनके यौवन प्रोढत्व का अनुभव किया, यहाँ तक कि त्रिची-किसी ने तो नान्यतर नपुंसक रागों की भी भातुक बल्यता की और दूसरी की दृष्टि रागों के स्वररूप पर केन्द्रित रही। पहली धारा राग-रागिणी-वर्गीकरण के रूप में विवक्षित हुई और दूसरी धारा ने मेल-वद्धति वा रूप धारण किया।

दक्षिण की छोड़कर सारे भारत में राग और रागिणी का वर्गीकरण प्रचलित रहा और आज तक वह भारत के राग रागिणी-वर्गीकरण का ही प्रवेशो में पूर्ण माना से जनमानस में धुला हुआ है। सामान्य ग्राम-जनता भी रागों की पुरुष और स्त्री के रूप में जानती है। भारत के पलावारों के मन और हृदय पर इसकी इतनी अव्यक्त पाड़ है कि वे अभी तक इसी के प्रभार से प्रभावित हैं। धीराधिक कथामो पर जिस श्रद्धा से

विदास किया जाता रहा है, कुछ उसी प्रकार राग और रागिणी देव-देवियों के सदृश भारतीय सस्कृति में पूजे जाते रहे हैं। वीसवीं सदी की पारनात्य शिशा-पद्धति में दीर्घत जनता भङ्गे हों इस परम्परा को पौराणिक या कपोल-नल्पना मान लें, फिर भी कलाकार और सामाजिक राग और रागिणियों के भावपूर्ण अस्तित्व को स्वीकार करते रहे हैं, अभी भी कर रहे हैं।

भारतीय सस्कृति में शब्दशास्त्र, शिल्प, संगीत, नृत्य, नाट्य आदि सभी विद्याओं और कलाओं का उद्गम दिव्य माना गया है और सभी ग्रन्थकारों ने प्रारम्भ में उन उन विषयों की उत्पत्ति की कथा इसी गायता के अनुसार कही है।

जिन-जिन कलाकारों अपना कान्-मर्मज्ञो को भावदृष्टि ने स्वरा का दर्शन दिया, उन स्वरो के श्रुत्यन्तरो, स्वरान्तरो, सवादान्तरो, अनुवादान्तरा और विनादान्तरा को देखा, जांचा, परखा, उहोंने भावुन हृदय की गहराई से इन सब में निहित भाव-तत्त्व को पहचाना, स्वरोंचार, गमन-दि प्रयाग, वाक्कादि भेद इन सबसे पर ध्यवा अतीत एव महान् सत्य का अनुभव किया। उनको इस अनुभूति ने इन स्वरो से उद्भूत रागा में पुरस्त्व नारीत्व का दर्शन किया अन्वा दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं कि रागा की भावाभिव्यञ्जना को स्थूल भाषा में निबद्ध करने के लिए पुरस्त्व स्त्रीत्व के प्रतीक का ग्रहण किया। तदनुसार उन्होंने भावना को ठोस नींव पर इन राग रागिणियों का शिव और पार्वती के साथ ध्यवा निसी क्रिसे ने वृष्ण और गोपियों के साथ सवत्य स्थापित किया है।

भारतीय दर्शन में सृष्टि के पूर्व ब्रह्म को "एकोऽहं बहु स्याम्" इस कामना के द्वारा एक महान् सत्य को प्रकट किया गया है। 'बहु' होने से पूर्व 'एक' से 'दो' का होना आवश्यक होना है। 'एक' ही त्रिगु या सत्य का द्विधा विभक्त होना और उन दो के परस्पर योग से तीन तथा क्रमशः अनन्त की उत्पत्ति,—यही सृष्टि का रूप माना गया है। सृष्टितत्त्व में प्रकृति-पुरुष का योग विभिन्न रूप से विभिन्न दरानों में स्थान पाए हुए है। वेद, उपनिषद्, पुराणों में से होनी हुई यह विचारधारा तन्त्रों में सब से अधिक विकसित हुई, यद्यपि संपूर्ण सृष्टि में व्याप्त युगमभाव को प्रत्येक भारतीय दर्शन में किसी न किसी रूप में अवश्य स्वीकार किया गया है। यही युगम-भाव संगीत में भी स्वरो के भाव-रूप की धमिभ्यक्त करने के लिए प्रतीक के रूप में अपनाया गया और रागों में पुरुषत्व तथा स्त्रीत्व को स्थान दिया गया।

हम देखते हैं, जानते हैं कि उद्भिज से लेकर विडज तक सभी में स्त्री, पुरुष का द्वैत भाव विद्यमान है। एक निस्तान एक 'अद्वैत' बीज को बोता है, उसका जन अक्षुर निरलना है तब एक का दो हो जाना है। यह द्विदल भी उसी सत्य को निदर्शित करता है।

हमारे महर्षियों तथा आचार्यों ने स्वरनिबद्ध रागा में ईश्वर और माया के सदृश पुरुषराग और स्त्री रागिणी का भावमय अनुभव किया और उन्हें तदनुसार सत्ता प्रदान की।

आज का विज्ञान का युग भावना के इस तर्कतीत दर्शन को समझने में असमर्थ रह तो कोई आश्चर्य नहीं। हम जानते हैं कि बुद्धि और हृदय में सदैव अंतर रहा है। बुद्धि को तर्क का सहारा है, हृदय को ध्यदा का। मह भी कहने की आवश्यकता नहीं कि सभी धर्मों का उदय, इतना ही नहीं ईश्वर का अस्तित्व भी इसी ध्यदा पर अन्तर्निहित है। सुनसीदास जो ने ठीक ही कहा है—“जाकी रही तावना जैसी, प्रभु पुरानि देखी निन तेरी”—भगवान् श्रीकृष्ण ने भी यही कहा है—“श्रद्धामयोध्य पुरुष यो य श्रद्धा स एव स”—

आचार्यों की भाव दृष्टि से प्रसूत राग रागिणियों के भावरूपा को शायद आज तन्-विरद्ध कहा जाए, वैज्ञानिक ढंग से इनकी विवेचना असंभव थडाई जाए, फिर भी यह ध्यान भी निनात सत्य है कि जिन जिन राग रूपों को हम सुनते हैं, सुनते हे उनमें पुरुषत्व और स्त्रीत्व का दर्शन केवल स्वरो व द्वारा सचमुच ही हो जाता है।

यह नितान्त निस्संकोच भाव में कहा जा सकता है कि पारवात्व जगत् में भी नियोजन, मोडार्ड, शोपेन, वाक् दस्यादि विश्वविद्विद करोडारक्ष (स्वर वाच्य नियोजन) ने भी स्वरा को इत भाव दृष्टि को सूक्ष्मतया देख कर ही अपने

विश्व के भिन्न २ देशों का येरा अनुभन यह कहने को वाध्य करता है कि जिन्हें शब्द में निरपेक्ष, स्वर की भाषा द्वारा होनेवाली भावाभिध्व्यक्ति को देखने, सुनने, परसों का अभ्यास है, वे हमारे रागरूपों को गुनार कई बार सहज यह उठते हैं, पूछ उठते हैं :—“यहा ! इस रचना में कष्टणा (Pathos) भरी-भड़ी दिखाई देती, क्या आपके यहाँ भी इसके लिए ऐसी ही मान्यता है ?” अथवा “शान्ति, उत्साह (Bravery, Chivalry) प्रेम (love) दिखाई देते हैं,” इत्यादि । हम जानते हैं कि अन्य देशों की जनता भारतीय भाषाओं से अनभिज्ञ है । यह जब भी भारतीय संगीत सुनती है, तब भारतीय रागात्मगत गीतों के शब्दों की बोधे ही समझती है ? यह तो प्रयुक्त स्वरों को ही सुनती है । उन्हें उन स्वरालयियों के राग-नाम, रस या भाव इत्यादि के शास्त्रीय पक्ष से कोई परिचय नहीं होता है, फिर भी उन स्वरों में सन्निहित विभिन्न भावों का वे दर्शन करते हैं, भाषाद्वेष के साथ सादात्म्य का अनुभव करते हैं श्रीर साधर्म्य पूछ उठते हैं—“क्या आपके यहाँ भी हमारे भाँति स्वरों की भावाभिध्व्यक्ति की मान्यता है ?” सद्यः भारतीय वाद्यों के मादन से भी वे वित्तने प्रभावित होने हैं, यह अनजानी बात नहीं है । इसीसे यह गिद्ध है कि संगीत की भाषा विश्व की भाषा है, प्राणिमान की वह वाणी है, नैतिक भाव-अभ्यञ्जना का वह माध्यम है । इसीसे उन्ने देशप्रानातोंत बढ़ा गया है । अस्तु, अब हम भारतीय राग-रागिणी-वर्गीकरण पद्धति का सक्षित इतिहास प्रस्तुत करते हैं ।

हमने मतंग के राग-वर्गीकरण-प्रकरण में ऊपर देखा कि उन्होंने देशी रागों का गाया और विभाषा गीतियों के राग-रागिणी-वर्गीकरण का इतिहास —मतंग प्रस्तर्गत विभाजन किया है और इन भाषा विभाषा का सीधे ग्रामरागों के साथ संबन्ध जोडा है अर्थात् यह बताया है कि अमुक ग्रामराग की अमुक भाषाएँ हैं । यह भी उन्नेवनीव है कि जितनी भाषाएँ कही हैं उन सब की संज्ञाएँ भी स्त्रीलिंगवाची हैं । ‘ग्रामराग’ यह पुल्लिंगवाची संज्ञा है श्रीर ‘भाषा-विभाषा’ के स्त्रीलिंगवाची हैं । इन द्विविध संज्ञाओं को देखते हुए यह प्रबल अनुमान हो जाता है कि ‘राग’ और ‘रागिणी’ की विचारधारा मतंग में ही सर्वप्रथम उपलब्ध हो जाती है । इस अनुमान की पुष्टि याचनाचार्य ‘गुणानुसंग’ के ‘संगीतोपनिषत्सारोद्धार’ (१४ वीं शताब्दी ई०) से होती है । अमुना उपलब्ध ग्रन्थों में से इनी ग्रन्थ में सर्वप्रथम स्पष्ट रूप से रागों में पुरुषत्व और स्त्रीत्व का आरोप प्राप्त होता है । वहाँ स्त्री रागों को ‘रागिणी’ न वह वर भाषा कहा गया है । इस ‘भाषा’ का मतंग को ‘भाषा’ के साथ सहज संबन्ध जान पड़ना है । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जब ग्राम-राग-देशी-राग-वर्गीकरण के स्थान पर राग-रागिणी-वर्गीकरण का विकास पारन हुआ तब प्रथमावस्था में स्त्री ‘रागिणी’ के लिए ‘भाषा’ संज्ञा का उपयोग यह सूचित करता है कि मतंगिक ‘भाषा’ में रागों के स्त्रीत्व के बीच उच्च माल में भी ग्रन्थकारों ने देते होंगे और तभी इस संज्ञा का प्रहण किया होगा ।

शाङ्गदेव के ‘संगीत रत्नाकर’ में राग-वर्गीकरण के संबन्ध में अधिकांश रूप से मतंग का ही अनुसरण मिलता है । इसलिए जो कुछ ऊपर मतंग के विषय में हम कह आए हैं, वही ‘संगीत रत्नाकर’ को भी लागू होता है यानी ‘भाषा’-‘विभाषा’ में रागों के स्त्रीत्व-दर्शन का योजरूप जेते मतंग के वृद्धेशी में समझा जा सकता है, उसी प्रकार ‘संगीत रत्नाकर’ में भी परम्परागत रूप से समझा जा सकता है । चिन्तु यह अवश्य स्मरणनीय है कि रागों के ‘पुरुषत्व’ अथवा ‘स्त्रीत्व’ का कोई भी प्रस्तुत उल्लेख ‘संगीत रत्नाकर’ में नहीं मिलता ।

इस ग्रन्थ श्रीर ग्रन्थकार की ऐतिहासिकता संदिग्ध है । श्रीरामदृष्ट्य कवि (संगीतक ‘संगीत मकरन्द’) की ऐसी मान्यता है कि यह ग्रन्थ ७वीं शताब्दी से ११ वीं शताब्दी के बीच की रचना है श्रीर तदनुसार यह ‘संगीत रत्नाकर’ के पूर्ववर्ती ठहरता है । यदि इस मध्य का काल सपुत्रुप जना ही प्राचीन हो जितना कि श्रीरामदृष्ट्य कवि ने कहा है, तब तो राग रागिणी वर्गीकरण की परम्परा की प्राचीनता भी साथ ही सिद्ध हो जाए, क्योंकि इसमें ‘राग-रागिणी’ का उल्लेख मिलता है । चिन्तु हम ग्रन्थ के विषय-प्रतिपादन को देखते हुए इसे इतना प्राचीन मानना समीचीन नहीं जान पड़ता । स्थानाभास के कारण सभी विषयों की चर्चा यहाँ संभव नहीं है, चिन्तु केवल राग-वर्गीकरण पर ही विचार करें तो निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं ।

—नाद (?) का संगीत मकरन्द

मर्तंग का बाल भी सातवीं शताब्दी ई० के आसपास माना जाता है। इनके ग्रन्थ में पाँच गीतियों में माम-राग-वर्गीकरण तथा दो गीतियों में देशी राग वर्गीकरण पाया जाता है। 'संगीत रत्नाकर' में प्रायः इसी वर्गीकरण-पद्धति का प्रतिपादन मिलता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मर्तंग से लेकर शाङ्गदेव तक राग-वर्गीकरण को एक ही धारा प्रवाहित रही है। यदि 'संगीत मकरन्द' को इन दोनों के बीच के काल रखा जाए तो दो बड़े भ्रम उत्पन्न होते हैं:—

(१) जिस काल में मर्तंगोक्त वर्गीकरण प्रचलित रहा होगा, उसी में नारद (?) ने यदि किसी नवीन वर्गीकरण-प्रणाली का प्रवर्तन किया होता तो क्या वे उस काल में प्रचलित पद्धति का कुछ भी उल्लेख न करते ?

(२) दूसरी ओर 'संगीत रत्नाकर' का शाङ्गदेव को पूर्ववर्ती ग्रन्थों में यदि 'संगीत मकरन्द' भी उल्लेख होता तो क्या वे पुराण-राग श्री-राग इत्यादि की वर्गीकरण-प्रणाली को अपने ग्रन्थ में किसी रूप में भी स्थान न देते ?

इन प्रश्नों में 'संगीत मकरन्द' को 'संगीत रत्नाकर' से पूर्ववर्ती मानने में बड़ी बाधा निहित है जिसके कारण इसका बाल पूर्ण संदिग्ध है।

'संगीत मकरन्द' में राग-वर्गीकरण के निम्नलिखित पृथक्-पृथक् रूप मिलते हैं:—

(१) रागों के प्रयोग-काल के अनुसार:—

(क) सूर्याश राग (प्रातःकालीन), (ख) चन्द्राश राग (सायंकालीन), (ग) मध्याह्नकालीन ।

(२) संपूर्ण-यादवादि अवस्था के अनुसार:—

(क) संपूर्ण राग, (ख) पाठ्य राग, (ग) शीघ्र राग ।

(३) 'लिंग' के अनुसार:—

(क) पुल्लिंग राग, (ख) स्त्रीलिंग राग, (३) नपुंसक राग ।

इन तीनों लिंगों के भन्तर्गत रागों के रसातुल्य प्रयोग के लिये 'संगीतमकरन्द' में कहा है:—

रीद्रेऽद्भुते तथा वीरे धुरागै परिगोयते ।

शृङ्गारहास्यवरणं स्त्रीरागैश्च प्रगीयते ॥

भयानके च बीमने शान्ते गायत्र्युलके ।

(सं० म० ६३, ६४)

अर्थात्—रीद्रे, अद्भुत तथा वीर रागों के प्रयोग में पुरुराग, शृङ्गार, हास्य, वरुण में स्त्रीराग और भयानक, बीमन्, शान्त, नपुंसक राग प्रयुक्त किये जायेंगे । (रस-रसि मे मह तल्लेह वदुत महत्-पूर्ण है) ।

(४) रागाङ्ग राग । इस श्रेणी में नारद (?) ने कुछेक राग पृथक् रूप से रखे हैं। यह रागभेद तो शाङ्गदेव के वर्गीकरण का एक अंग है। इसे विंग रागों में नारद ने स्थान दिया है, यह निरुल्ल अष्ट है।

(५) छ पुराण-राग और प्रत्येक को छ-छ त्रिसं (दो मन ने) । (दृष्टव्य परिशिष्ट सारिणी (ग)

इन निम्न २ वर्गीकरणों में अनेक राग-नामों की पुनर्दृष्टि हुई है जो स्वामादि हैं। साथ ही इन निम्न २ वर्गीकरणों के परस्पर सामंजस्य-स्थापना का कोई मन या उल्लेख ग्रन्थ में नहीं मिलता। राग-वर्गीकरण की इस परम्परा अस्मिन् सामग्रों को देगते हुए कुछ ऐसा सागता है कि यह एक संस्करण मान है जिसके पीछे ग्रन्थकार को अपनी कोई एव निश्चय दृष्टि अपना विचारवाच संभव नही है। आमतौर यह निर्णय करना कठिन है कि इस ग्रन्थ को भारतीय राग-वर्गीकरण के इतिहास में अपना विशेष-रूप में बड़ा, कैसा, किसना स्थान दिया जाय ।

मूर्तग के प्रकरण में अभी ऊपर देत आए हैं कि 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' नाम के ग्रन्थ में 'राग' (पुरुष) संगीतोपनिषत्सारोद्धार और 'भाषा' (स्त्री रागिणी) के टिके में राग-वर्गीकरण किया गया है। इसमें छः राग और प्रत्येक राग की छ-छः 'भाषा' बहो है जो परिशिष्ट में सारिणी (घ) में दिखाई गई हैं। राग और भाषा के नाम तथा रूप-ध्यान देने के पूर्व ग्रन्थकार कहते हैं :-

तावन्तस्ते तु रागाः स्युर्वाक्वदयो जायजातयः ।

पोडशसहस्रसंघनास्ते रागा गोपोडता मताः ॥

अर्थात्—सोलह सहस्र गोनियो द्वारा बनाए हुए उतने हो राग हैं ।

इस श्लोक से इस बात का संकेत मिलता है कि जिस प्रकार सिन्धु-नदी के साथ राग-रागिणी परंपरा का संबंध जोड़ा गया है, उसी प्रकार कुछ ग्रन्थों में कृष्ण और गोनियो के साथ भी संबंध जोड़ने की परंपरा रही है ।

शुभंकर वा 'संगीत दामोदर', पुण्डरीक विद्वत् वा 'रागमाला', दामोदर पण्डित का 'संगीत दर्पण' इत्यादि ग्रन्थों में राग-रागिणी-प्रत्येक १५ वीं से १७ वीं शताब्दी के काल में प्राप्त होते हैं। इन सबमें राग-रागिणी-वर्गीकरण के नामोल्लेख के अतिरिक्त इस वर्गीकरण के शास्त्रीय आधार की कोई चर्चा नहीं है। मत-हम परिशिष्ट में इन ग्रन्थों में उल्लिखित राग रागिणियों की तालिका-भाग प्रस्तुत कर रहे हैं। इस विषय पर हमारा अपना मतभेद इस प्रकार के उपसंहार में दिया जायगा ।

धीवण्ट की 'रसकौमुदी' (१६ वीं शताब्दी ई० वा उत्तरार्ध), मेन-पद्धति और राग-रागिणी-पद्धति का समन्वय धीवण्ट की रसकौमुदी करने का यत्न किया गया है। ११ मेलों के अन्तर्गत २३ पुरुष राग और १५ स्त्री रागिणी बहो हैं, जो परिशिष्ट में सारिणी (घ) में प्रस्तुत हैं। इन राग-रागिणियों के ध्यान भी दिये हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'रसकौमुदी' के इस वर्गीकरण से स्थूल समन्वय दिखाई देने पर भी मेलों के माध्यम से स्वर-दृष्टि और 'राग-रागिणी' के माध्यम से भाव-दृष्टि का वास्तविक समन्वय करने का शास्त्रीय यत्न इस ग्रन्थ में दिखाई नहीं देता ।

ऐतिहासिक कारणों से, राजकीय परिस्थितियों, तथा पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव-वश उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में संगीत-शास्त्र के विचारकों में, रागों के भाव-रूप के सूक्ष्म आधार पर निमित्त राग-रागिणी-पद्धति के पौराणिक रूप के प्रति रचि घटती गई हो और रागों के स्वर-रूप के स्थूल आधार पर निमित्त मेल-पद्धति के प्रभाव से घाट-निर्माण की ओर झुकाव हुआ हो ऐसा प्रतीत होता है। किन्तु क्रमशः बीसवीं शताब्दी में घाट-पद्धति का प्रचार हो जाने पर भी सामान्य जनमानस 'राग-रागिणी' के पौराणिक संस्कार को त्याग नहीं पाया है। यह हम आरंभ में ही कह आए हैं। अस्तु ।

राग रागिणी-वर्गीकरण का संक्षिप्त इतिहास हमने ऊपर देखा। यह एक उत्पन्न प्रश्न उपस्थित होता है कि राग-रागिणी-वर्गीकरण रागों के भाव-रूप का उनके स्वर-रूप के साथ गहरा संबंध तो निर्विवाद है, किन्तु इस समय का तात्त्विक विवेचन उपलब्ध ग्रन्थों में राग-रागिणी-वर्गीकरण के जो रूप प्राप्त होते हैं, उनमें रागों के भावमय पुरुषत्व और स्त्रीत्व की उनके स्वर-रूप के साथ कहाँ तक और वैसी संगति बैठाई जा सकती है? तब यह प्रश्न भी उपस्थित होता है कि प्रत्येक राग के साथ अनुकूल रागिणियों का भावार्थों के रूप में संबंध जोड़ने का आधार क्या था? इन प्रश्नों के साथ अन्य कितनी ही समस्याएँ जुड़ी हुई हैं। यथा :-

(१) उल्लिखित रागरागिणियों का कृष्ण-स्वररूप कैसे स्थिर किया जाए? इस संबंध में वडिनाथजी निम्नोक्त हैं :-

(क) राग-रागिणी-वर्गीकरण का प्रथम (?) प्रतिपादक ग्रन्थ 'संगीत मन्तर' (नारद ?) रागों के स्वररूप के विषय में मौन है ।

(स) मध्ययुग के ग्रन्थकार, दामोदर पंडित आदि के स्वर प्रकरण एवं राग-प्रकरण में कोई स्पष्ट सामञ्जस्य नहीं दीखता। स्वर प्रकरण में उन्होंने भरत के ही ग्राम-मूर्च्छना आदि का उल्लेख करके, मानो भरत ही उनके आधार हैं, ऐसा प्रवृत्त किया है। हम जानते हैं कि भरत के स्वर दो ग्रामों में निबद्ध हैं। उन द्वैमासिक स्वरो की यथावत् स्थिति और वीणा पर उनके वास्तविक स्थान समझने में वे ग्रन्थकार बैठे और चिन्ते असमर्थ रहे हैं, यह 'प्रणव भारती' प्रथम भाग में हम स्पष्ट कर आए हैं। वहाँ हम देख चुके हैं कि जिन वही हुए पञ्चमाम से भरतोक्त पञ्चमाम का विद्यो प्रकार का सामञ्जस्य नहीं है। हम यह भी जानते हैं कि मध्यममाम को उन्होंने अञ्जलि प्रदान की और विद्या कर दिया। द्विध्रुति को कभी त्रिध्रुति, तो कभी एवध्रुति, त्रिध्रुति को द्विध्रुति, चतुध्रुति को पंचध्रुति मान लेने से ध्रुवन्तरो और स्वरान्तरो का वास्तविक अर्थ तिरोहित हो गया। इसलिए वे लोग भरतोक्त स्वर-गाति ग्राम या नामोल्लेख करने पर भी भरत परंपरा को अपने ग्रन्थों में अशुभ रूप से निरूपित करने में असमर्थ रहे हैं। इन प्रकार तत्कालीन क्रियागत स्वरो का और उनके अपने ग्रन्थों में निरूपित स्वरो का सामञ्जस्य भी नहीं रह पाया। इसीलिए रागों को निरूपित करते समय वे सभी ग्रन्थकार उन रागों के स्वरो का अपने ग्रन्थोक्त स्वरो के साथ संबन्ध नहीं दिखा पाए। संबन्ध भरत की वही हुई स्वर, ध्रुति ग्राम-व्यवस्था उनके लिए अस्यष्ट रहने के कारण ही मध्ययुग के ग्रन्थकारों के स्वर-ध्रुति-ग्राम-प्रकरण के साथ उनके राग निरूपण का कोई सामञ्जस्य स्थापित नहीं हो सका है।

रागों के भावरूप के दर्शन के लिए उनके स्वर रूप का स्पष्ट दर्शन आवश्यक है, किन्तु उपर्युक्त विवेचन से हमने देखा कि उनके ग्रन्थोक्त स्वर रूप नितान्त अस्यष्ट हैं, ऐसी अवस्था में उन ग्रन्थकारों के दिए हुए रागरूपों में पुरुषत्व या स्त्रीत्व का अनुभव पाना असंभव प्रयास है। रागों का राग रागिणी में वर्गीकरण करने वाले 'संगीतदर्पण' के रचयिता पं० दामोदर ने अपने राग और रागिणियों का निरूपण करते समय किस राग में या किस रागिणी में कौन कौन से स्वर लगाते हैं, किस राग में किस ध्रुवन्तर वाले स्वरो का उपयोग होगा, यह कहने की बजाय अशुभ राग या अशुभ मूर्च्छना है, अधिप्राय स्वर्णों में ऐसा ही कहा है। जहाँ स्वर नामों के मध्यम से राग निरूपण किया है वहाँ भी स्वर-प्रकरण की अस्यष्टताओं और असमञ्जसताओं के कारण कोई प्रामाणिक निरूपण प्राप्त नहीं होता। यह सत्य है कि मूर्च्छना के स्वरो से राग का स्वरूप स्पष्ट होगा चाहे, किन्तु हम जानते हैं कि जैसे राग मूर्च्छनास्थित है, वैसे मूर्च्छना ग्राम के आधारित है। जब तक ग्राम यथावत् रूप से नहीं समझा जाता, तब तक उसके आधारित मूर्च्छनाएँ वैसे स्पष्ट हो सकती हैं ? 'संगीतदर्पण' तथा उनके समकालीन अन्य ग्रन्थों में यही असमञ्जसता विद्यमान है जो कि स्वर, ग्राम, मूर्च्छना के सम्बन्ध में इसके पूर्व हमें सभी मध्ययुग के ग्रन्थ ग्रन्थकारों के लिए कह आए हैं।

(२) दूसरी समस्या यह है कि रागों में प्रत्येक ध्रुवन्त रूप से पुरुषत्व या स्त्रीत्व का भावदर्शन ही जय असाध्य है तब यह समझने का यत्न कैसे किया जाय कि अशुभ राग के साथ अशुभ रागिणियों को भाषाओं के रूप में संबद्ध करने की पीछे क्या शास्त्रीय दृष्टि रही होगी ? भिन्न भिन्न ग्रन्थकारों ने राग रागिणी वर्गीकरण की जो तानिकाएँ हम परिशिष्ट में दे रहे हैं, उनमें यह दिखाई देता कि भैरव के साथ भैरवी, हिंडोल के साथ तीक्ष्ण ऐंमे धेमेल स्वर रूपों वाले रागा और रागिणियों का परस्पर सम्बन्ध जोड़ा गया है। राग रागिणी परंपरा में सभी ग्रन्थकारों का काल उनका प्राचीन नहीं है कि उन नामों वाले रागों के रूपों में आसूल परिवर्तन हो गया हो। इसलिए आज के प्रचलित राग रूपों का अनुसार उन ग्रन्थोक्त राग रागिणियों का सम्बन्ध जोड़ना, जानना अनुचित नहीं कहा जा सकता। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि आज से हमारे भगनी युग परंपरा के पालन का विचार किया जाय तो यह मानना होगा कि सात आठ पीढ़ी पूर्व तक की राग-परंपरा की हर्म्य अपरोक्ष यातारों प्राप्त है। इससे हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि प्रायः दो सौ वर्ष पूर्व की राग परंपरा हमें धनत रूप से प्राप्त है। आज से दो सौ वर्ष के काल में तथा इन मध्ययुगीन ग्रन्थकारों के काल में कुछ इतना अधिा व्यवधान नहीं है कि जिससे राग रूपों के आसूल परिवर्तन की वरतना की जा सके। आजके भैरव से भैरवी का क्या सामञ्जस्य हो सकता है ? नाममात्र में गुल्लिा तथा स्त्रीनिग-याची शब्द के साम्य ने आभास धनमें और कोई साम्य दिखाई नहीं देता। भैरवी को भैरव

की स्त्री कहने से उन दोनों का क्या परस्पर सम्बन्ध जुड़ सकता है ? इसी प्रकार अन्य कई राग-रागिणियों के बीच भी असामंजस्य साफ साफ दिखाई देता है। इस वैषम्य को हम किस प्रकार साम्य में परिचित कर दें और सामञ्जस्य की स्थापना करें, यह भी एक बड़ी उलझन है। हम देख आए हैं कि राग रागिणियों के स्वर रूप नितान्त असंगत हैं। ऐसी अवस्था में आज के प्रचलित राग-नामों के साथ जहाँ जहाँ ऐक्य या साम्य दिखाई दे वहाँ आज के प्रचलित रागस्वरों के अनुसार रागों और रागिणियों स्वर-रूपों का परस्पर सम्बन्ध पाचने की ओर दृष्टि जाना स्वाभाविक है। किन्तु, भैरव-भैरवी जैसे स्वतंत्रों में नाम-मात्र में पुल्लिग तथा त्रोल्लिगवाची शब्द-साम्य के अलावा और कोई साम्य दिखाई नहीं देता।

हम जानते हैं कि व्यवहार में स्त्री और पुरुष में शरीरगत तथा स्वभावगत वैषम्य रहता है। कोई यह सकता है कि स्त्री पुरुष के देह-वैषम्य और प्रकृति-वैषम्य को ध्यान में रखते हुए राग-रागिणियों का भावदर्शन करने काये ने स्वर या भाव के साम्य के आधार पर नहीं, अपितु उनके वैषम्य के आधार पर राग-रागिणियों का सम्बन्ध जोड़ा होगा। यदि ऐसा मान लिया जाए तब भी वैषम्य का आधार ग्रन्थकारों के अपने शब्दों में उपलब्ध होगा ही चाहिए, किन्तु राग-रागिणी-वर्गीकरण के ग्रन्थों में साम्य या वैषम्य किसी आधार का स्पष्टीकरण उपलब्ध नहीं होता। इसलिए यह कहना कठिन है कि इन राग-रागिणियों के वर्गीकरण के पीछे पुरुषत्व और स्त्रीत्व के भावदर्शन का कौन सा ठोस आधार स्वीकार किया गया होगा।

यहाँ यह कहना ही पड़ता है कि इस परंपरा के सभी उपलब्ध ग्रन्थकारों ने शास्त्रीय विवेचन तो दूर इस कल्पना के आधार का रक्षमाण भी संकेत तक नहीं दिया है; केवल तात्कालिक मान्य प्रस्तुत की हैं।

उपसंहार

राग और रागिणी के भाव रूप पर हमने साफ और वाचक उभय दृष्टि से विचार किया। क्या शब्द में, क्या स्वर में, क्या भाषा में, क्या संगीत में स्वर द्वारा हो भाव छट्टि का निर्माण किया जाता है। शब्दों से अर्थ की निष्पत्ति और अर्थ से भाव को उत्पत्ति के ठोस पहलू हमसे अज्ञात नहीं, शब्द और शब्द के अर्थ और उनके भाव-निरूपण के पीछे सूक्ष्म रूप से स्वर ही का बलवत्तर आधार रहता है। जिस संगीत में स्वर ही मुख्य उपादान है, उसका भाव-पक्ष कितना प्रबल है, उसके सम्बन्ध में इस प्रकरण के पूर्वार्ध में हम विशद विवेचन कर आए हैं। स्थानुभूति से हम दृढ़तापूर्वक मानते हैं कि स्वर में रसभाव को अघोर छट्टि सन्निहित है। गुलदुखादि संवेदनाओं से लेकर साहित्य ग्रन्थों में वर्णित रसों का दर्शन भी स्वर के माध्यम से किया जा सकता है। और इसीलिए इस प्रकरण के पूर्वार्ध में हमने स्वर और राग के भावरूप दर्शन में, उनके पुरुषत्व और स्त्रीभाव के दर्शन में, अपनी आस्था प्रकट की।

किन्तु जिन-जिन ग्रन्थकारों ने स्वर-राग के भाव-रूप का दर्शन करने का, उनके पुरुष-भाव, स्त्री भाव को भाग्यव्यक्त करने का जो यत्न किया है, वह वैसा है, सफ़ल है, निष्फ़ल है, पूर्ण है, अधूर्ण है, समर्थ है, असमर्थ है—यह जैसा भी है, वैसा हम इस प्रकरण के अन्तिम खण्डों में कह आए हैं।

स्वरो में, रागों में निःशब्देही स्त्री पुरुष का दर्शन होता है। उनसे भाव-रूप का अनुभव किया जा सकता है और उनको रस-भूति का दर्शन कर सकते हैं, किन्तु तमिगित्त मानी उनके अनुभव के लिए जिन उपादानों की आवश्यकता है, उनकी पूर्ण उपलब्धि पर वह दर्शन अवलम्बित है। वही उपादान या मध्यमाली अर्थों में उपलब्ध न होने से राग-रागिणियों का भाव-दर्शन सम्यक् रूप में स्पष्ट नहीं होता है। किन्तु भले ही इन ग्रन्थों में हमें यह प्रेरित दर्शन उपलब्ध नहीं होता, फिर भी राग रागिणियों के भाव-रूप की स्वीकृति कीरी मरना ही नहीं, अपितु सत्य पर प्रायुत पूर्ण दर्शन है।

मेल-पद्धति

मध्ययुग मे राग वर्गीकरण की दूसरी धारा मेल-पद्धति थी जिसका मुख्य कार्यक्षेत्र दक्षिण भारत रहा है। इस मेल-पद्धति के आद्य प्रवर्तक विद्यारण्य माने जाते हैं जिनका माल १४ वीं शताब्दी ई० है। उनका ग्रंथ 'संगीतसार' तो आज अनुपलब्ध है, किन्तु तानोर के रघुनाथ भूप के ग्रन्थ 'संगीत-मुष्पा' मे विद्यारण्य के मतानुसार जिन १५ मेलों का उल्लेख मिलता है, वे इस प्रकार हैं :-

नट्ट, * जुंजीरी, वराटी, धीरग, भैरवी, शंकराभरण, अहोरी, वसन्तभैरवी, सामन्त, काम्बोदी, मुखारी, सुद्धरामत्रिया, वेदारंगौळ, हेजुजी, देशाशी।

यद्यपि विद्यारण्य वर्णाटकीय संगीत के आद्य प्रवर्तक माने जाते हैं, तथापि उनका ग्रन्थ अप्रकाशित होने के कारण रामामात्य के 'स्वरमेलन-तानिनि' को ही आज उक्त संगीत-पद्धति का आधार-ग्रन्थ माना जाता है। रामामात्य के मेल धीर उन्नी स्वरावलीयां हम परिशिष्ट में तालिका (अ) में दे रहे हैं। यह स्मरणীয় है कि रामामात्य के आद्य मेल मुखारी को ही आज तब कर्णाटिक पद्धति में भरत के पञ्जग्राम का निदर्शक माना जाता रहा है। 'प्रणव-भारती' (प्रथम भाग) तथा संगीताञ्जलि पंचम भाग में हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि रामामात्य के मुखारी मेल की स्वरावली वास्तव में सा - रि - रि - म - प - ध - ध - सा है और उसमें द्विभ्रुति अन्तराल की त्रिभ्रुति तथा चतुभ्रुति अन्तराल को पंचभ्रुति मानने की भ्रान्ति निहित है, जिसके कारण उसे भरत के पञ्जग्राम के साथ एकरूप मान लिया गया है। किन्तु वस्तुतः भरत के पञ्जग्राम को उसमें किसी प्रकार भी प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है। फिर भी आज यह भ्रान्त धारणा प्रचलित है कि कर्णाटिक संगीत में भरत-परम्परा अद्युष्ण है और भारत के अन्य प्रदेशों में वह परम्परा छिन्न-भिन्न हो चुकी है। इस भ्रान्ति के अन्तर्धान में हमने जो ठोस प्रमाण दिये हैं वे 'प्रणव-भारती' तथा संगीताञ्जलि (पंचम भाग) में द्रष्टव्य हैं। यहाँ उनके पुनःसंश्लेष का अवकाश नहीं है।

रामामात्य के बाद सोमनाथ ने २३ तथा ब्यकटमल्ली ने ७२ मेल कहे हैं जो क्रमशः तालिका (ट) (ठ) में परिशिष्ट में संगृहीत हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मेलों की संख्या में वृद्धि होने पर भी शुद्ध 'स्वरावली' के विषय में सभी कर्णाटकीय ग्रन्थकारों ने रामामात्य का अद्विकल अनुसरण किया है। साथ ही वैकल्पिक स्वर-नामों के प्रयोग से सभी ने धोर अन्वयवस्था की छाप की है। वैकल्पिक स्वर नामों की वृष्टभूमि में मेल रचना के ये दो नियम हैं :-

(१) प्रत्येक मेल संपूर्ण होना चाहिए अर्थात् उसमें सातों स्वरा का प्रयोग होना चाहिए। और

(२) किसी भी मेल में किसी स्वर के दो रूपों का प्रयोग नहीं होना चाहिए।

इन दोनों नियमों का मेल पद्धति में किञ्चित् भी परिवर्तन नहीं हुआ है, अतिसु एक स्वर के दो रूपों का मुक्त रूप से ग्रहण करने पूर्वत्व का भय किया गया है और वैकल्पिक संज्ञाओं के प्रयोग से इन नियमों की शाब्दिक रक्षा का विफल प्रयास किया गया है। निम्न तालिका से यह बात स्पष्ट होगी :-

* रामामात्य का आद्य मेल मुखारी है और उन्नी को ब्यकटमल्ली ने वनवागी नाम दिया है। किन्तु विद्यारण्य ने मुखारी के स्थान पर 'नट्ट' को माल में स्वीकार किया है, यह ध्यान देने की बात है। नट्ट मेल के स्वर रघुनाथ भूप ने इस प्रकार कहे हैं :-

पद्मस्तया मध्यमवक्ष्मी च शुद्धाः स्वराः पट्टभ्रुतिभिः समेत ।

सर्ध्वजः स्यादपमोऽन्तरथ गान्धारकः वाचनिको निपादः ॥

अर्थात् सा - रि - म - प - ध - ध - रि - रि - सा यह नट्ट मेल की स्वरावली है।

मेलो मे आए हुए एक स्वर के दो-दो रूप (वास्तविक श्रुत्यन्तर सह)	हिन्दुस्तानी स्वर नाम	प्रयुक्त मेग ध्रुवराया में स्वर नाम (कल्पित श्रुत्यन्तर सह)
द्विश्रुति-चतु श्रुति श्रपम	वोमल, शुद्ध श्रपम	शुद्ध श्रपम, शुद्ध गान्धार
चतु श्रुति श्रपम पट्श्रुति गान्धार (कण्ठिकीय सज्ञा मे शुद्ध गान्धार, साधारण गान्धार)	शुद्ध श्रपम, वोमल गान्धार	पञ्चश्रुति श्रपम, साधारण गांधार
पट्श्रुति (साधारण) गान्धार, सप्तश्रुति (अन्तर) गान्धार	वोमल, शुद्ध गान्धार	पट्श्रुति श्रपम, अन्तर गांधार
द्विश्रुति धैवत, चतु श्रुति धैवत	वोमल, शुद्ध धैवत	शुद्ध धैवत, शुद्ध निपाद
चतु श्रुति धैवत—पट्श्रुति निपाद (कण्ठिकीय स्वरसज्ञा के अनुसार शुद्धनिपाद, वैशिक निपाद)	शुद्ध धैवत, वोमल निपाद	पट्श्रुति धैवत, पट्श्रुति निपाद
पट्श्रुति (वैशिक) निपाद, सप्तश्रुति (काकली) निपाद	वोमल, शुद्ध निपाद	पट्श्रुति धैवत, काकली निपाद

नोट —दो मध्यम वाला कोई मेल नहीं है ।

वैकल्पिक सज्ञायो की इस व्यवस्था के प्रतिरिक्त मेल-पद्धति को एक बढ़त बढ़ो युक्ति है—मनेन विवादो मेलों की सृष्टि । जिनमे रञ्जना न हो, जो विवादी दोष स भरे हों ऐसे मेलो की संगीत में क्या उपयोगिता हो सकती है ? 'राग' तो रञ्जना के लिए ही होता है । जिसमे जनरजन, मन्दरजन, आस्मरण न हो वह 'राग' ही नहीं कहला सकता । विवादित्व दोष वाले मेलो से जन्म 'राग' भवने नाम को ही सार्थक नहीं कर सकते । इसीलिए अधिकारा मेलो की स्वरावलियाँ गायन वादन के लिये अनुपयोगी मानी गई हैं क्योंकि वे न कर्णप्रिय हैं, न आत्मप्रिय हैं । किन्तु ऐसे अनुपयोगी मेलो को शास्त्र में स्थान देने से क्या लाभ ? 'मशास्त्रीय' को बलात् शास्त्रीय बनाने की प्रवृत्ति से क्या लाभ ? रक्ति-हानि के इस दोष के सम्बन्ध मे श्री के, वासुदेव शास्त्री के निम्नोद्धृत वचन प्रासंगिक हैं—

"The pell mell of views resulted in the theoretical computation of all possible Melas using the swaras in common usage 16 swaras were settled as of common use But they had only twelve Swarasthānas With these the 72 melas were coined purely on a mechanical basis* I may repeat here again that the classification, had nothing to do with melody or 'Rakti' which is the soul of Rāga Bhāva or Rasa The classification was intended to exhaust all the possibilities of the arbitrary aspect of music but not its scientific aspect . . . Thus far I have tried to show that the Mela or Thāta has neither the sanction of Śāstras or the science of melody, nor is it a safe guide for singing our rāgas Knowing all this, we are still clinging to the mechanical and uncertain guide calling it our 'Sangita Śāstra' Rakti is the foreman and Mela is the time keeper in the workshop of music."

(Is Mela or Thāta' a Shastric concept ? Nādarūpa Vol I pp 26-32)

मेल-पद्धति की स्वर-सम्बन्धी अव्यवस्था, रक्ति-हानि दोष तथा याचिकता के इस मध्यम दिग्दर्शन के पश्चात् अब हम इसको यद्दोषदा घाट पद्धति का स्थल निराण करेगे ।

* व्यवटमेलो के ७२ मेल परिशिष्ट में तालिका (४) मे दृश्य हैं ।

थाट पद्धति

दक्षिण की मेल पद्धति के ढाँचे पर वर्तमान काल में १० थाटा के अंतर्गत भारतीय संगीत के रागों का वर्गीकरण करने का जो यत्न किया गया है उसका स्रोत में विवेचन करना अब यहाँ क्रमप्राप्त है। पं० विष्णुनारायण भातखण्डे उपनाम चतुरपण्डित इस थाट पद्धति के प्रवर्तक माने जाते हैं, यद्यपि कुछ लोग ऐसा भी मानते हैं कि १० थाट की पद्धति के मूल आविष्कारक कोई अन्य व्यक्ति हैं। इस पद्धति के आविष्कारक जो भी कोई रहे हों, इसका विपुल प्रचार पं० भातखण्डे के ग्रन्थों द्वारा ही हुआ है इसलिए उनके नाम के साथ इसका अभिन्न सम्बन्ध है। उनके द्वारा निरूपित १० थाट निम्नोक्त हैं :—

बिलावल, काफी, भैरवी, कल्याण, सप्तमज, आसावरी, भैरव, पूर्वी, मारवा, तोड़ी।

इन थाटों की रचना के बारे में ऐसा कहा जाता है कि विज्ञान के स, रे, ग, म, प, य की छ मूर्च्छनाम्रा* से क्रमशः बिलावल, काफी, भैरवी, कल्याण, सप्तमज, आसावरी इन छ थाटों की और भैरव, पूर्वी, मारवा और तोड़ी इन चार थाटों में क्रमशः कोमल रिष के साथ शुद्ध मध्यम का योग, कोमल रिष के साथ तीव्र मध्यम का योग, कोमल मध्यम तथा तीव्र मध्यम के साथ शुद्ध धैवत का योग और कोमल ऋषभ, गान्धार, धैवत के साथ तीव्र मध्यम तथा शुद्ध निषाद का योग कर के इन दस थाटों की रचना की गई है।

हम देख चुके हैं कि कर्णाटकीय मेल पद्धति में एक स्वर के दो रूपाँ का प्रयोग निषिद्ध माना गया है। फिर भी हम जानते हैं कि उनके यहाँ एक स्वर के दो-दो रूपाँ का प्रयोग मेल में मुक्त रूप से हुआ है। ऐसे मेलों में वैकल्पिक स्वर-संज्ञाओं के प्रयोग द्वारा तत्सम्बन्धी नियम-भंग से बचने का अवसर यत्न किया गया है। ध्वनि ही बनाए हुए नियम का भंग होने पर भी वैकल्पिक नाम दे कर स्वरों के दो-दो रूप प्रयुक्त किये गये हैं। थाट पद्धति में थाट की मूल स्वररावली में भले ही एक स्वर के दो रूपाँ का प्रयोग नहीं किया गया है, किन्तु फिर भी इस पद्धति में एक अन्य असंभोज्यता उत्पन्न हुई है जो निम्नोक्त है।

जनक थाटों में पं० भातखण्डे ने केवल सप्त स्वरों का ही प्रयोग मान्य रखा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि उनके अन्य रागों में अनिवार्य रूप से प्रयुक्त होनेवाले कई स्वर ऐसे पाए जाते हैं जिन्हें जनक थाटों में कोई स्थान प्राप्त नहीं है। इतना ही नहीं, कई रागों के तो भ्रम या वादी स्वर ऐसे हैं जो उनके जनक थाट में कहीं नहीं हैं। इन प्रश्नों का कोई तर्कसंगत उत्तर प्राप्त नहीं होता कि जो स्वर मूलरूप थाट में ही नहीं है, वह अन्य रागों में कहीं से, किस नियम से प्राप्त सकता है? अपना अन्य रागों में वादी या प्राण-स्वर के रूप में उसका जैसे प्रयोग हो सकता है? कुछ उदाहरणों से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायेगी।

(क) कल्याण थाट के अन्य रागों में कैदार, कामोद, हमीर, विहाण, गौडधारण इत्यादि का समावेश माना है। इन सभी में शुद्ध मध्यम का बहुल प्रयोग पाया जाता है। और तीव्रमध्यम अल्प मात्रा में प्रयुक्त होता है। इतना

❖ बिलावल के निषाद की मूर्च्छना से सारिगमपधनि—यह स्वररावली प्राप्त होती है। उसी में से शुद्ध मध्यम निराल कर पञ्चमको स्थान देनेसे तथा कोमल निषाद के स्थान पर शुद्ध निषाद रखने से तोड़ी थाट की निष्पत्ति हो जाती है।

† दस थाटों की स्वररावली इस प्रकार है :—

१—बिलावल—सारिगमपधनि २—काफी—सारिगमपधनि ३—भैरवी—सारिगमपधनि ४—कल्याण—सारिगमपधनि ५—सप्तमज—सारिगमपधनि ६—आसावरी—सारिगमपधनि ७—भैरव—सारिगमपधनि ८—पूर्वी—सारिगमपधनि ९—मारवा—सारिगमपधनि १०—तोड़ी—सारिगमपधनि

हो नहीं, वेदार जैसे राग में शुद्ध मध्यम प्राण स्वर के रूपमें प्रतिष्ठित है और कोमल निपाद भी राग-रूप के निर्माण में काफी सहायक होता है। इससे प्रश्न होना है कि कल्याण धाट में जिन स्वरों का समूचा समान है ऐसे शुद्ध मध्यम और कोमल निपाद जिसमें प्रयुक्त होते हैं ऐसा वेदार राग कल्याण के अन्य रागों में कैसे रखा गया है ? इन अन्य रागों में धाट के स्वरों के अतिरिक्त जो जो स्वर प्रयुक्त होते हैं वे सब क्या केवल आर्गन्तुक्, निपादी या मनाक् स्वरों के रूप में भ्रमना राग में चमत्कृति दिगाने के लिए ही प्रयुक्त होते हैं ? क्या यह सत्य नहीं है कि वे कई स्थलों पर राग के भ्रम, प्राण या वारी का स्थान पाते हैं ?

(ख) कल्याण धाट की ही भाँति मारवा धाट तथा सत्रज्य रागों में भी ऐसी ही भ्रमनास्था दिखाई देती है। मारवा धाट से उत्पन्न सलित राग का प्राण शुद्ध मध्यम ही है। सभी क्रियानुसल गुणी इस धाट को जानते हैं। उसी एक स्वर पर सलित का दारोमदार है, उसका अस्तित्व ही 'ममूम' इस शुद्ध मध्यम युक्त क्रिया पर अवलंबित है। किन्तु इस सलित के जनक के रूप में जिस मारवा धाट का चुनाव किया गया है उस धाट के मूल में ही शुद्ध मध्यम का अभाव है।

(ग) तद्वत् समाज में शुद्ध निपाद को स्थान नहीं है, केवल कोमल निपाद ही रखा गया है। किन्तु उस धाट के अनेक अन्य रागों में दोनों निपादों का प्रयोग अनिवार्य है। यथा समाज, देश, तिलनरामोद, क्रिमोटो, तिलंग इत्यादि।

(घ) बाफ़ी धाट में भी केवल कोमल 'ग नि' को ग्रहण किया गया है जब कि उसके अनेक अन्य रागों में कोमल 'ग नि' के अतिरिक्त शुद्ध 'गनि' का भी विपुल प्रयोग मिलता है।

(ङ) बिलावल धाट के अन्य राग अर्थात् बिलावल का ध्यान विपुल प्रचार है और उसमें दो निपाद का प्रयोग अनिवार्य है। बिलावल के प्रायः अन्य सभी प्रकारों में भी शुद्ध निपाद के साथ-साथ कोमल निपाद का न्यूनाधिक प्रयोग मिलता है। किन्तु बिलावल धाट में कोमल निपाद को कोई स्थान नहीं है।

स्वर्यं प० भातखण्डेजी के बड़े हुए नियमानुसार धाट के सप्त स्वरों में से सभी का ग्रहण करके संपूर्ण, किसी एक का त्याग करके पाञ्च और किसी दो का त्याग करके त्रौडव धादि जातियों के रागरूप बनाए जा सकते हैं, किन्तु धाट के अतिरिक्त कोई नया स्वर अन्य रागों में समाविष्ट करने का कोई नियम नहीं है। उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि जहाँ-जहाँ जिन जिन रागों में धाट में समाविष्ट स्वरों के अतिरिक्त जिन जिन अन्य स्वरों का प्रयोग विहित है, उनके लिए उनके धाट के नियमान्तर्गत कोई विधि नहीं है। यदि यह कहा जाए कि धाट में जो स्वर नहीं है, वह यदि अन्य रागों में है तो उसे आर्गन्तुक् स्वर के रूप में समाविष्ट कर लिया जाए तब ऐसे भ्रमनास्था में धाट की नियम-व्यवस्था कैसे रहेगी ? अर्थात् यदि किसी भी धाट में कोई भी स्वर ऊपर से समाविष्ट करने की छूट हो तो फिर प्रयुक्त धाटों के अस्तित्व का नियमन कैसे होगा ? उदाहरण के लिए—बिलावल में तीव्र मध्यम का समावेश करने से कल्याण धाट भ्रमना कल्याण में शुद्ध मध्यम का ग्रहण करने से बिलावल धाट, तद्वत् पूर्वी में शुद्ध मध्यम का ग्रहण करने से भैरव धाट और भैरव में तीव्र मध्यम का समावेश करने से पूर्वी धाट, उसी प्रकार समाज में शुद्ध निपाद जोड़ देने से बिलावल और बिलावल के कोमल निपाद जोड़ देने से समाज धाट का निर्माण होने लगेगा। ऐसी भ्रमनास्था में धाटों के पुष्य-पुष्य स्वरूप का नियामक बौन सा सत्य रहेगा ?

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि प० भातखण्डेजी के बड़े हुए दसों धाटों में अनियमितता, अनूयता और असमंजसता के दोष चिद्यमान हैं। उनके अन्य जनक भाव में भी जहाँ दोषों का दर्शन होता है।

हम जानते हैं कि धाट को जनक का स्थान दिया गया है और रागों को उन जनक धाटा से अन्य माना गया है। यहाँ प्रश्न यही होता है कि जो धाट धीज में नहीं है, वह फल में कहाँ से आया, जो स्वर जनक धाट ही में नहीं हैं ऐसे स्वरों का प्रयोग उसके अन्य रागों में कैसे समीचीन हो सकता है ? यह तो अपने ही हाथों 'मूले बुठाराधत' जैसा अत्याय गद्दी हो रहा है ?

जैसे सितार में 'चलघाट' 'अचलघाट', ये नाम पद वाधने की व्यवस्था-विशेष के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं वैसे ही राग वादन के सौकर्य के लिए राग की स्वरावली के अनुसार पदों को सिताराने की जो क्रिया की जाती है उसे भी घाट मिलाना कहते हैं। इसीलिए सितार-वादक राग की फर्माइश पूछने के पहले यह पूछते हैं "कौन सा घाट मिलाएँ ?" इस प्रकार वादन सौकर्य के सम्बन्ध में प्रयुक्त हुआ 'घाट' शब्द राग वर्गीकरण में स्थान पा गया है। वादन विधि के प्रसंग में इस शब्द का केवल एक स्थूल स्वरावली से तात्पर्य था, किन्तु राग वर्गीकरण में इसके साथ जनक जन्म-भाव का अर्थ भी संबद्ध हो गया, यद्यपि इसका स्वरूप स्थूल स्वरावली-विशेष ही बना रहा।

इस प्रकार हमने रागों के स्थूल स्वर रूप से सम्बद्ध मेल और घाट पद्धति को भाषोचनात्मक दृष्टि से देखा। मेल पद्धति में केवल गणित पर आधृत यान्त्रिक रचना, स्वरो की वैकल्पिक संज्ञाओं की अव्यवस्था और रक्ति के प्रति दुर्लक्ष्य हमने देखा। साथ ही मेलकुलोत्पन्न घाट पद्धति की अपूर्णता, असमंजसता, अनिर्दिष्टता भी हमने देखा।

उपसंहार

रागवर्गीकरण के प्रस्तुत प्रकरण में हमने मतंग-शास्त्रदेव के ग्रामराग-देशीराग-वर्गीकरण से ले कर वर्तमान युग की घाट पद्धति तक का विवेचनात्मक दर्शन किया। इस विवेचना से ग्राम-राग-वर्गीकरण की भाज के लक्ष्य के प्रसंग में अटलता, राग-रागिणी-वर्गीकरण की पौराणिकता, मेल-पद्धति की यान्त्रिकता एवं असमंजसता तथा घाट-पद्धति की अपूर्णता का हमने अनुभव किया।

रागवर्गीकरण की इन पद्धतियों के सम्यक् अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि आज के लक्ष्यगत रागों के वर्गीकरण के लिए एक पूर्ण, समंजस, सुसंगत और शास्त्रीय नूतन वर्गीकरण-पद्धति की अनिवार्य आवश्यकता है। जैसे स्वरशास्त्र की गुणधर्मों सुलभाने के लिए हमें भरत की शरण लेनी पड़ी है, इसी प्रकार इस अपेक्षित नूतन राग-वर्गीकरण पद्धति के लिए भी भरत की ही शरण लेना आवश्यक है। तदनुसार भरत की ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति पर आधृत नूतन वर्गीकरण हम 'प्रणव-भारती' के द्वितीय भाग में प्रस्तुत करेंगे। तद्वत् राग-रागिणी-वर्गीकरण के आधारभूत वैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार प्राथमिक लक्ष्यगत रागों का एक नूतन राग-रागिणी-वर्गीकरण भी हम प्रस्तुत करेंगे जिससे जनमानस में घुबो हुई इस पद्धति की ठोस रूप से स्थापना हो सकेगी और उसे बोरी पकोल-बदना समझ कर उसका उपहास करने की प्रवृत्ति का अन्त हो सकेगा। इस प्रकार रागों के स्वर-रूप और भाव-रूप के सम्बन्ध से राग-रागिणी-वर्गीकरण और मुख्यतः स्वर-रूप के आधार पर ग्राम मूर्च्छना-पद्धति से वर्गीकरण—इन दो नवीन वर्गीकरण-प्रणालियों में ग्राम-राग-वर्गीकरण से लेकर घाट-पद्धति तक की सभी प्रणालियों के ब्राह्म तरवों का समावेश और उनमें निहित कठिनायों अथवा असमंजसताओं का परिहार हो सकेगा। रागों के आन्तरिक भाव-मन्त्र और बाह्य स्वर-मन्त्र दोनों के सर्वांगीण विचार से जो नूतन वर्गीकरण प्रस्तुत होगा वह महर्षि भरत की वृत्ता से निष्पन्न ही हमारी अद्वितीय राग-पद्धति की नवीन गौरवमय आलोक में उद्भासित करेगा।

राग-वर्गीकरण का परिशिष्ट

भिन्न-भिन्न ग्रन्थकारों के राग-वर्गीकरण की तालिकाएं

तालिका (क) मत्तंग

ग्रामराग (पाँच गीतियों के अन्तर्गत)

- शुद्धा अधया-चोक्षा गीति—पड्जग्रामान्तर्गत राग—शुद्धसाधारित, शुद्धवैशिवमध्यम ।
मध्यमग्रामान्तर्गत राग—पाडव, शुद्धवैशिक ।

टिप्पणी—इन चार शुद्ध रागों के अतिरिक्त मत्तंग ने 'पञ्चम' को भी इसी श्रेणी में गिनाई की है, किन्तु उसका लक्षण नहीं दिया है। अतः यह कहना कठिन है कि वे 'पञ्चम' को किस ग्राम वा राग मानते थे। शाङ्गदेव ने इसे मध्यमग्राम में रखा है ।

२ भिन्ना गीति—पड्ज० भिन्नपडज, भिन्नवैशिव-मध्यम ।

मध्यम०—भिन्नवैशिक, भिन्नतान ।

३. गौड़ी गीति—पड्ज०—गौडपञ्चम, गौड़कैशिव-मध्यम ।

मध्यम०—गौड़कैशिक ।

४. राग गीति—पड्ज०—टकराग, सीवीरक, षोडश-राग, टकरवैशिक, वेसरपाडव । मध्यम०—हिन्दोल, गालव-पञ्चम, गालववैशिक ।

५. साधारण गीति—पड्ज० शर, वक्रुभ, रूप-साधारित, रेवगुप्त । मध्यम०—हमणपञ्चम, गान्धारपञ्चम, नतं । कुल ग्रामराग २७ जिनमें से १५ मध्यमग्राम के, १२ पड्जग्राम के ।

भापा विभापा आदि

भापा चतुर्विध—१. मूलभापा, २. संकीर्ण भापा, ३. देशज भापा, ४. छायामात्राश्रया भापा । ये चार प्रकार की भापा गिनाने के बाद मत्तंग ने कहा है :—

पूर्व ग्रामद्वयं प्रोक्तं ग्रामरागास्तदुद्भवाः ।

ग्रामरागोद्भवा भापा भापाम्बध विभापिनाः ॥

विभापाम्बध संजातास्तथा चान्तरमापिनाः ॥

अर्थात् पूर्वोक्त ग्रामद्वय से भापा उत्पन्न होती है, भापा से विनाभा और विभापा से अन्तरभापा उत्पन्न होती हैं । इसके पश्चात् ही मत्तंग ने ग्रामरागों के अन्तर्गत निम्नलिखित भापा गिनाई हैं :—

टकराग की भापाएं—१. प्रवणा २. प्रबणोद्भवा
३. वेरझिका ४. छेवाटी ५. मालववेसरिका ६. गुर्वरी
७. सौराष्ट्री ८. सैन्धवी ९. वेसरी १०. पञ्चमा ११. रवि-
चन्द्रा १२. अम्बाहोत्रे १३. सलिता १४. बोलाहली
१५. गान्धारपञ्चमी १६. मध्यमग्रामदेशा ।

मालवकैशिक की भापाएं—१. दृष्टा २. बाद्यवेस-
रिका ३. हर्षपुत्री ४. माङ्गाली ५. सैन्धवी ६. आनीरी
७. सजरी ८. शुञ्जरी ।

वक्रुभ की भापाएं—१. वाम्बोजा २. मध्यमग्रामिका
३. सालवाहनिना ४. भागवर्धनी ५. मुहरो ६. शबनिधता
७. भिन्नपञ्चमी ।

हिन्दोलक की भापाएं—१. वेसरा २. मजरी
३. छेवाटी ४. पड्जमध्यमा ५. मधुरी ।

पञ्चम की भापाएं—१. आभीरी २. भाविनी
३. माङ्गाली ४. सैन्धवी ५. गुर्वरी ६. दादिनात्या
७. आनीरी ८. अत्रोद्भवा ९. श्रवणी १०. वैशिणी ।

भिन्नपड्ज की भापाएं—१. विशुद्धा २. दक्षिण
३. गान्धारी ४. श्रीवण्टी ५. वीराठी ६. माङ्गाली
७. सैन्धवी ८. वातिन्दी ९. पुनिन्दी ।

सीवीरक की भापाएं—१. सीवीरी २. वेगमध्यमा
३. साधारिता ४. गान्धारी ५. सैन्धविनी ।

भिन्नपञ्चम की भापाएं—१. शुद्धा २. भिन्ना
३. वाराही ४. धैवतमूर्धिता ५. वराठी ।

मालवपञ्चम की भाषा—१. भाविनी २. लोकभाविनी
बोट्टराग की भाषा—१. मगली।

टक्कुरैशिक की भाषा—१. वेगमध्यमा २. मालवा
३. मित्रवालीया (? यहाँ
पर पाठ खण्डित है ।)

वेसरपाडव की भाषा—१. द्राविडी २. बालपाडनदा ।

भिन्नतान की भाषा—१. तानोद्भवा
गान्धार पञ्चम की भाषा—१. गांधारी (? पाठ खण्डित है)
रेवगुप्त की भाषा—१. लोचरचिका ।
पञ्चमपाडव की भाषा—१. शवास्था ।

इस प्रकार मतग ने प्राय ७७ भाषाओं का नामोल्लेख
किया है और प्राय सभी के लक्षण भी ब्रह्म स्वर विस्तार
सहित दिये हैं । इन्हीं भाषाओं को उन्होंने 'विभाषा द्वारा
भूषित' बताया है । श्रुत्य रूप से त्रिभाषा का स्पष्ट निरूपण
वर्तमान खण्डित उपलब्ध पाठ में नहीं है । यथा —

सदयलशाणसयुक्ता प्रस्तारेण समञ्जिना ।
उना श्याया समीचोना विभाषामिचिभूषिता ॥

• इस भाषा निरूपण के बाद मतग श्रुत्य रूप से देशी
रागों के वर्णन की प्रतिज्ञा करते हैं, किन्तु वह अद्य भाव
अत्यंत खण्डित रूप में उपलब्ध है, केवल पुष्पक नाम इस
प्रकरण में मिलते हैं । यथा—वच्छेक्षी, माङ्गाली,
हम्मागिवा, पुलिन्दिका, वण्ठी ।

सालिका (स), शाङ्गदेव

शामराग (पाँच गीतिया के अन्तर्गत)

१ शुद्धा गीति—पडज०—शुद्धवैशिनमध्यम, शुद्ध-
साधारित, पडजग्राम । मध्यम०—पञ्चम, मध्यमपाम,
पाडज शुद्धवैशिन ।

२ भिन्ना गीति—पडज०—(भिन्न) वैशिन-
मध्यम, भिन्नपडज मध्यम०—(भिन्न) तान, (भिन्न)
वैशिन, भिन्नपञ्चम ।

३ गौड़ी गीति—पडज०—गौर्वैशिनमध्यम, गौड-
पञ्चम । मध्यम० गौडवैशिन ।

४. वेसरा गीति—पडज०—टक्कुरैशिक, वेसरपाडव,
सौरीर । मध्यम०—बोट्ट, मालवकैशिक, मालवपञ्चम ।
द्वैशामिच-टक्कुरैशिक, हिन्दोल ।

५ साधारणी गीति—पडज०—रूपसाधार (साधारित)
शक, भम्माएपञ्चम । मध्यम०—नर्त, गान्धारपञ्चम,
पडजवैशिन । द्वैशामिच—वकुम ।

इस प्रकार शामराग कुल ३० कहे हैं ।

उपराम—(षाठ) शकतिलन, टक्कुरैशिक, कोकिला-
पञ्चम, रेवगुप्त, पञ्चमपाडव, भावनापञ्चम, नागगांधार,
नागपञ्चम ।

श्रीराग, नट्ट, वङ्गाल (द्विवचन रख कर वङ्गाल राग
के दो रूप कहे हैं), भास, मध्यमपाडव, रक्तहस, कोहहास,
प्रसव, भैरव, ध्वनि, मेघ, सोम, कामोद (यहाँ भी द्विवचन
रखा है), आम्नपञ्चम, वदर्प, देशाख्य, वैशिवकुम, नट्ट-
नारायण । ये २० राग उपरागा स श्रुत्य कहे हैं और
इनका किसी गीति के साथ भी संबन्ध नहीं जोड़ा गया है ।

भाषाओं के जनक राग (याष्टिक मत से)—सौरीर,
वकुम, टक्कुरैशिक, पञ्चम, भिन्नपञ्चम, टक्कुरैशिक, हिन्दोल, बोट्ट,
मालवकैशिक, गांधारपञ्चम, भिन्नपडज, वेसरपाडव, मालव-
पञ्चम, तान, पञ्चमपाडव । कुल १५ । इनकी भाषाएँ क्रमशः
इस प्रकार गिनाई हैं —

सौरीर—१. सौरीर २. वेगमध्यमा ३. साधारिता
४. गान्धारी ।

वकुम—१. भिन्नपञ्चमी २. कामोदो ३. मध्यम-
पञ्चमी, ४. रगनी ५. मधुरी ६. श्यामिथा । इन भाषाओं
के अतिरिक्त इन के अन्तर्गत ये विभाषा भी कही हैं—
१ भोगवर्धनी २ आनीरिका ३ मधुरी ।

अन्तर भाषा—१. शालाहृदिवा ।

टक्कुरैशिक—१. त्रयणा २. त्रयणाग्र ३. वैरणी
४. मध्यमपामदेहा, ५. मानवयेजरी ६. धैराटी ७. शैषनी
८. कोराहना ९. पञ्चमपामिजा १०. गौराट्टी ११. मध्यमी
१२. वेसरणी १३. गांधारपञ्चमी १४. माननी
१५. तानरागिता १६. गान्धारी १७. रत्रिचन्द्रिका,
१८. ताता १९. भम्माहृदिवा २०. वगरी ।

विभाषा—१. देशारवर्धनी २. धाम्नी ३. पुर्जरी
४. भावनी ।

पञ्चम—भाषा १. कैशरी २. भावनी ३. तानोद्भवा
४. आभोरी ५. पुर्जरी ६. सैन्धवी ७. दाक्षिणात्या
८. अन्धरी ९. माङ्गली १०. भावनी । विभाषा—
१. भम्मणी २. आयालिका ।

भिन्नपञ्चम—भाषा—१. धैवतभूषिता २. शुद्धभिन्ना
३. वाराटी ४. विशाला विभाषा—१ कौरवी ।

टक्कुरैशिक—भाषा—१. मालवा २. नितवलिता ।
विभाषा—द्राविडी ।

प्रेङ्गुरु—भाषा—१. वेसरी २. सूतमञ्जरी ३.
पङ्कजमध्यमा ४. गधुरी ५. मित्ररीराली ६ गौडी ७.
मालववेसरी ८. खैरानी ९ पिचरी ।

घोह—भाषा माङ्गली ।

मालवकैशिक—भाषा—१ बाङ्गाली २. माङ्गली
३ हर्षपुरी ४. मालववेसरी ५ सजनी ६ पुर्जरी ७.
गौडी ८. पीराली ९. अर्धवेसरी १०. शुद्धा ११ मालवस्था
१२ सैन्धवी १३ आभोरिका । विभाषा—१ काम्भोजी
२. देवारवर्धनी ।

गान्धारपञ्चम—भाषा—गान्धारी ।

भिन्नपङ्कज—भाषा—१. गाधारवल्ली २. वच्छेली
३. स्वरवल्ली ४ निपादिनी ५. प्रवणा ६ मध्यमा ७ शुद्धा
८ दाक्षिणात्या ९ पुलिन्दा १० तुम्बुटा ११ पङ्कजभाषा
१२ गालिकी १३. सजिता १४ श्रीरङ्गिका १५ बाङ्गाली
१६ गान्धारी १७. सैन्धवी । विभाषा—१ पीराली २
मालवा ३ फालिकी ४ देवारवर्धनी ।

वैसरपाङ्कज—भाषा—१ नादा २. बाह्यपाङ्कजा ।

विभाषा—१ पार्वती २ श्रीकण्ठी ।

मालवपञ्चम—भाषा—१. वेदवती २ भावनी
३ विभाषनी ।

तान—भाषा—१. तानोद्भवा ।

पञ्चमपाङ्कज—भाषा—१ पोता ।

रेवसुप्त—भाषा—१ शवा । विभाषा—
१. पल्लवी ।

अन्तरभाषा—१ भाववलिता २ किरणवती
३ शन्वलिता ।

कुल ६६ भाषा, २० विभाषा और ४ अन्तरभाषा ।

ऊपर उद्धृत भाषा नामों में कई स्थलों पर पुनरुक्ति
दिखाई देती है। इस नाम साम्य-जनित पुनरुक्ति के लिए
शाङ्गदेव ने कहा है कि 'ल्यप मे भिन्नता होने पर भी कई
भाषाओं में नाम-साम्य है। यथा :—

नामसाम्यं तु बोधाच्चिद् भिन्नानामपि सद्यत ॥

(स र २।१।४७)

देशीराग

१ रागाङ्ग—(पूर्वप्रसिद्ध नाम)—१ शंकरभरण
२ घण्टारव ३. हसन ४ दीपक ५ रीति ६ कर्णाटिका
७ लानी ८. पाषाण्यी । ('अधुना' प्रसिद्ध नाम) १.
मध्यमारि २ मालवश्री ३ तोडी ४ बङ्गाल ५ मैरव ३
वराटी ७ पुर्जरी ८ गौड ९ कोसाहल १० वसन्तक ११
घयासी १२ देशी १३ देशाह्वय ।

२ भाषाङ्ग—(पूर्व प्रसिद्ध नाम)—१. गान्धारी
२ बेहारी ३ अस्तिता ४ उपली ५ गौली ६. नादान्तरी
७ नीनोलली ८ छाया ९ तरङ्गिणी १० गान्धारगानिका
११ वेरणी । ('अधुना' प्रसिद्ध नाम)—१ डोम्बरी २
सावेरी ३. वेतावली ४ प्रथममञ्जरी ५ घादिनामोदिना ६
नागध्वनि ७ शुद्धवराणिका ८ नट्टा ९ कान्ठिकाङ्गाल ।

त्रियाङ्ग—(पूर्वप्रसिद्ध नाम) १ भावनी २.
रवभावनी ३ शिवनी ४ मकरवी ५ ५ त्रिनेत्रकी ६. कुमु-
दनी ७ दनुकी ८ क्षीरकी ९ इन्द्रकी १० नागकृति
११. धन्यकृति १२. विजयनी । ('अधुना' प्रसिद्ध नाम)—
१ रामकी २ गौडकी ३ देवकी ।

उषाङ्ग—(पूर्वप्रसिद्ध नाम) १ नृगाटी २ देवाल
३. शुद्धजिता । (अधुना' प्रसिद्ध नाम) १ कौन्तली
२ द्राविडी ३ सैन्धवी ४ उस्त्यानवराणिका ५ हस्तस्वर-
वराणी ६ प्रतापराटिका (ये 'तुरष्क तोडी' की छ छाया
हैं) ७. गहाराष्ट्री ८ सौराष्ट्री ९ दण्डिका १० द्राविडी
(ये चार 'पुर्जरी' हैं) ११ भुषिना १२. रत्नम्बोदिना
१३ वेतावली (दो प्रकार की—द्विनवन म गहरी है।)
१४. भैरवी १६. कामोदा । १७ सिंहली १८ छायागट्टा

१६. रामकृति २०. भल्लातिका २१. मल्हारी २२. मल्हार
२३. गौडक २४. वर्णाट २५. देशवाल २६. तुल्क
२७. द्राविड ।

३४ पूर्वप्रसिद्ध और ५२ अधुना प्रसिद्ध राग—यो कुल
मिला कर ८६ देशी राग शाङ्गेदेव ने कहे हैं। पूर्वोक्त
ग्रामराग, भाषा, विभाषा आदि कुल मिला कर २६४ राग
शाङ्गेदेव ने गिनाए हैं ।

तालिका (ग) नारद

१. रागों के प्रयोगकाल के अनुसार विभाजन

सूर्याश राग—(विशेषतः प्रातः काल में प्रयोक्तव्य)—

१. गान्धार २. देवगान्धार ३. धमासी ४. सैन्धवी
५. नारायणी ६. सुर्जी ७. बङ्गाल ८. पटमञ्जरी ९. ललिता
१०. आन्दोलश्रीका ११. सौराष्ट्रीय १२. जयसाक्षिका
१३. महार १४. सामवेदी १५. वसन्त १६. शुद्धभैरव
१७. वेलावली १८. भूपाल १९. सोमराग ।

(गध्याह्न में प्रयोक्तव्य राग)—१. शंकराभरण
२. बलहंस ३. देशी ४. मनोहरी ५. सावेरी ६. दोम्बुली
७. वाम्भोजी ८. गोविन्दाभोजी ९. वैशिनी १०. मधुमाधवी
११. बहूलोदय ११. मुचारी १२. मङ्गलकोशिका ।

चन्द्रमांश राग—(सायं काल में प्रयोक्तव्य)—
१. शुद्धनाट २. सालङ्ग ३. नाटो ४. शुद्धवराटिका ५. गोल
६. मालवगौड ७. श्रीराम ८. आहरी ९. रामकृति १०. रञ्जी
११. छाया १२. सर्ववराटिका १३. वराटिका १४. द्राविडिका
१५. देशी १६. नागवराटिका १७. वर्णाटिक्यगौडी ।

२. रागों की संपूर्णतादि अवस्था के अनुसार
विभाजन—

संपूर्ण राग—१. देशाली २. मध्यमादि ३. वसन्त-
भैरवी ४. शुद्धभैरवी ५. मालवी ६. नाटराग ७. सुमहारी
८. आहरी ९. बलहंस १०. शुद्ध वसन्त ११. शुद्धरामनिया
१२. शुद्ध वराटिका ।

पाण्ड्य राग—१. देवगान्धार २. नीलाम्बरी ३. श्रीराग
४. शुद्धबहुली ५. शुद्धगोल ६. ललित ७. मालवत्री
८. भूपाल ९. पद्मभ्री १०. दुर्गभ्री ११. सुरभी ।

श्रीधव राग—१. धन्वासी २. सावेरी ३. सुर्जी
४. मधुमाधवी ५. मेघरञ्जी ६. वेलावली ७. रामकृति
८. नारायणी ।

३. लिंग के अनुसार राग-विभाजन

पुलिङ्ग राग—१. बङ्गाल २. सोमराग ३. श्रीराग
४. भूपाली ५. छायागौड ६. शुद्धहिन्दोलिका ७. आन्दोली
८. दोम्बुली ९. वर्णाट १०. गौड ११. फडमञ्जी १२. शुद्ध-
नाटो १३. मालवगौडक १४. छायानाटो १५. वेलाहल
१६. सौराष्ट्री १७. वसन्त १८. शुद्धसारंग १९. भैरवी
२०. रागध्वनि ॥३॥

स्त्री राग—१. तुण्डी २. तुल्कनुण्डी ३. मल्हारी
४. माहुरी ५. पौरालिकी ६. वाम्भारी ७. भल्लाती
८. सैन्धवी ९. सालङ्गास्या १०. गान्धारी ११. देवञ्जी
१२. देशिनी १३. वेलावली १४. बहुली १५. गुण्डकी
१६. घूर्जरी १७. वराटो १८. द्राविडी १९. हंसी २०. गीष्ठी
२१. नारायणी २२. अहरी २३. मेघरञ्जी २४. मिथनाटा ।

नर्पुंसक राग—१. वैशिकी २. ललित ३. धमासी
४. नुराञ्जिका ५. सौराष्ट्री ६. द्रावडी ७. शुद्धा ८. नागव-
राटिका ९. कौमोदकी १०. रामञ्जी ११. सावेरी १२. बल-
हंस १३. सामवेदी १४. शंकराभरण ।

४. रागाङ्ग राग—१. मध्यमादि २. मालवत्री
३. धीका ४. जयसाक्षिका ५. वराटो ६. घूर्जरी ७. गौड
८. कोलाहल ९. वसन्त १०. धनाश्री ११. देश १२. देशाल्या
१३. बङ्गाल ।

५. पुरुष रागों के साथ स्त्री रागिणियों का सम्बन्ध

(प्रथम मत)—१. भूपाल २. भैरव ३. श्रीराग
४. फडमञ्जरी ५. वसन्त ६. मालवी ७. नाट ८. बङ्गाल ।
ये आठ पुरुषराग और इनकी स्त्रियाँ इन प्रकार बहो हैं :—

भूपाल की स्त्रियाँ—१. वेलावली २. मल्हारी
३. बहुली ।

भैरव की स्त्रियाँ—१. देवनिया २. पौराली
३. वाम्भारी ।

॥३॥ पुलिङ्ग रागों के अन्तर्गत अनेक स्त्रीनिगमाधी नामों का संग्रह किया गया है यह विशेष ध्यान देने की बात है ।

पद्मअरी की स्त्रियों—१. श्रीरागति २. पाम्भोजी ।
३. मल्लती ४. सुरपिना ५. देशी ६. मनोहरी । ७. तुण्डो ।

नाट की स्त्रियों—१. सारङ्गनाट २. ग्राहरी ।

बङ्गाल की स्त्रियों—१. नारायणी २. गान्धारी
३. रञ्जी ।

घसन्न की स्त्रियों—१. वराटी २. द्रामडी ३. हंसी ।
मालन की स्त्रियों—१. गुणबन्ध्या २. पूर्वरी
३. गोडी ।

(दूसरे मत में)—छ. पुरुषराग और प्रत्येक की स्त्रियाँ—

१. श्रीराग—१. गोडी २. कोलाहली ३. द्रावली
४. भान्दोलिनी ५. माधवी ६. देवगान्धारी ।

२. पञ्चम—१. शुद्धनाट २. शिवरी ३. सैन्धवी
४. मालती ६. कौमोदनी ।

३. मेघराग—१. सोराष्ट्री २. काम्परी ३. बङ्गाली
४. मधुगाधवी ५. देवजी ६. भूपाली ।

४. नाटनारायण—१. बलमा २. माधवी ३. विदग्धा
४. अनितारिका ५. त्रिवेणी ६. मेघरञ्जी ।

वयन्त और नाटनारायण की स्त्रियों के नाम उपलब्ध
नहीं हैं क्योंकि आगे पाठ क्षण्डित है ।

तालिका (घ) संगीतोपनिषत्सरोद्धार (वाचनाचार्य सुधाफलश)

छ. पुरुष राग और प्रत्येक की छ. भाषाः—

१. श्रीराग—गौडी, कोलाहला, भान्धाली, द्रविड,
मालववैशिखी, देवगान्धारी ।

२. घसन्न—भान्दोला, वैशिखी, प्रथममञ्जरी, गुण-
गिरी, देवशासा, रामगिरी ।

३. भैरव—भैरवी, गुर्जरी, वेलाकुली, बर्णाटी, रत्न-
हंसा, भाषा ।

४. पञ्चम—त्रिगणा, स्तम्भतीर्थी, आनीरी, वकुना,
वदराडी, साभेरी ।

५. मेघराग—बङ्गाली, गपुरा, कामोदा, पोषासाटिका,
देवगिरी, देवाला ।

६. नटनारायण—तोटिका, नट्टा, टुम्बी, मल्लारी,
सिन्धुमल्लारी ।

तालिका (ङ) संगीतदामोदर (शुभकर)

छ. पुरुष राग और प्रत्येक की पाँच स्त्रियाँः—

१. भैरव—भैरवी, वैशिखी, भाषा, वेनावरी बङ्गाली ।

२. घसन्न—भान्दोलिता, देवशासा, सोला, प्रथम,
मञ्जरी, मन्दारी ।

३. मालववैशिखी—गौडी, गुणगिरी, वराटी,
क्षमावती, वण्टी ।

४. श्रीराग—गान्धारी, देवगान्धारी, मानवत्री,
सावेरी, रामगिरी ।

५. मेघ—कलिता, मालसो, गीरी, लाटी, देवगिरी ।

६. नटनारायण—तारामणि, आभारी, वामोदी,
गुर्जरी, वकुमा ।

तालिका (च) रसकौमुदी (श्रीकण्ठ)

११ मेल और उनके अन्तर्गत २५ पुरुषराग तथा
१३ स्त्री रागिणी—

१. सुगारिमा मेल—भुवारी (स्त्री०)

२. मालवगौडमेल—पुरुष०—मालवगौड, पञ्चम,
भैरव, बङ्गात, ललित, बर्णाटि । स्त्री०—सौराष्ट्री, गुर्जरी,
महारी, बहली, पातो, गौडी ।

३. श्रीरामेल—पु०—श्रीराग, देवगान्धार, स्त्री०—
मालवत्री, धन्यासो, भैरवी ।

४. विशुद्धनट्टमेल—पु०—शुद्धनट्ट ।

५. कर्णाटगौडमेल—पु०—कर्णाटगौड, सामन्त,
शुद्धनेपाल, घट्टारव, स्त्री०—तोडी ।

६. वमन्तरामेल—पु०—वयन्त—भूपाली ।

७. केदाररागमेल—पु०—केदार, नट्टनारायण, शंकर-
भरण । स्त्री०—केलावती ।

८. मल्हारमेल—पु०—मल्हार, गौडमल्हार, स्त्री०—
कामोदी ।

९. पूर्णदेशाक्षिणामेल—स्त्री०—देशाक्षिणा ।

१० कल्याणमेल—पु० कल्याण, कामोद हमीर ।

११. सारंगरागमेल—पु० सारंग ।

तालिका (छ) रागमाला (पुण्डरीक विडल)

छ पुरुषराग, प्रत्येक को पाँच स्त्रियों और पाँच पुत्र :

१ शुद्धभैरव—स्त्री—कन्यासी, भैरवी, सैन्धवी, मारवी, आसावरी । पुत्र—भैरव, शुद्धललित, पञ्चम, परज, बङ्गाल ।

२ हिन्दोल—स्त्री—भूपाली, बराठी, तांठी, प्रथम-मञ्जरी, सुरफ्तोडिका । पुत्र—वसन्त, शुद्धबङ्गाल, श्याम, सामन्तक, कामोद ।

३. देशिमार—स्त्री—रामक्री, बङ्गली, देशी, धी, गुर्जरी । पुत्र—ललित, विभास, सारंग, त्रिवण, कल्याण ।

४. श्रीराग—स्त्री—गौडी, पाठी, गुणवरी, नादराम-त्रिया, गुणक्री । पुत्र—टक, देवगन्धार, मानव, शुद्ध-गौडन, कर्णाटबङ्गाल ।

५ शुद्धनाट—स्त्री—मालवत्री, देशासी, देवक्री, मधुमाषवी, भाट्टी । पुत्र—जिजावन्त, सालग, नाट, कर्णाटक, चायानाट, हमीरनाट ।

६ नटनारायण—बेलावती, वाम्बोजी, सावेरी, मुहवी, चौखट्टी । पुत्र—मल्हार, गौड, वेदार, शंकराभरण, निहागढा ।

तालिका (ज) संगीतदर्पण (दामोदर पण्डित)

संगीतदर्पण में 'शिवमत' 'हनुमन्मत' तथा 'रागगणमत' के नाम से तीन पृथक् तालिकाएँ राग-रागिणी की दो गई हैं और इन तीन तालिकाओं के बाद राग-रागिणियों के ध्यान तथा विवरण हनुमन्मत के अनुसार दिए हैं और इस मत में समाविष्ट रागों के अनिर्दिष्ट भी कुछेक छौ-पुरुष राग बड़े हैं जो संभवतः लेखक को स्वयं मान्य रहे होंगे । ये सभी गायानविषय नीचे प्रस्तुत हैं ।

१. शिवमत

छ. पुरुष तथा प्रत्येक की छ-द्व द्विज ।

छ यह ध्यान देने की बात है कि अधिकांश समाविष्ट रागों के नाम स्त्री-नामवाची हैं । फिर भी उन्हें स्त्री न कह कर पुरुष ही कहा गया है ।

श्रीराग—मालवी, त्रिवेणी, गौरी, वेदारी, मधुमाषवी ।

वसन्त—देशी, देवगिरि, बराठी, तोडिका, ललिता, हिन्दोली ।

भैरव—भैरवी, गुर्जरी, रामकिरी, गुणवरी, बंगाली, सैन्धवी ।

पञ्चम - विभावा, भूपाली, कर्णाटी, बडहंसिका, मानवी, पटमंजरी ।

मेरराग—मल्लारी, सोरठी, सावेरी, कौशिकी, गान्धारी, हरशृङ्गारा ।

नटनारायण—वामोदी, कल्याणी, आभीरी, नाटिका, सारंगी, नटहम्बोरा ।

२. हनुमन्मत

छ पुरुष राग तथा प्रत्येक की पाँच-पाँच रागिणी ।

भैरव—मध्यमादि, भैरवी, बङ्गाली, बराठी, सैन्धवी ।

कौशिक—तीठी, सम्भावती, गौरी गुणक्री, बडुभा ।

हिन्दोल—बेलावती, रामकिरी, देशास्या, पटमंजरी, ललिता ।

दीपक—वेदारी, वानडा, देशी, वामोदी, नाटिका ।

श्रीराग—वासन्ती, मानवी, मालवधी, मनासिका, आसावरी ।

मेरराग—मल्लारी, देशवारी, भूपाली, गुर्जरी, टंवा ।

इस तालिका में समाविष्ट पुरुष-स्त्री-रागों के अनिर्दिष्ट निर्मातृनाम के पुरुष-स्त्री रागों का भी प्रत्याहार में विवरण दिया है किन्तु इनका परस्पर संबंध नहीं जोड़ा है अर्थात् यह नहीं कहा है कि किस राग की कौन-सी भाषा है । ये नाम इस प्रकार हैं :—

पुरुष राग—कल्याणनाट, पंचम, शंकराभरण, बडहंस, विभास ।

स्त्री रागिणी—सारङ्गनाट, देवगिरि, सोरठी, त्रिवणा, पहाडी, रेवा, बुडडा, वामोदी ।

३. रागार्णव मत

छ राग तथा प्रत्येक के भाषित पाँच-पाँच राग (रागिणी नहीं) छ ।

भैरव—बङ्गाली, मध्यमादि, गुणविरो, समन्तक, घनाश्री ।

पञ्चम—सलिला, गुजरी, देशी, यराडो, रामकृष् ।

नाट—नटनारायण, गान्धार, सालग, बेदार, कर्णाट ।

मल्लार—मेपमल्लारिका, मालकौशिक, पठमञ्जरी, भ्राता-
वरी । (यहाँ पाँच के स्थान पर चार ही नाम दिए हैं) ।

गौड—हिन्दोल, त्रिवण, अन्धारी, गौरी, पठहंसिवा ।

देशाख्य—भूपाली, कुड़ापी, वामोदी, नाटिया, वेलावली ।

तालिका (अ) रागतरङ्गिणी (लोचन)

संस्थान-पद्धति

संस्थान	जन्य-राग-नाम
१. नैरवी	(१) नैरवी, नीलावरी
२. टोडी	(२) टोडी
३. गौरी	(२७) गौरी, मालवः, श्री गौरी, चैतीगौरी, पहाडीगौरी, देशीटोडी, देशकार, गौडः, त्रिवण, मूलतानी घनाश्री, यसंतक, गौरा, भैरव, विभास, रामकली, गुजरी, बड्ढली, रेवा, घटियाटः, पट्टरागः, मालश्री, पंचमः,

जयतश्री; भ्रातावरी, देवगान्धारः,
सिंधी भ्रातावरी, गुणार्ये ।

४. कर्णाटः (२०) कर्णाटः, पानर, देशी, वागीरवरी
वानरः, रामाचो, सोरहः, परजः,
मारु, जैजयंती, वट्टमः, वामोदः,
वामोदी, बेदारो, गौरः, माल-
कौशिक, हिंडोलः, मुहारार्ई, भजनः,
गारेवानरः, धीः ।

५. बेदारः (१३) बेदारः, बेदारनाटः, अहीरनाटः,
संभावती, शंकरामरण. विहागरा,
हंमीरः, श्यामः, छापानट्टः, भूपाली,
भीमपलासिवा, कौशिकः, मारुः ।

६. ईमनः (४) ईमनः, शुद्धवल्याणः, पूरिया, जय-
लत्याणः,

७. सारंगः (५) सारंगः, पटमंजरी, कुन्दावनी,
सागन्त, बडहंसकः,

८. मेघः (१०) मेघः, मल्लारः, गौडसारंगः, नाट,
वेलावली, अलहिया, शुद्ध मूर्त्कः,
देशाल, शुद्धनाटः ।

९. घनाश्रीः (२) घनाश्रीः, सलिलः ।

१०. पूर्वी (१) पूर्वी ।

११. मुखारी (१) मुखारी ।

१२. दीपकः (१) दीपकः ।

टिप्पणी—लोचन की संस्थान-पद्धति संभवतः उनकी अपनी ही उद्भावना है । धीरे उसके कोई धनुषायी ग्रन्थ अभी तक प्रकाश में नहीं आए हैं । इस पद्धति का विवेचन 'प्रणव भारती' (राग शास्त्र) में किया जायगा ।

मेल नाम तथा क्रमांक	रामामात्योक्त स्वर-रूप	हिन्दुस्तानी स्वर-नामों के अनुसार स्वर-रूप	जन्म राग
१. मुखारी	सा-रि-ग-म-प-ध-नि-सा (मल्लोक्त शुद्ध स्वरवली)	सा-रि-रि-म-प-ध-प-ध-सा	१. मुखारी ।
२. मालवगौड	सा-रि-चु. म. गा. -म-प-ध-चु प. नि. -सा	सा-रि-ग-म-प-ध-नि-सा	१. मालवगौड २. ललिता ३. वीली ४. सौराष्ट्र ५. गुजरी ६. मेचवली ७. फलमंजरी ८. तुल्सी ९. चिपुरामकी १०. छायागौळ ११. सुरजी १२. वंनड-वंगल १३. मंगलनैशिक १४. मवहरी ।
३. श्रीराग	सा-पंच. रि. - सा. गां. -म-प-ध-चु प. नि. -सा	सा-रि-ग-म-प-ध-नि-सा	१. श्रीराग २. भैरवी ३. गौळी ४. धव्यासी ५. शुद्ध-भैरवी ६. वेलावली ७. मालवत्री ८. यंकराभरण ९. आषाढी १०. देवगन्धार ११. मध्यमादि ।
४. सारंगनाट	सा-पंच. रि. - चु. म. गा. -म-प-ध-चु प. नि. -सा	सा-रि-ग-म-प-ध-नि-सा	१. सारंगनाट २. सावेरी ३. सालगभैरवी ४. नाट-नारायणी ५. शुद्धकवन्त ६. सुवंगीड़ ७. कुत्तलवराली ८. भिन्नपद्म ९. नारायणी ।
५. हिंदोल	सा-पंच. रि. - सा. गा. -म-प-ध-के नि. -सा	सा-रि-ग-म-प-ध-नि-सा	१. हिंदोल २. मार्गहिंदोल ३. भूपाल ।
६. शुद्धरामकिया	सा-रि-चु म. गा -चु पं. म. प-ध-चु. प. नि. सा	सा-रि-ग-म-प-ध-नि-सा	१. शुद्धरामकिया २. बौली ३. आर्द्रेश्यो
७. देशासी	सा-पद्. रि. - चु. म. गा. -म-प-ध-चु. प-चु. प नि-सा	सा-ग-म-प-ध-नि-सा	४. दीपक १. देशासी
८. वैनडगौळ	सा-पद्. रि-चु. म. गा. -म-प-ध-चु. प-चु. प. नि. -सा	सा-ग-म-प-ध-नि-सा	१. वैनडगौळ २. पंढारव ३. शुद्धवंगल ४. छायानाट ५. तुरकवली ६. नागध्वनि ७. देवकिया
९. शुद्धनाट	सा-पद्. रि. - चु. म. गा. -म-प-ध-चु. प. नि. -सा	सा-ग-म-प-ध-नि-सा	१. शुद्धनाट

१०. ष्ठीरी	सा - पच. रि. - सा. गा - म - प - प - यु. प. नि. - सो	सा - रि - ग - म - प - नि - सो	१ ष्ठीरी
११ नादरामकिया	सा - रि - सा. गां. - म - प - प - च्यु. प. नि. - सो	सा - रि - ग - म - प - नि - सो	१. नादरामकिया
१२. शुद्धवराळी	सा - रि - ग - च्यु प म. - प - प - च्यु प. नि. सा	सा - रि - रि - म - प - नि - सो	१. शुद्धवराळी
१३. रोतिगौळ	सा - रि - ग - म - प - पव. घ. - के. नि - सो	सा - रि - रि - म - प - नि - सो	१. रोतिगौळ
१४. वामभैरवी	सा - रि - च्यु म गा - म - प - प - के नि - सा	सा - रि - ग - म - प - नि - सो	१ वामभैरवी
१५. केदारगौळ	सा - पंच रि - च्यु म गा. - म - प - पंच घ - च्यु प. नि. (है नि ?)	सा - रि - ग - म - प - नि - सो	१. केदारगौळ
१६. हुजुबी	सा - रि - घ गा - म - प - घ - शो नि - सा	सा - रि - ग - म - प - नि - सो	१. हुजुबी
१७ गामवराळी	सा - रि - प - म - प - घ - वा. नि - सा	सा - रि - रि - म - प - नि - सो	१. गामवराळी
१८ रेगुमि	सा - रि - घं. गां. - म - प - घ - नि - सा	सा - रि - ग - म - प - नि - सो	१ रेगुमि
१९. सामत	सा - पट रि - घ गां - म - प - पट घ - का. नि. - सो	सा - ग - म - प - प - नि - सो	१. सामत
२०. कानोबी	सा - पच. रि - घ गा. - म - प - पच. घ. - वा. नि - सो	सा - रि - ग - म - प - नि - सो	१. कानोबी

टिप्पणी—प्रथम पदद्वय में चुलगड्गनिपाद तथा वाक्यी निपाद नो एक चुनमध्यमगाल्यार तथा श्रुतर गाव्यार की एरुक्व माना गया है। प्रीर भक्तिम पाच केतो मे इहे निम मान कर वैकल्पिक मेल प्रस्तुत निचै है।

एरुक्व माना गया

तालिका (ट) रागविबोध (सोमनाथ)

२३. मेल नाम तथा प्रत्येक के जन्य राग

१. मुखारी	१. मुनारी २. तुष्टतोडी
२. रेवप्रति	१. रेवप्रति
३. सामवरात्री	१. सामवरात्री २. वसन्तवरात्री
४. तोडी	१. तोडी
५. नादरामक्री	१. नादरामक्री
६. भैरव	१. भैरव २. पौरविका
७. वसन्त	१. वसन्त २. टक ३. हिजेज ४. हिंदोल
८. वसन्तभैरवी	१. वसन्तभैरवी २. मारविका
९. मालवगौड	१. मालवगौड २. चैतीगौड ३. पूर्वी ४. पाडी ५. देवगान्धार ६. गोएडाक्रिया ७. कुरञ्जी ८. वहुषी ९. रामक्री १०. पावक ११. आसावरी १२. पञ्चम १३. बह्मल. १४. शुद्धललित १५. गुर्जरी १६. परज १७. शुद्धगौड।
१०. रीतिगौड	१. रीतिगौड
११. आभीर	१. आभीर
१२. हम्मीर	१. हम्मीर २. विहङ्गड ३. वेदार
१३. शुद्धवरागी	१. शुद्धवराटी
१४. शुद्धरामक्री	१. शुद्धरामक्री २. ललित ३. जैताथी (देशनार) ४. प्राणवी ५. देशी।
१५. श्रीराग	१. श्रीराग २. मालवथी ३. धयाशिका ४. भैरवी ५. धवला ६. सी धवी।
१६. बल्याण	१. बल्याण।
१७. वाम्बोदी	१. वाम्बोदी २. देववी।
१८. मल्लारी	१. मल्लारी २. नट्टमल्लारी ३. पूर्वगौड ४. भूपाली ५. गौड ६. रावराभरण ७. नटनारायण ८. नारायणगौड ९. वेदार (द्वितीय) १०. सालङ्ग (ङ्ग ?) नाट ११. वेलावली १२. मध्य- मादि १३. गावेरी १४. गौराण्डी।

१९. सामन्त	१. सामन्त।
२०. वण्टिगौड	१. कण्टिगौड २. अद्वाण ३. नागध्वनि ४. शुद्धबङ्गाळ ५. घणनाट इरारु (तुष्टन्तोडी)।
२१. देशाक्षी	१. देशाक्षी।
२२. शुद्धनाट	१. शुद्धनाट।
२३. सारङ्ग	१. सारङ्ग।

टिप्पणी—सोमनाथ के 'रागविबोध' की एक उल्लेखनीय विमोचता यह है कि मेल पद्धति को ग्रहण करते हुए भी उन्होंने कुछेक जन्य रागों के पुरुष-स्त्री के रूप में 'देवतामय' ध्यान भी दिए हैं।

(छ) सद्रागचन्द्रोदय, रागमञ्जरी (पुण्डरीक विट्ठल)

पुण्डरीक विट्ठल की 'रागमाला' में राग-रागिणी-वर्गीकरण का जिस प्रकार उल्लेख मिलता है वह हम ऊपर तालिका (छ) में देख चुके हैं। अपने दो अन्य ग्रन्थों में यानी 'सद्रागचन्द्रोदय' और 'रागमञ्जरी' में उन्होंने मेल-पद्धति के अनुसार राग वर्गीकरण किया है। 'सद्रागचन्द्रोदय' में प्रायः रामामात्य का ही अनुसरण करते हुए एक-दो परिवर्तनों के साथ रामामात्य के ही २० मेल ग्रहण किये हैं और 'रागमञ्जरी' में विचित्र परिवर्तन से केवल १५ मेल ग्रहण किये हैं। एक ही ग्रन्थकार द्वारा अपने भिन्न भिन्न ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न रीति से राग-वर्गीकरण प्रस्तुत करना इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि उस काल में स्वर-नामों की ही भांति ही मेल या 'राग' के बारे में भी ग्रन्थकार के मनमाने निरूपण को पूरा अवकाश था। यहाँ इन दो ग्रन्थों की मेल राग तालिका प्रस्तुत करने से कोई विरोध प्रयोजन नहीं सिद्ध होगा। अतः हम इस विषय के विस्तृत निरूपण को 'प्रणव भारती' (राग शास्त्र) में समाविष्ट करने की दृष्टि से यही छोड़ देते हैं।

तालिका (ड) चतुर्दण्डिप्रकाशिका (व्यङ्गटमखी)

व्यङ्गटमखी ने शुद्ध विहित कुल १२ स्वर स्वीकार कर के अष्टव वा 'पूर्वांग' और 'उत्तरांग' में विभाजन किया है। प्रत्येक 'अंग' में से चार चार स्वरों का ग्रहण करके गणित-पद्धति से ३६ पूर्वमेला (शुद्धमध्यमवाले) और ३६ उत्तरमेला (तीव्र मध्यम वाजे) ग्रहण कर के कुल ७२ मेलों की गणितमिद्ध रचना की है। इन मेलों में से केवल १९ को

ही रागजनन माता गया है। शेष सब विवादी-शेष युक्त होने से अनुपयोगी माने गए हैं।

ध्वंशकटमसी के पूर्वांग और उत्तरांग के स्वर इस प्रकार हैं:—

पूर्वांग—पञ्च, शुद्ध श्रमभ, शुद्धगान्धार, साधारण गान्धार, अन्तर गान्धार, शुद्ध मध्यम अथवा वराजो (सोम) मध्यम।

उत्तरांग—पञ्चम, शुद्ध धैवत, शुद्ध निषाद, वैशिश निषाद, वाचसो निषाद, सार पञ्च।

छ—छः स्वरो के इन समूहों में से चार-चार वा षड्ज वर के व्यंजकमसी ने छः स्वर-समूह पूर्वांग के और छः उत्तरांग के बनाए हैं। पूर्वांग के एत-एत-समूह के साथ उत्तरांग के एत-छहो समूहों की जोड़ कर $६ \times ६ = ३६$ पूर्व में शुद्ध म० के और ३६ उत्तर मेल तीव्र म० के इस प्रकार कुल ७२ मेल की रचना की है। पूर्वांग-उत्तरांग के ये स्वर-समूह व्यंजकमसी की स्वर-संज्ञाओं के अनुसार निम्नलिखित हैं:—

पूर्वाङ्ग		उत्तराङ्ग	
व्यंजकमसी की स्वर-संज्ञा	हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञा	व्यंजकमसी की स्वर-संज्ञा	हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञा
स र ग म (मि)	स — रि — रि — म (म)	प — ध — न — (सां)	प — ध — ध (सां)
स र गि म (मि)	स — रि — ग् — म (म)	प — ध — नि — (सां)	प — ध — नि (सां)
स र गु म (मि)	स — रि — ग — म (म)	प — ध — नु — (सां)	प — ध — नि (सां)
स रि गि म (मि)	स — रि — ग् — न (म)	प — धि — नि — (सां)	प — ध — नि (सां)
स रि गु म (मि)	स — रि — ग — म (म)	प — धि — नु — (सां)	प — ध — नि (सां)
स र गु म (मि)	स — ग् — ग — म (म)	प — धु — नु — (सां)	प — नि — नि (सां)

७२ मेल-सारिणी

(३६ पूर्व मेलों की स्वरसंज्ञा दीक्षा कर उत्तर मेलों के नाममात्र वा उल्लेख कर दिया गया है क्योंकि उनमें शुद्ध मध्यम के स्थान पर तीव्र मध्यम के प्रयोग के सिवाय कोई अन्तर नहीं है।)

समूह १

क्रमांक	(पूर्व मेल शुद्ध म)	व्यंजकमसी की स्वर-संज्ञा	हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञा	उत्तरमेल (तीव्र म)	क्रमांक
१	वनकापी	स र ग म प ध न (मं)	स रि रि म प ध ध (सां)	सावय	३७
२	रत्नापी	स र ग म प ध नि (सां)	स रि रि म प ध नि (सां)	जगन्नाथ	३८
३	गानमूर्ति	स र ग म प ध नु (सां)	स रि रि म प ध नि (सां)	भयवराजो	३९
४	वनस्थिति	स र ग म प धि नि (सां)	स रि रि म प ध नि (सां)	नरनीतम्	४०
५	मानवती	स र ग म प धि नु (मं)	स रि रि म प ध नि (सां)	पावती	४१
६	तानक्षि	स र ग म प धु नु (सां)	स रि रि म प धि नि (सां)	रघुप्रिया	४२

(१२३)

समूह २

क्रमांक	पूर्वमेला (शुद्ध म)	व्यंजनमखी की स्वर-संज्ञा	हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञा	उत्तरमेला (तीव्र म)	क्रमांक
७	देनावती	स र गि म प ध न (सं)	स रि ग् म प ध् घ (सं)	गावाम्बोधि	४३
८	हनुमत् तोडी	स र गि म प ध नि (सं)	स रि ग् म प ध नि (सं)	भवप्रिया	४४
९	धेनुक	स र गि म प ध नु (सं)	स रि ग म प ध नि (सं)	शुभपन्तुवराडी	४५
१०	नारदक्रिया	स र गि म प धि नि (सं)	स रि ग् म प ध नि (सं)	पद्मविषमागिणी	४६
११	वोचिलप्रिया	स र गि म प धि नु (सं)	स रि ग म प ध नि (सं)	सुवर्णांगी	४७
१२	रुपावली	स र गि म प धु नु (सं)	स रि ग् म प धि नि (सं)	दिव्यमणि	४८

समूह ३

क्रमांक	पूर्वमेला (शुद्ध म)	व्यंजनमखी की स्वर-संज्ञा	हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञा	उत्तरमेला (तीव्र म)	क्रमांक
१३	गायकप्रिया	स र गु म प ध न (सं)	स रि ग म प ध् घ (सं)	धवलाम्बरी	४९
१४	बन्धुलामरण	स र गु म प ध नि (सं)	स रि ग म प ध् नि (सं)	रामनारायणी	५०
१५	मायामालवगौड	स र गु म प ध नु (सं)	स रि ग म प ध् नि (सं)	नामवर्धनी	५१
१६	चक्रवाक	स र गु म प धि नि (सं)	स रि ग म प ध नि (सं)	रामप्रिया	५२
१७	सूर्यकांत	स र गु म प धि नु (सं)	स रि ग म प ध नि (सं)	गमनधम	५३
१८	हार्षाम्बरी	स र गु म प धु नु (सं)	स रि ग म प धि नि (सं)	विद्यम्बरी	५४

(१२४)

समूह ४

क्रमांक	पूर्वमेल (शुद्ध म)	व्यवटमखी की स्वर-संज्ञा	हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञा	उत्तरमेल (तीव्र म)	क्रमांक
१६	मंकारध्वनि	स रि गि म प घ न (सं)	स रि ग् म प घ् घ (सं)	श्यामलाङ्गी	५५
२०	नटभैरवी	स रि गि म प घ नि (सं)	स रि ग् म प घ् नि (सं)	पद्मप्रिया	५६
२१	बीरवाणी	स रि गि म प घ नु (सं)	स रि ग् म प घ् नि (सं)	सिंहन्द्रमध्यम	५७
२२	खरहरप्रिया	स रि गि म प धि नि (सं)	स रि ग् म प घ नि (सं)	हेमवती	५८
२३	गौरीमनोहरी	स रि गि म प धि नु (सं)	स रि ग् म प घ नि (सं)	धर्मवती	५९
२४	वरुणप्रिया	स रि गि म प धु नु (सं)	स रि ग् म प धि नि (सं)	नीतिमती	६०

समूह ५

क्रमांक	पूर्वमेल (शुद्ध म)	व्यवटमखी की स्वर-संज्ञा	हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञा	उत्तरमेल (तीव्र म)	क्रमांक
२५	माररञ्जनी	स रि गु म प घ न (सं)	स रि ग म प घ् घ (सं)	गान्तामणि	६१
२६	चाक्लेशी	स रि गु म प घ नि (सं)	स रि ग म प घ् नि (सं)	श्रद्धाप्रिया	६२
२७	खरसांगी	स रि गु म प घ नु (सं)	स रि ग् म प घ् नि (सं)	सताङ्गी	६३
२८	हरिनाम्भोजी	स रि गु म प धि नि (सं)	स रि ग म प घ नि (सं)	वाचस्पति	६४
२९	धीरशंकरामरण	स रि गु म प धि नु (सं)	स रि ग म प घ नि (सं)	मेघवरपाणी	६५
३०	नागाप्रिया	स रि गु म प धु नु (सं)	स रि ग म प धि नि (सं)	विनाम्बरी	६६

क्रमांक	पूर्वमेल (शुद्ध म)	व्यंक्तमखी की स्वर-संज्ञा	हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञा	उत्तरमल (तीव्र म)	क्रमांक
३१	योगप्रिया	स र गु म प ध न (सं)	स ग् ग म प ध ध (सं)	गुचरित्र	६७
३२	रागवर्धनी	स र गु म प ध नि (सं)	स ग् ग म प ध् नि (सं)	ज्योतिस्वरूपिणी	६८
३३	गाणेशभूषणी	स र गु म प ध नु (सं)	स ग् ग म प ध नि (सं)	धानुवर्धनी	६९
३४	वागधीधरी	स र गु म प धि नि (सं)	स ग् ग म प ध नि (सं)	नासिकाभूषणी	७०
३५	शूलिनी	स र गु म प धि नु (सं)	स ग् ग म प ध नि (सं)	वोसल	७१
३६	चलनाट	स र गु म प धु नु (सं)	स ग् ग म प धि नि (सं)	रसिकप्रिया	७२

व्यंक्तमखी के जनक मेल तथा जन्य राग

जनक मेल

१. मुखारो
२. सामबराली
३. भूपाल
४. वसन्तभैरवी
५. गाळ

६. आहरी
७. भैरवी
८. श्रीराग

९. हेजुजी
१०. काभोजी
११. शंकराभरण

१२. सामन्त
१३. देशाक्षी
१४. नाट
१५. शुद्धवराळी
१६. पंतुवराळी
१७. शुद्धरामक्रिया
१८. मिह्रव
१९. वत्साणी

जन्यराग

१. मुखारो
१. सामबराली
१. भूपाल २ भिन्नपद्म
१. वसन्तभैरवी
- १ गौळ २ गुण्डक्रिया ३ सालंगनाट ४ नावरामक्रिया
- ५ ललिता ६ पाडी ७ गुजरी ८, बहूसी ९ मल्लहरी
१०. सावरो ११ छायागोळ १२. पूर्वगौळ १३. कर्णाटक
- १४ बङ्गाल १५ सौराष्ट्र
- १ आभेरी २ हिंदालवसन्त
१. भैरवी २. हिन्दोल ३ आहरी ४. घटारव ५. रीतिगौळ ।
१. धो २ सालगभैरवी ३ घन्यासी ४. मालवधी ५. देवगान्धार
६. आन्याली ७ वेलावली ८. कनडगौळ ।
- १ हेजुजी २. रेवगुप्ती
- १ काभाजी २ वेदारगौळ ३ नारायणगौळ
१. शंकराभरण २ धारमी ३ नागध्वनि ४ साम ५ शुद्धवसन्त
- ६ नारायणदेशाक्षी ७ नारायणी ।
१. सामन्त
- १ देशाक्षी
- १ नाट
- १ शुद्धवराळी
- १, पतवराळी
- १ शुद्धरामक्रिया
- १ मिह्रव
१. वत्साणी

द्वितीय खंड

क्रियात्मक

कीमल भासावरी

आरोह-अवरोह—सारिम प्ला, रि'डनिष्प प्पमग्रिषा ।

जाति—औरक-क-सम्पूर्ण ।

मह—पद्म ।

अंश—रूपम, पैवत ; उवाच—गान्धार, निपाद ।

न्यास—पंचम ।

अपन्यास—मध्यम ।

विन्यास—पद्म ।

स्वर-संगति—पू-म, रि'-नि ।

मुख्य अंग—रिम पष्प मगू रि ।

समय—प्रातःकाळ ।

मकृति—मृदु गंभीर ।

विशेष विवरण

कीमल भासावरी में रूपम, गान्धार, पैवत, और निपाद कोमल लगते हैं, मध्यम शुद्ध लगता है । जो देखने से इसके स्वर मैत्री के-से प्रतीत होते हैं, किन्तु मैत्री के और इसके चञ्चल में महत् अन्तर है । इसके आरोह में गान्धार तथा निपाद वर्ज्य हैं, और अवरोह में पञ्चम सक रहता है । यथा—सा रि म प प् सा, सा रि' नि प्पम गू रि' ड सा । भासावरी के अंग को दिखाने के लिए सा रि म प निष्पम प निष्प, रिम प निष्प, मप सा निष्प, मप प् सा रि' निष्प,—इस प्रकार पञ्चम पर न्यास करते हुए स्वर-रचना रखी जाती है । और कोमल भासावरी की स्थापना दिखाने के लिये, अवरोह में पञ्चम का समूचा स्थापन करते हुए—पू म, प्पम प्पम, मप प्प प्पम, रि' निष्पम, निष्प निष्पम—येके स्वर-अर्थों को लिये जाते हैं । और अन्त में 'पू म गू रि' ड सा, यो रूपम पर जोडा सा सक कर 'सा' पर पूर्ण न्यास करते हैं । जैसे पञ्चम के बाद अवरोह करते समय पञ्चम का स्थापन करके 'पू म गू रि' सा' करते हैं, तद्वत् पद्म से नीचे उतरते समय, पद्म का स्थापन करके 'रि' (ड निष्प) किया जाता है । 'रि' ड निष्प म' और प्पम गू रि' में दोनों स्वर-क्रियाएँ एक दूसरे का अभाव है । और वे इस राग की रागवाची होकर इसके आविर्भाव के लिए अनिवार्य हैं ।

इस राग को गाते समय यदि तानपूरे का पञ्चम का तार मध्यम में मिला बिना जाय, तो वह राग के रागत्व में और रस की निष्पत्ति में सहायक होगा । वह मध्यम कोमल रूपम से सप्त-भूति संवाद करेगा, और कोमल पैवत से पट्-भूति संवाद करेगा । इस प्रकार मध्यम में मिला हुआ तार उपर्युक्त स्वर-संवाद के कारण राग के माधुर्य और रसको

पदाने में प्रबल योग देगा । साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि इस राग में मध्यम पर्याप्त मखवान् स्वर है । इसलिए भी पञ्चम के स्थान पर मध्यम रखने की ध्वजा हम ने दी है । जिस भाषा में पञ्चम की आवश्यकता है, उदनी भाषा में पञ्चम तानपूरे के ओढ़ के चारों से सुनायी देता ही है ।

पद्य इसका मह-स्वर है, मध्यम-धैरत धंध, गान्धार-निषाद उपांश स्वर हैं । पञ्चम म्वास, मध्यम अपम्यास और पद्य विन्यास है । पञ्चम की अपेक्षा मध्यम का बहुत्व है । 'रि-न्' और 'म्-म्' ये स्वर-संगतियाँ हैं ।

इसकी शक्ति, पञ्चम पर म्वास, स्वरों के उच्चार, 'रि-न्', 'म्-म्' की स्वर-संगतियाँ, इन सबको देखते हुए यह रागिनी कोमल, कान्त, मधुर और गंभीर है, भातम-कथन की प्रकट करने वाली और स्नेह-सिक्त है ।

राग कोमल आसावरी

मुक्त आलाप

(१) सा, रि ऽ घ्र ऽ सा, सा ऽ रि नि ऽ नि घ्र ऽ सा, घ्र सा ऽ रि नि घ्र सा, म प घ्र ऽ नि भ्र ऽ सा,

सा ऽ घ्र घ्र प म प घ्र सा, घ्र घ्र प म प घ्रि म प घ्र नि घ्र सा, रि नि घ्र म प घ्र

सा, रि नि घ्र म ऽ म प घ्र नि घ्र म प घ्र सा।

(२) सा ऽ रि नि घ्र सा, सा ऽ सारि नि घ्र सा, म प ऽ प घ्र सा

सारि नि घ्र सा, सा ऽ नि रि ऽ नि ऽ नि घ्र सा, प प म प नि नि घ्र ऽ सा सा नि

सा रि ग नि घ्र घ्र सा, सा ऽ नि नि ऽ घ्र ऽ म प घ्र नि घ्र सा, म ऽ प घ्र ऽ प ऽ घ्र नि ऽ

नि घ्र सा, म प प घ्र घ्र नि ऽ नि घ्र सा, प म घ्र नि नि घ्र ऽ म प घ्र सा सानि ऽ रि घ्र ऽ रि

नि घ्र सा, म प घ्र म नि ऽ नि घ्र ऽ म प घ्र सा सानि ऽ नि घ्र, घ्र सारि ग रि ऽ रि नि ऽ नि घ्र ऽ सा,

म प ऽ म प घ्र ऽ प घ्र नि नि घ्र ऽ घ्र सा ऽ नि सारि ऽ सा रि ग रि ऽ रि नि ऽ नि घ्र ऽ सा।

(३) सा ऽ रि नि, सानि रि नि, नि घ्र रि, रि नि घ्र रि

गृ सारिऽ निरिऽ घृरिऽ, रिषारिऽ रिनिरिऽ रिनिघृरिऽ, रिरिसानिऽ निनिघृरिऽ, निनिघृरिऽ सासानिऽ

सा सा निनि निग सा निनि घृ घृ गृ नि घृ सा रिषा सासानि रिऽ रिषा सासानि निनिघृरिऽ निघृऽ सा ।

(४) साऽसारिऽ, घृ साऽ सारिऽ, मृ घृ घृ साऽ सारिऽ, रिरिसानिऽ साऽ सारिऽ, घृ घृ प्रमृऽ

नि सा सा पघृऽ रिरिसानि माऽ सारिऽ, निघृऽ सा ।

(५) सा रिऽ म, सा रिऽ म, सा रिऽ म, सा रिऽ म, मऽ मगुऽ गृरिऽ म, मऽ मगुऽ

गृरिऽ म, सारिऽ रिमऽ मगुऽ गृरिऽ म, घृसा सारिऽ रिमऽ मगुऽ गृरिऽ म, मगुऽ गृरिऽ सा ।

(६) सादिमवघृऽ म, सादिमवऽ वघृऽ म, म व घृ वघृऽ म, म व घृऽ म, घृघृमवऽ वघृऽ म, सादि

घा रि म रिम मव वघृऽ म, सादिम सादिमऽ रिमम रिमवऽ ममम मवघृऽ म, घृघृवऽ वघृऽ म, वघृममऽ मऽ

घृ घृ वऽ वघृऽ म, रिषासाऽ गृरिऽ वममऽ घृ वऽ वघृऽ म, रिषासा गृरिऽ गृरिऽ वममऽ

वमम वृवऽ वृवऽ निघृऽ म, रिषासाऽ गृरिऽ वममऽ घृ वऽ वघृऽ म, मगुऽ रिऽ सा ।

(७) सादिम, मऽ मगुऽ गृरिऽ म, सादि सादिम, मगुऽ गृरिऽ म, मम गृ गृ मम गृ गृ प व

मम गृ गृ वृऽ म, मगुऽ सा साऽ रिमऽ वघृऽ ममऽ मगुऽ गृरिऽ म, सा रिम व घृऽ धृमऽ

मगुऽ गृरिऽ म, म व घृऽ निघृऽ म गृरिऽ सा ।

राग कोमल आसावरी

विलम्बित एकताल

गीत

स्थायो—एरी बीर शमनवा सगुन विचारो
कब पर आवे पिया मोरा री ।

अन्तरा—काग उड़ावत मोरी पैया थक गरै री
नैना झरत सावन ज्यो नीर ।
तन की भिया मोरे मरै रे पछी भाई छगत ज्यो वीर री ॥

स्वार्थ

		१			११	
					प- - ध्रं म- गध्रं सी	सा नि ध्रं म- रि ध्रं म-ध्रं • की • र
					प१११ • १११ • री •	
x	म नि रि नि ध्र- ध्र ध्र	ध्र प प म- म म	ग- म ग- रि- ग रि-	सा- म प	नि नि नि ध्र- ध्र ध्र	म प- प ध्र नि- -
	वा १ • •	१ • • • •	• १ • • • १ • १ • • १	• १ म न	वा • १ • •	• १ • • • १ • १
		१				
	नि नि नि ध्र- ध्र ध्र	प प ध्र म- म म	म ग- रि ग रि-	सा - - -	- सा - - रि रि म	- प ध्र म प
	• • १ • •	• • १ • •	• • १ • • • १ • १	• १ १ १ १	१ सा १ १ • ध्र •	१ न • • नि
		१				
x	नि नि नि ध्र- ध्र ध्र	प- प ध्र नि- -	नि ध्र- ध्र ध्र	ध्र म म म	म प- - -	ध्र प म- प- ध्र ध्र प- -
	वा • १ • •	• १ • • • १ • १	री • १ • •	• • • क	व १ १ १	• • • १ • १ १ • प • १ १ १

०	म म म ग् ग् ग्	१	११
र • • •	दि-सा सा-नि भा ऽ वे पि ऽ ऽ •	सा ग् ग् ग् दि दि दि -- सा या • • ऽ ऽ •	ग् दि दि नि मो • • •
			त्रि-सा-सा- रा ऽ री ऽ
			सां नि दि' म प • भी • र

अंतरा

०	१	११
सा--साधु सा ऽ ऽ • •	त्रि-त्रि पू-धू • ऽ ग ड	त्रि मू--प का ऽ ऽ ऽ •
		पत्रि मू धू धू प • • • •
		म पप--पप--पप मो • ऽ ऽ • • ऽ ऽ री •

×	१	११
त्रि-त्रि निपू-धू धू मै • ऽ • •	प--प--धू यो ऽ ऽ ऽ ऽ • •	धू नि -- क • • •
		--- धू धू ऽ ऽ ऽ ग •
		मग् म- ई • • •
		म -- री ऽ ऽ ऽ

०	१	११
धूम -- मै • ऽ ऽ	प प प म-म म ना ऽ • •	म म म ग् ग् ग् म • • •
		ग् दि दि दि र • • •
		सा --- रा ऽ ऽ ऽ
		नि सा --- • • ऽ ऽ ऽ

×	१	११
सा-रि- सा ऽ ऽ ऽ	त्रि म -- म -- ऽ	प -- धू धू धू यो ऽ • • ऽ •
		धू धू म त्रि नि धू धू धू धू नी • • ऽ • • ऽ •
		म मग्-ग् दि -- • • • ऽ • • • ऽ •
		सा --- र ऽ ऽ ऽ

०	१	११
म-प- रा ऽ म ऽ	त्रि-त्रि त्रि धू धू धू भी • • रि	सां --- सा ऽ ऽ ऽ
		त्रि सां-सां ग् दि दि • • • ऽ मो • • •
		त्रि सां -- रे • • ऽ •
		त्रि सां --- • • • ऽ ऽ •

x

निष् निष्
म • ई •

सां- ^० दि ^१ गं-	गं ^१ दि ^१ रि ^१ - ^० दि ^१ दि ^१ नि-	नि निष्- ^५ प-	ष्-म-	--पम ष
रे ऽ ऽ • • ऽ ऽ	पे • • ऽ ऽ • • ऽ ऽ	छी • • ऽ ऽ • ऽ	आ ऽ ई ऽ	ऽ ऽ ल • ग

०

नि नि
निष् ष ष
त • • •

सां- ^२ नि	नि दि ^१ - ^२	दि ^१ निष्मगदि- ^{११}	सा-सा-	दि ^१ नि षमप
ब्यो ऽ ऽ ऽ ऽ	• • ऽ ऽ	ती • • • • ऽ ऽ	र ऽ री ऽ	• दी • र

राग कोमल आसावरी

त्रिताल

गीत

स्वार्थी—पड़ेया, छावो छवो रे, आन मुगइ पड़े पळना ।

अन्तरा—रतन रंजने सो जक्ति दिहोलना ।

हलरावत असोदा नन्द फी लळना ॥

स्वार्थी

X			५								२३			
											प	प	म	प
											म	प	म	सा
पू	-	प	पू	पू	म	पपू	रि	पू	-	म	गु	-	रि	सा
रा	५	वो	ला	•	पो	रे•	•	का	५	वो	ला	५	वो	रे
सा	सा	सां	सां	सां रि	रि	सा	सां रि	रि	पू	प	प	प	म	प
धा	•	ख	खु	ग•	इ	घ	च	प	ख	ना	प	पै•	•	या

अंतरा

X			५								२३			
											म	म	प	प
											र	त	न	प
प	पू	सां	सां	सां रि	रि	सां	-	-	मम	-प	-प	रि	पू	पू
क	रि	त	दि	वो•	क	ना	५	५	रत	५म	५क	प•	म	म
											त•	न	खो	•
											प	प	म	म
											प	प	म	म

x	-	५	०	१३											
-	प ष्	-सा	-सा	सां रि'	नि	सां	-	-	सांसां	सां रि'	गु'	रि'	रि'	सां	सां
५	ब टि	५त	५ रि	बो •	ळ	ना	५	५	हस	५रा	•	ष	त	ज	सु
सां	रि'नि	-	सां रि'	सां	सां नि	नि रि'	सां रि'नि	नि ष्	नि ष्	प					
वा	••	५	नं	•	द •	की	••	ळ	ळ	ना					

मुखड़े के प्रकार

x	५	०	१३										
	प - ष्	नि	ष्	-	म--प	ष्	प	-प	पष्	म	प	सां	
	साऽऽ•		बो		साऽऽ•	•	बो	५ व	के •	•	या	•	
	-	मप	ध्रम	प	-	ध्रप	ध्रम	प	-	-प	ध्रम	पसां	
	५	ळा •	••	बो	५	ळा •	••	बो	५	५ व	के •	या •	
	सां रि	मप	ष्	-	मप	ध्रसां	रि'	-प	पष्	म	प	सां	
	ळा •	••	बो	५	ळा •	••	बो	५ व	के •	•	या	•	
	सां रि	रिम	मप	पष्	-	मप	पष्	ध्रसां	सां रि'	-प	ध्रम	पसां	
	ळा •	••	बो •	••	५	ळा •	••	••	••	५ व	के •	या •	
	रि' रि	रि', नि	नि नि,	ध्रष्	ध्र, म	मम	गग	रि रि	सासा	-प	ध्रम	पसां	
	ळा •	•, बो	••	ळा •	• बो	••	ळा •	बो •	••	५ व	के •	या •	
	मप	ध्रसां	सां ग	गं रि'	नि नि	निष्	ध्रम	मग	ग रि	सा, प	ध्रम	पसां	
	ळा •	••	••	बो •	••	ळा •	••	बो •	••	•, म	के •	या •	

X															
		सादि	रिम	-	मप	पपू	-	पपू	पसा	-	-प	पम	पसा		
		सा०	पो०	ऽ	सा०	पो०	ऽ	सा०	पो०	ऽ	ऽप	के०	या०		

तानि

X														
१)						सादि	मप	पपू	मगू	रिसा	-प	के	या	
२)		सादि	मप	पपू	मगू	रिसा,	पपू	मगू	रिसा	प	पम	-प	पम	पसा
										पो०	ऽप	के०	या	
३)		पपू	मग	रिसा,	पपू	मगू	रिसा,	पपू	मगू	रिसा	ऽप	के	या	
४)		सादि	मप	पपू	मगू	रिसा	पपू	-पू	मगू	रिसा	ऽप	"	"	
५)		सासा	सा, दि	रिदि	मम	म, प	पप,	पपू	मगू	रिसा	"	"	"	
६)		सादि	रिसा,	साम	मदि,	रिप	पम,	पपू	मगू	रिसा	"	"	"	
७)		सादि	सादि	रिम	रिम	मप	मप	पपू	पपू	पम	"	"	"	

५	५	०	१३													
८)			साम	मदि	- दि	द्विप	पम	- म	मध्	ध्प	- प	ऽव	दे	या		
९)			सादि	मप	धसां	द्वि'द्वि'	निध्	मग्	द्विसा	प	सां	ऽव	"	"		
१०)			सादि	मदि	द्विम	पम	मप	ध्प	पध्	पम	पध्	पव	"	"		
११)			ध्नि	निध्	निन्	ध्म	ध्म	मग्	गदि	द्विसा	द्विन्	साध	"	"		
१२)			सादि	मप	निन्	ध्, नि	निध्	निन्	ध्ध	मग्	द्विसा	ऽव	"	"		
१३)			सासा	सा दि,	द्विदि,	मम	म, प	पप,	ध्ध्,	ध्, सां	सांसां,	द्वि'द्वि'	निन्	ध्ध		
मग्	द्विसा,	सासा	सा, प	पप,	सां	सासा	सा, प	पप,	सां	सासा	सा, प	पप	सां, ध	दे	या	
१४)			सादि	म, सा	मम	दि -	-	द्विम	प, दि	पप	म -	-	मप	ध्म		
निन्	ध्ध	मग्	द्विसा,	निन्	ध्ध	मग्	द्विसा,	निन्	ध्ध	मग्	द्विसा,	ध्म	ऽव	दे	या	
१५)			सादि	द्विम	मप	पध्	ध्म	मग्	गदि	द्विसा	सादि	द्विम	मप	पध्	ध्सां	स नि
निध्	ध्म	मग्	गदि	द्विसा	सादि	द्विम	मप	पध्	ध्सां	सादि'	द्वि'मं	मंग्	गू'द्वि'	द्वि'नि	निध्	
ध्म	मग्	गदि	द्विसा	सादि	द्विम	मप	पध्	ध्सां	-	ध्सां	-	ध्सां	- व	दे	या	
१६)			सादि	मदि	द्विम	पम	मप	ध्प	पध्	साध्	ध्सां	द्वि'सां	सादि'	गू'द्वि'		
निध्	मग्	द्विसा	सादि'	गू'द्वि'	निध्	मग्	द्विसा	सादि'	गू'द्वि'	निध्	मग्	द्विसा	- व	दे	या	

x		y		o		१३									
१७)				सादि	दि, दि	मम	मप	प, प	घृष्	घृसा	सा, सा	दि'दि'	दि'ग'	ग', ग'	दि'दि'
दि'दि'	नि, नि	धृष्	धम	म, म	गू, गू	गृदि	दि, दि	सासा	सादि	दि, दि	मम	मप	प, प	घृष्	सा
									य •	•, दे	••	या	•, •	••	•
-	सादि	दि, दि	मम	मप	प, प	घृष्	सा	-	सादि	दि, दि	मम	मप	प, प	घृष्	सा
८	य •	•, दे	••	या •	•, •	••	•	८	य •	•, दे	••	या •	•, •	••	•
१८)			सादि	मप	धृ	-	-	घृष्	मगू	दिसा	दिम	पघृ	सा		-
दि'दि'	निष्	मगू	दिसा	मप	घृसा	दि'	-	-	म'दि'	निष्	मगू	दिसा	-य	दे	या
१९)			सादि	मप	घृ-	-घ	-	घृ	-	घृष्	मगू	दिसा	दिम	पघृ	
सा	-सा	-	सा	-	दि'दि'	निष्	मगू	दिसा	मप	घृसा	दि'	-दि'	-	दि'	-
दि'दि'	धृन्	मगू	दिसा	दि'दि'	धृम	मगू	दिसा	दि'दि'	धृम	मगू	दिसा	-	-य	दे	या

राग देशी (देशी तोड़ी)

आरोह-अधरोह—सा रिमप निसा, पध्प रिग् रि ऽ सा ।

जाति—ओडव-यक्र सम्पूर्ण ।

ग्रह—शुभ्रम ।

ध्रंश—पूर्वाह्न में गार्धार; उत्तरांग में धैवत ।

न्यास—पञ्चम ।

अपन्यास—गान्धार ।

यिन्यास—पंढ्रजे ।

मुख्य-ध्रंग—पध्प रिग् रि ऽ सा, अधवा रिग् ऽ सा रि ऽ नि^{सा} नि^{सा} ।

समय—प्रातःकाल द्वितीय प्रहर ।

रस—आंध्र—शुभ्रार; मधुर—माध्व ।

विशेष-विचरण

देशी एक बहुत प्रचलित है और मधुर राग है। इसे देशी या देशी तोड़ी से मन्नु-मन्नु नामों से पहिचानते हैं। प्रचार में इसके कई रूप पाये जाते हैं। एक रूप, जिसमें 'गूध्नि' कोमल लगते हैं; दूसरा रूप जिसमें 'गू नि' कोमल और दो धैवत लगते हैं और तीसरा रूप जिसमें 'गू नि' कोमल और 'व' शुद्ध लगता है। पहले रूप के आरोह में सारंग और अधरोह में आसवारी की छाया का आभास होता है। दूसरे रूप के आरोह में सारंग और अधरोह में काफ़ी तथा आसवारी की मिश्र छाया दिखाई देती है। और तीसरे रूप में आरोह में सारंग और अधरोह में काफ़ी की छाया दिखाई देती है। किन्तु इन तीनों ही रूपों में देशी का अलग ब्यक्तित्व दिखाने के लिये जो अंग समान रूप से पाया जाता है, वह यों है—

सा रि मप नि सा, पध्प रि गू ऽ रि ऽ सा

'पध्प' करते समय धैवत शुद्ध बरतें या कोमल, यह ऊपर बनाये हुए ध्रंगों पर निर्भर है। फिर भी अन्य रागों से बचने के लिये और 'देशी' की रथाग्ना के लिये 'पध्प' या 'पध्प रिग् ऽ रि सा' यह अंग अनिवार्य है, बल्कि वही इस राग की छान है। कुछ लोग 'पध्प रिग् सारि नि सा', भी करते हैं। किन्तु 'सा रि नि सा' वासा अंग अनिवार्य नहीं है।

कर्णाटक संगीत में जो राग शुद्ध देसी के नाम से प्रचलित है, उसका आरोह प्रचाराह इस प्रकार है—सा रि म प ञ् नि साँ, साँ नि ध्र प म ग् रि सा । स्वर-दृष्टि से यह व्यासवरी अंग प हमारे देसी के समिकट है, किन्तु हमारे देसी में 'प ध्र प रि ग' यह ङो अनियार्य अंग है, यह इसमें नहीं है ।

आवकल जो यह राग देसी के नाम से ही अधिकतर प्रचलित है । देसी-तोड़ी नाम का स्पवहार अब कहीं कहीं आवस्तर मात्रा में रह गया है । गुर्जरी तोड़ी, पंचम की तोड़ी (मिर्गी की तोड़ी), त्रिसासखानी तोड़ी, भूवाळ तोड़ी, लस्नी तोड़ी, आदि ङो तोड़ी के प्रकार हैं, उन सब में 'द्रि ग् द्रि साँ' यह स्वर विधान समान रूप से पाया जाता है । किन्तु इस देसी-तोड़ी में 'द्रि ग् द्रि साँ' के पक्षय शुद्ध प्रथम के साथ "रि ग् रि साँ" पाया जाता है । इसलिए यह कह सकते हैं कि जैसे भूवाळ तोड़ी में सा द्रि ग् प ध्र साँ, प ध्र प द्रि ग् द्रि साँ किया जाता है, उसी का अभाव देसी में अल्प स्वरों में ङो है :—सा रि म प नि साँ, प ध्र प रि ग् रि ऽ सा । और शायद इसलिये देसी के साथ तोड़ी नाम का प्रयोग किया होगा ।

इसका आरोहायरोह ङो है—सा रि म प नि साँ, प ध्र प रि ग् रि ऽ सा । तान केते समय नि साँ रि म प नि साँ, ङो भी था सकते हैं । प ध्र प रि ग् रि साँ, यह रागशाची स्वर क्रिया है ।

इसकी आलापचारी 'साँ' दिखाने के बाद 'रि' से आरम्भ होती है । यथा :—रि म प, रि म प ध्र म प, रि म प नि साँ, रि ग् साँ रि नि साँ, प ध्र म प, रि ग सा रि नि साँ । तानें भी बहुधा प्रथम से ही आरम्भ होता है, यद्यपि कमी-कमी निपाद से भी उठती हैं । तब भी प्रथम इसका प्रह है, पूर्वांग में गान्धार, और उत्तरांग में शैवत अद्य स्वर है । पञ्चम न्यास है, गान्धार पर अग्न्यास होता है । यथा :—प ऽ रि ग्, रि म प रि ग्, प ध्र प रि ग्, प ध्र म प रि ग्, रि म प ध्र म प रि ग्, नि साँ रि म प ध्र म प रि ग्—इत्यादि । भूळ से भी प्रथम पर न्यास न किया जाय । अन्यथा तत्काळ वहाँ काफी का दर्शन होगा ।

यह राग प्रासंग्य है : कुछ गुणीधन इसे काफी का प्रासंग्य रूप मानते हैं । यह सर्वप्रिय और तत्काळ ङा जानेवाला राग है ।

राग देशी

मुक्त झालाप

(१) सा, नि॒ सा॑ ऽ प्र, ध॒ ऽ प्र, ध्र॒म॒ ऽ ध्र॒प॒ ऽ सा॑ ऽ नि॒सा ; सा॑ ऽ रि॒ रि॒सा॒नि॒सा॑ ऽ प्र॒ ध॒ ऽ प्र,

ध्र॒प॒म॒प॒ सा॑ ऽ नि॒सा - रि॒ग॒रि॒ सा॑ ऽ, ध्र॒प॒ध्र॒ प॒ ऽ सा॑ ऽ नि॒सा, रि॒ रि॒ ऽ सा॒नि॒ रि॒ सा॑ ऽ ध्र॒ प॒ ऽ प्र॒म॒ ध्र॒प॒ ऽ नि॒सा ।

(२ रि॒ ऽ ऽ ग॒ रि॒ सा, सा॒रि॒ ग॒ ऽ ऽ रि॒ ऽ ऽ ग॒ रि॒ सा, रि॒रि॒सा॑ सा॑ ऽ ग॒ग॒रि॒ रि॒ ऽ ग॒ ऽ रि॒ ऽ ऽ ग॒ रि॒

नि॒सा, ध्र॒प॒ प॒ ऽ सा॒सा॒नि॒ नि॒सा॑ रि॒रि॒सा॑ सा॑ ऽ ग॒ग॒रि॒ रि॒ ऽ ग॒ ऽ रि॒ ऽ ऽ रि॒ ऽ सा॑ ।

(३ सा॒रि॒ग॒ ऽ रि॒ ऽ सा, सा॒सा॒ रि॒रि॒सा॒नि॒सा॒रि॒ ग॒ ऽ रि॒ ऽ सा, रि॒नि॒सा॑ रि॒सा॑ ऽ ग॒रि॒ ग॒

ऽ रि॒ ऽ सा, सा॒सा॒नि॒ प॒नि॒ रि॒रि॒सा॒नि॒सा॒ ग॒ग॒रि॒सा॒रि॒ ग॒ ऽ रि॒ ऽ सा, प्र॒म॒प॒ सा॒नि॒सा॑ ग॒ रि॒

ग॒ ऽ रि॒ ऽ सा, सा॒रि॒ग॒ ऽ रि॒ ऽ सा, सा॒रि॒ग॒ ऽ रि॒ ऽ सा, रि॒रि॒सा॑ रि॒ सा॑ ।

(४) सा॒ रि॒ म॒ प॒ ग॒ ऽ रि॒ ग॒ सा॒रि॒ ऽ नि॒सा॑ ऽ, रि॒सा॑ म॒रि॒रि॒ प॒म॒ ध्र॒प॒ ग॒ ऽ रि॒ ग॒ सा॒रि॒

नि॒सा, ध्र॒प॒ सा॒नि॒ रि॒सा॑ म॒रि॒रि॒ प॒म॒ ध्र॒प॒ ग॒ ऽ रि॒ ग॒ सा॒रि॒ ऽ रि॒ सा॑ ।

ॐ इस प्रकार के चिह्नित स्वरों का पेशक हूने भर के लिए प्रयोग किया जाता है ।

रि'ड्डां रि'रि' ड सां, सारिखार रिमरिम भयमप पहात्रिां सांरि'रि' रि'मं गं नि'ड्डां रि'रि' ड सां ड नि'लां, सांरि'सांरि' ड नि'लांत्रिां ड पपपप ड मरमर ड रिग्गिगू ड सारिखारि ड नि'सात्रि'मा ।

(१०) नि'सारिमपनि'सांरि' गू नि'मं पे'मं पे' ड चंमंपे' गं, सां रि' मं पे' ड चंमंपे' गं,

सांरि'पे' रि'मं ड सांरि' ड नि'लां, रि'मंपे'पे'मंपे' रि'गं ड सां रि' ड सां, षम षप सांरि' रि'मां मंरि'पे'मं चंपे' ड चंमंपे' गू ड रि'गू ड रि' ड सां, षपपपपप ड रि'सांरि'नि'लां ड गू'रि'गू'सांरि' ड भंमंपे'मंपे' ड गू' रि'गू' ड

सांरि' ड नि'लां ड पप ड मप ड रिग्गू सांरि' ड नि'सा ।

(११) सांरिमपनि'सां—रि'मंपे'चंमंपे' रि'ड्डां रि' ड सां, रि'ड्डां रि'रि' ड सां, नि'ड्डां सांसांड्डप,

पड्डप षप ड म, मड्डप पप ड रि, रिड्डां रि'रि' ड सा ।



राग देशी

खयाल

विलम्बित एकताल

गीत

स्यायो—म्हारे डेरे आजो आजो जी महाराजा जेठा,
म्हारे डेरे आ, हूँ तो थारी टेक (टहल) करेसा जेठा म्हारे.....।

अन्तरा—अगली बात तुम् हम् से न बोणे,
सदारंग मीन मजाजो जेठा म्हारे.....॥

स्थाई

६	११
०	०
x	
०	५
०	११
०	११

<p>सारि - रि नि - भा • ड • • •</p>	<p>त्रि सा - - जो • ड ड</p>	<p>गू --- रि रि - सा भा ड ड ड • ड</p>	<p>रिप म - - प प - म जो • • ड ड जो • ड ड • • • • ड</p>	<p>रि - गू - रि सा म्हा ड रे ड • • डेरे</p>
<p>प म प ध्रुव - रा • • • • ड</p>	<p>म गू रि गू सा • • •</p>	<p>सा रि रि - सा - जे • ड टा ड</p>	<p>म प - सा रि म ड म्हा • •</p>	<p>प - ध्रुव म गू - रि गू रि सा • • • • ड • • • डे रे</p>

<p>x</p> <p>सारि - रि नि भा • ड • •</p>	<p>०</p> <p>त्रि सा -- जो • ड ड</p>	<p>०</p> <p>त्रि सा --- • • ड ड ड</p>	<p>५</p> <p>- धम धप सानि ड हूँ सो या •</p>	<p>५</p> <p>त्रि सा - - रि री • ड ड •</p>	<p>५</p> <p>सानि - सा निसा टे • ड • •</p>
<p>०</p> <p>प प घ् प • ल • क</p>	<p>१</p> <p>म प - घ् मप ग् रे • ड • • शा</p>	<p>१</p> <p>रि ग् रि रि - • • जे • ड</p>	<p>११</p> <p>सा - , सा ठा ड ड, ग्हा</p>	<p>११</p> <p>म प रि म प - घ् मप • • • ड • •</p>	<p>११</p> <p>ग - रि ग् रि सा रे ड • • डेरे</p>

अन्तरा

<p>x</p>	<p>०</p>	<p>५</p> <p>- धप धम धप ड भ • ग • लो •</p>	<p>५</p> <p>सा - - - वा ड ड ड</p>	<p>५</p> <p>त्रि सा - - सारि • • ड ड त •</p>	
<p>०</p> <p>त्रि सा - - तु • ड ड</p>	<p>६</p> <p>त्रि सा सा सा सा • • म् ह म</p>	<p>११</p> <p>सा रि ग् - - रि ग् से • • ड ड • •</p>	<p>११</p> <p>रि रि - - - सा - • • ड ड ड ना ड</p>	<p>११</p> <p>- रि रि - सानि सा ड ड • • ड बो • ड •</p>	<p>११</p> <p>त्रि सा प घ • • • •</p>
<p>x</p> <p>प - - - लो ड ड ड</p>	<p>०</p> <p>- म प - घ मप ड • • ड • स •</p>	<p>५</p> <p>ग - रि रि म दा ड • •</p>	<p>५</p> <p>- - धम धप ड ड रं • ग •</p>	<p>५</p> <p>त्रि - सा - बी ड • ड</p>	<p>५</p> <p>प - प घ् • ड न व</p>
<p>०</p> <p>प म प - घ् मप बा • • ड • •</p>	<p>६</p> <p>म ग् रि ग् जो • • •</p>	<p>११</p> <p>रि रि - सा - जे • ड ठा ड</p>	<p>११</p> <p>- रि सा सा - म रि रि - प म न - ड ग्हा • • ड • • • ड • • • ड</p>	<p>११</p> <p>ध घप - मप ग् - • • • ड • • रे ड</p>	<p>११</p> <p>रि ग् - रि सा • • • ड जे</p>

राग देसी

त्रिताल

गीत

स्वायी—सौची कहो द्रम सौची, प्यारे रब नूँ भावे,
अब तुम लो मन में सौची ॥

अन्तरा—सौच को सौच में, दृढ़ ना समावे ।
कहत अदारंग, सौच को नहीं आँची ॥

स्वायी

×	५								१३							
									प	म	प	रि	गु	रि	सा	
									सौ	ची	क	हो	•	दु	म	
रि	-	-	नि	सा	-	रि	म	प	प	म	प	रि	गु	रि	सा	
सौ	५	५	•	ची	५	ए	•	•	सौ	ची	क	हो	•	दु	म	
रि	-	-	नि	रा	-	-	-	-	रि	म	प	-	रि	म	प	
सौ	५	५	•	ची	५	५	५	५	प्या	•	रे	५	र	ब	नूँ	
-	पप	मप	पप	गु	-	रि	नि	सा	निसा	-रि	म	प	-	प	म	
५	भा	••	••	वे	५	•	•	•	अब	५दु	म	लो		म	न	
पदि	सा	प	प	म	प	रि	म									
मे	•	आ	•	•	•	ची	•	•								

वाने

×	५										१३				
१)	नि,सा	रिम	पघ्	मप	रिग्	सा	नि,सा	-	सॉ	ची	क	दो	•	तु	म
२)	रि,सा	सा, म	गिरि	पम	म, घ	मप	रिग्	सारि	नि,सा	"	"	"	"	"	"
३)	सारि	सा, रि	मरि	मप	म, प	ध्प	रिग्	सारि	नि,सा	"	"	"	"	"	"
४)	सारि	सा रि,सा	रिम रि	मरि	मप	म पम	पघ्	मप	रिग्	सारि	नि,सा	"	"	"	"
५)	पघ	प, प	ध्प	मप	म, म	पम	रिम	पघ	मप	रिग्	रि,सा	"	"	"	"
६)	सारि	सारि	रिम	रिम	मप	ध्प	पघ	मप	रिग्	सारि	नि,सा	"	"	"	"
७)	सारि	रि मरि	रिम	प पम	मप	ध्प	पघ	मप	रिग्	सारि	नि,सा	"	"	"	"
८)	रि,सा	नि,सा	मरि	सरि	पम	रिम	पघ	मप	रिग्	सारि	नि,सा	"	"	"	"
९)	सारि	सा रि, रि	मम	रि मप	म प, प	ध्प	पघ	मप	रिग्	सारि	नि,सा	"	"	"	"

×	५						०	१३							
१०) ग्	रि, रि	रिसा	ध्	प, प	पम	घप	पम	रिग्	रिसा	नि सा	”	”	”	”	”
११) नि सा	रिम	पनि	सा	पध्	मप	रिग्	सारि	नि सा	सा	ची	क	हो	•	उ	म
१२) सारि	मप	नि सा	-	पध्	मप	रिग्	सारि	नि सा	”	”	”	”	”	”	”
१३) रिसा	मरि	पम	घ	सा नि	रि सा	-प	घप	रिग्	रिसा	नि सा	”	”	”	”	”
१४) सारि	मप	नि सा	रिग्	सारि	नि सा	पध्	मप	रिग्	सारि	नि सा	”	”	”	”	”
१५) रिग्	रि, रि	रि सा	नि सा	पध्	प, म	पम	रिग्	रि, सा	रिसा	नि सा	क	हो	•	उ	म
१६) नि सा	रिग्	रिसा	रिम	प	पम	पनि	सारि	नि सा	ध्	मप	रिग्	सारि	नि सा	उ	म
१७) रिग्	रि, सा	रिसा	पध्	प, म	पम	रिग्	रि, सा	रि सा	पध्	प, म	पम	रिग्	रिसा	”	”
१८) रिम	पध्	मप	पनि	सारि	नि सा	रि म	पध्	मप	रिग्	सारि	नि सा	पध्	मप	सारि	
नि सा	क	हो	•	उ	म	क	हो	•	उ	म	क	हो	•	उ	म

१९)	५				०					११						
सा०	सा, रि	मरि	मप	म, प	पप	नि०	नि, सा	रि'सा	रि'म	रि', म	पम	पध	प, म	पम	रि'ग	
रि'सा	रि'सा	नि'सा	म	धप,	मप	मरि	गुरि,	सा०	सान्	सा -	क	हो	•	तु	म	
२०)	सा०	सासा	मम	रिम	रि०	पप	मप	मम	धप	पध	पर	सा'सा	नि'सा	नि'नि	रि'रि'	
सा०	सा'सा	ग'ग	रि'ग	रि'सा	रि'रि'	सा'रि'	नि	सा'सा	नि'सा	नि'प	धप	पध	पम	पप	मप	
मरि	गुर	रिग	रि'सा	नि'सा	सा	ची	सा	ची	सा	ची	क	हो	•	तु	म	
२१)	रि'ग	रि',सा	रि'सा	सा०	सा,नि	सा'नि	नि'सा	नि,प	धप	पध	प,म	पम	मप	म,रि	गुरि	सा०
सा,नि	सान्	सा०	मप	नि'सा	सा०	मप	नि'सा	सा०	मप	नि'सा	क	हो	•	तु	म	
२२)	रि'सा	सा,म	रि०	पम	मध	पप	सा'नि	नि'रि'	सा'सा	मंग	ग',ग'	रि'रि'	रि'सा	सा,ध	पप	पम
म,म	ग,ग	गुरि	रि,रि	सासा	सा	ची	क	हो	•	तु	म	तु	म	तु	म	
२३)	रि'ग	रि'ग	सा०	सा०	नि'सा	नि'सा	पध	पध	मप	मप	रिग	रिग	सा०	नि'सा	तु	म

×	५			०			१२								
२४) रि'ग'	रि'सां	सरि'	सन्नि	नि'सां	निप	पघ	पम	रिगू	रिसा	नि'सा	क	हो	•	तु	म
२५) नि'सां	नि'सां	-	पघ	पघ		मप	मर	-	रिग	रिग	-	सारि	सारि	-	नि'सा
नि'सा	साँ	ची	क	हो	•	•	क	ह	•	•	क	हो	•	तु	म
२६) रिगू	रि,मा	रिसा	मप	म,रि	गू'रि	सारि	सा,प	घप	मप	म,रि	गू'रि	सारि	सा,नि	सांनि	पघ
प,म	पम	रगू	रि,सा	रिसा	रि'गू'	रि',सां	रि'सां	नि'सां	नि'प	घप	मप	म,रि	गरि	सारि	सा-
रिम	पनि	सां	रिम	पनि	सां	रिम	पनि	सां	साँ	ची	क	हो	•	तु	म
२७) सारि	सा,सा	रिसा	रिम	रि, रि	मरि	मर	म, म	पम	प घ	प, प	घप	नि'सां	नि,नि	सांनि	सारि'
सां,सां	रि'सां	रि'गू'	रि र'	गू'रि'	सां र	सां,सां	रि'सां	नि'सां	नि,नि	सांनि	प घ	प, प	घप	मर	मम
पम	रिगू	रि,रि	गू'रि	सा रि	सा,सा	रिसा	नि'सा	-	साँ	ची	क	हो	•	तु	म
२८) सारि	सारि	रिम	रिम	मप	मप	पघ	पघ	मप	मर	पसां	नि'सां	पघ	पघ	मप	मर

×	५								१३							
परि'	सारि'	निर्मा'	निर्मा'	पघ	पघ	मप	मप	पग'	रिग'	सारि'	सारि'	निर्मा'	निर्मा'	पघ	पघ	
मन	मन	रिग्	रिग्	सारि	सारि	नि मा	नि सा	—	सॉ	ची	क	हो	•	तु	म	
२९)	सारि	नि सा	नि सा	रिग्	रिग्	सारि	सारि	नि सा	नि सा	मन	मन	रिग्	रिग्	सारि	सारि	
नि सा	नि सा	पघ	पघ	मप	मप	रिग्	रिग्	सारि	सारि	नि सा	नि सा	नि सा	नि सा	पघ	पघ	
मन	मन	रिग्	रिग्	सारि	सारि	नि सा	नि सा	सारि'	सारि'	नि सा	नि सा	पघ	पघ	मप	ना	
ग्	रिग्	सारि		नि सा	नि सा	रिम	पघ	मन	सॉ	चा	क	हो	•	तु	म	

राग गुर्जरी तोड़ी

आरोह-अवरोह—नि रि ग् म् घ् नि सां, सां नि घ् म् ग् रि ग् रि सा ।

जाति—षाडव-षाडव ।

मह—शृंगम । द्रष्टव्य-विशेष विवरण ।

अंश—पूर्वाङ्ग में गांधार अंश; उत्तरांग में चैवत उपांश ।

न्यास—गांधार ।

अपन्यास—चैवत ।

विन्यास—पडज ।

मुख्य-अंग—^{रि} ग् ^{म्} _ऽ रि ग् रि _ऽ सा ।

समय—प्रातःकाल सूर्योदय के बाद नौ बजे से ग्यारह बजे तक ।

प्रकृति—करुण; असह्य विरह की अपार वेदना ।

विशेष विवरण

यह एक बड़ी करुणामय रागिणी है । इसमें करुण, गांधार, चैवत अति कोमल, निदाद शुद्ध और मध्यम तीव्रतर लगता है । पञ्चम वा समूचा त्याग है । इस रागिणी में असह्य विरह की अपार वेदना भरी पड़ी है ।

इसके आरोह-अवरोह की सामान्य परिपाटी यों हैं :—

नि रि ग् म् घ् नि सां सां नि घ् म् ग् रि ग् रि सा

फिर भी 'सा, रि ग् रि ग् रि सा'—यह इस रागिणी की प्राण-क्रिया है । द्रुत तानों में नि रि ग् म् घ् नि सां नि घ् म् ग् रि ग् रि सा यो जाते हैं । क्योंकि 'नि-सा-रि-ग्' में मग्निकट के स्वर होने के कारण उन्हें विश्वस्थित गति में तो मुविधा से लिखा जा सकता है, किन्तु द्रुत गति में यह भिन्नान्न कट साध्य होने के समय साथ अनावश्यक भी है । इसी लिये तानों में लक्ष्य 'नि रि ग् म् घ् नि' ही है । इस प्रकार तानों में आरम्भक स्वर भले ही निदाद है, किन्तु रागिणी का सुन्दर अङ्ग निदाद से शुरू नहीं होता । आलाप में सब 'सा' पर मिलते हैं, तत्र प्रायः 'म् घ् सा' या 'घ् सा' ही जाते हैं । किन्तु सब घ् नि सा, घ् नि सा रि, घ् नि सा रि ग्, इस प्रकार की विधि की

एती दे तय आरोह में निषाद प्रसुक्त होजा है। आरोह में निषाद वर्ण नहीं है, किन्तु राग की रचना में 'मू घ् सा' और 'मू घ् नि सा' विभिन्न श्रग से प्रयुक्त होते हैं।

'सा रि ग्' यों लेकर गान्धार पर टहरिए और टहरकर 'रि ग् रि सा' कहकर नीचे उतरिये, केवल इतने ही स्वरों में तोड़ी दीग जायगो, क्योंकि तोड़ी की प्राण-त्रिया यही है। जितने प्रकार की तोड़ी है, प्राय सभी पूर्वोक्त में ही दिखाई देता है। इस प्रकार यह असद्विग्न सत्य है कि यह राग पुर्याङ्गराची ही है। फिर भी न जाने क्या पण्डित भातलवने ने इसे उधारीग-प्रधान माना है, जो लक्ष्य के विरुद्ध है।

आजकल 'मिर्चा की तोड़ा' के नाम से जा राग प्रसिद्ध है, यह इस गुर्जरी ताड़ी के आरोह में केवल पञ्चम वा अरुण प्रयोग करने से ही बनता है, इसमें कई विशेष अंतर नहीं है। मिर्चा को तोड़ी में भी चार-चार ताड़ी व आविभाव के लिए पञ्चम वा त्याग दिखाना ही पडता है, केवल कहीं कहीं पञ्चम दिखाकर उसे मिर्चा को तोड़ी कहा जाता है।

गुर्जरी तोड़ी का गुर्जर जाति से या गुर्जर राष्ट्र से सम्बन्ध जोड़ा जाता है। जैसे 'मुल्तानी' मुल्तान से, 'भूपाली' भूपाल से 'बारा' बरार से, और 'मंगली' मंगल से सम्बन्धित कही जाती है, वैसे ही गुर्जरी तोड़ी का सम्बन्ध गुर्जरी से, गुर्जरराष्ट्र (गुजरात) से लगाया जाता है।

इसका यह स्वर निर्धारित करते समय यह स्मरणीय है कि तोड़ी की स्थापना किन स्वरों से होती है। रागरम्भ में तो 'सा, घ् सा, मू घ् सा' इत्यादि स्वर प्रयोग किये जाते हैं, किन्तु तोड़ी का अपना स्वरूप रि ग् ऽ रि ऽ सा करने पर ही निरूपता है। इस प्रकार सामान्य आरम्भ पद्धति से होने पर भी इस राग के मुरार अग या प्राण त्रिया का आरम्भक स्वर ऋषम ही है। इसलिये श्रवण को इसका प्रहस्वर मानना उचित है। 'सा' पर कुछ टहरकर यदि 'रि ग् ऽ रि ऽ सा' कहा जायगा, तो तोड़ी तत्काल दिखाई देगी। इस दृष्टि से भी श्रवण ही इसका प्रहस्वर है। पूर्वांग में गान्धार अश और न्यास है। एय उच्चांग में धैरत उपाश और ऋष यास है।

इस राग में आलाप करते समय सभी स्वरों पर टहर सकते हैं और आलाप के विस्तार को बढ़ा सकते हैं। किस स्वर पर जितना टहरा जाय और कैसे टहरा जाय यह सब शुचिनुय से श्रात हागा। इसके मात्र निषाद और मध्यम पर समझकर दयाविधि-यास करने से अपार निराशा और कष्टना निर्दिष्ट होती है।

रस दृष्टि से इस रागिणी में आलाप ही किये जाय, तानों का समूचा त्याग किया जाय, यह नितान्त आवश्यक प्रतात होता है, क्योंकि यह रागनी कष्टना मरी है। आजकल सामान्य परिवारी ऐसी बन गयी है कि प्रत्येक राग में तैवारी दिखाने के लिए तान प्रयोग आवश्यक सा माना जा रहा है। इसलिये इसमें भी तान तानें ली गयी हैं। इसका आरोह श्रवणारोह ही है, जो के कारण इसमें तान का विस्तार सरल रहता है, इसलिये भी प्राय सभी इसमें कसकर तानें लेते रहते हैं। हम भी ऐसी पड़ती हैं। किन्तु हमारे मत से इन कष्टन-रस वाहिनी रागनी में तानें न लेना ही समुचित है।

इस राग की स्वरवलि बहुत ही कठिन है। 'निःसार्ङ्ग' के निःकटतम स्वर होने के कारण, 'द्दि - ग् - घ्' अति कोमल और मध्यम तीव्रतर रहने से तथा पञ्चम का स्वाग होने से नये सीखनेवालों के लिये इस स्वरवलि का उच्चार दुष्कर और नितान्त कष्टसाध्य है। पण्डित मातलण्डे ने न जाने क्या समझकर प्रथमवर्ष के पाठ्यक्रम में 'तोड़ी' को प्राथमिक शिक्षण में ही स्थान दे दिया है, जो शिक्षण शास्त्रकी वैज्ञानिक पद्धति के सर्वथा प्रतिकूल है; और किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है।

गुरु के पास बैठकर जो तोड़ी सीखें हों, अपने शिष्यों को सिखा कर लिहोंने अनुभव लिया हो, वे ही इसकी कष्ट साध्यता को समझ सकते हैं। पाठ्यक्रम को निर्धारित करते समय इस बात का ध्यान रखना नितान्त आवश्यक है कि विद्यार्थियोंकी ग्रहण शक्ति को जो सरलता से सुलभ हो, सुविधा से साध्य हो, उसे ही प्राथमिक शिक्षण में स्थान दिया जाय।

राग गुर्जरी तोड़ी .

मुक्त आलाप

(१) सा, ध्र सा, रि सा ध्र ड सा, म् ध्र सा, सा सा ड रि सा ध्र ड म् ध्र सा । सा रि

रि म् ग् रि ग् ड रि ड सा, सा रि ड सा, नि सा रि ग् ड सा, नि सा सा रि रि ग् ड सा, ध्र नि ड सा रि ड ग् ड सा,

ध्र नि सा रि ग् ड सा, ध्र नि ड ध्र सा ड नि रि ड रि ग् ड सा, ध्र नि नि सा सा रि रि ग् ड सा, ध्र नि नि नि ड

नि सा रि सा रि रि ग् ड सा, ध्र नि नि नि नि ड नि सा रि सा ड रि रि ग् ड सा, सा रि ग् ड ड म्
रि रि ग् ड रि ड सा ।

(२) ध्र सा ड नि रि ड सा ग् ड सा, ध्र सा नि ड नि रि सा ड सा ग् रि ड सा, ध्र नि ड ध्र सा ड ध्र रि ड

ध्र ग् ड रि ग् ड सा ।

(३) सा, ग् रि सा नि ध्र ड ध्र ग् ड रि ड सा, म् ध्र नि सा रि ग् ड रि ड सा, म् ध्र ड ध्र नि ड रि सा ड

सा रि ड रि ग् ड रि ड सा, म् ड नि ध्र ड सा ड, ध्र ड सा नि रि ड, सा ड ग् रि ड ग् ड रि ड सा, म् नि ध्र सा नि रि
सा ग् ड रि ग् ड रि ड सा, म् नि ध्र सा ड ध्र सा नि रि ड सा ग् रि ग् ड रि ड सा ।

(४) सा रि ग् ड, ध्र नि सा ग्, ग् रि सा रि ग्, रि ग् ड सा रि ड सा ग्, ग् रि नि ध्र ड ध्र नि सा रि ग्,

नि ड सा रि सा ग्, रि ड ग् रि ड सा ।

गू म् धू म् सा द्वि गू म् सां नि गू म् सां
 (११) सा द्वि गू म् धू, सा द्वि गू म् धू, सा द्वि गू म् धू, मधूनि ऽ धू, गू म् मधू धनि ऽ

नि द्वि गू सां नि सां नि सां
 धू; रिग् गू म् ऽ मधू धनि ऽ धू, ध ऽ धूमग् धूनि ऽ धू, धू ऽ धूमग् मूग्ग् ऽ गू म् मधू धनि ऽ

नि म धू म् गू म् धू नि सां नि सां नि धू धू म्
 ध, धू ऽ धू म् गू द्वि गू म् धू नि ऽ धू ऽ, धू ऽ मग्ग्हिता द्विग्ग्धनि ऽ धू, नि निधू ध ऽ नि

सां नि गू गू द्वि म् म् गू म् सां नि गू
 ऽ धू ऽ, म् म् गू ऽ धू धू म् ऽ नि निधू धू ऽ नि ऽ ध, नि धू नि म् ऽ धू धू गू ऽ मग्ग्ग्हि ऽ गग्ग्हिता ऽ द्वि

म धू नि सां नि सां नि धू म्
 गू म् धू नि ऽ धू, निधू निग् धूम धू म् मग्ग्ग्हि गग्ग्हि गूता गग्ग्हि म् धू निधू नि ऽ धू, निधू ऽ धू म्

गू द्वि सां नि म् गू द्वि
 ऽ म्ग्ग्ग्हि ऽ गग्ग्ग्हि ऽ द्वि म् ऽ नि ऽ ध, धू ऽ म् म् ऽ गू गू ऽ द्वि ऽ द्वि ऽ सा ऽ।

⊗ सा द्वि गू म् धू
 (१२) सा द्वि गू म् धू नि सां नि धू निधू ऽ, नि द्वि गू म् धू नि सां नि धू निधू ऽ, सा द्वि गू म् धू नि

⊗ धू नि म् धू
 सां नि धू निधू, सां ऽ ऽ नि सां ऽ सां धू ऽ सां नि धू निधू, म् धू सां ऽ ऽ द्वि सां नि धू निधू, सां नि सां ऽ

⊗ सा
 नि धू धू म् सां नि धू निधू, मग्ग्ग्हि सा द्वि गू म् धू ऽ सां नि धू निधू, मग्ग्ग्हिता ऽ द्वि गू म् धू सां नि धू निधू, सां ऽ ऽ म्

⊗ सां नि धू निधू, सां ऽ ऽ म् मग्ग्ग्हि नि निग्ग्ग्हि सां ऽ ऽ म् म् म् धू सां ऽ ऽ म् धू सां नि धू निधू, सां ऽ ऽ म्

सां नि धू निधू ऽ, म् धू म् ऽ गू म् ऽ द्वि गू द्वि ऽ सा द्वि सा।

१ निपाद के प्रत्यये चवार में तार पङ्क्त का गुण स्थर्य है और साद में चैवत् के उच्चार के साथ पुनः निपाद का स्थर्य है। यह यक्ष्म प्रयोग प्रत्यय गुणमुल्ल से ही सीखा जा सकता है।

(१६) साहिगुम्बनि साहि' ग' ऽ रि' ऽ ग' ऽ रि' ऽ सा, सां ऽ रि' ग' ऽ रि' ऽ सां, निसाहि' ग' ऽ

रि' ग' रि' ऽ सां, घनिवाहि' ग' ऽ घ' ऽ ऽ ग' ऽ रि' ऽ सां; धनिघसां ऽ निसां निरि' ऽ साहि' सां ग' ऽ रि' ऽ सां,

रि' रि' सां निवाहि' ग' ऽ ऽ रि' सां निघ' ऽ सां निघ' म' ऽ घसां रि' ग' ऽ रि' ऽ सां, साहि' रि' ग' ऽ निसां सां रि' ऽ

घनि निसां ऽ रि' ग' ऽ रि' ऽ सां, साहि'—रि' ग' ऽ ग' रि' रि' सां ऽ, निसां साहि' ऽ रि' सां सां नि ऽ, घनि निसां ऽ

नि घ' सां नि निघ' ऽ, घनि निसां साहि' रि' ग' ऽ रि' ऽ सां, ग' रि'—रि' सां ऽ सां नि निघ' ऽ निघ' घ' म' ऽ म' घ'

साहि' रि' ग' ऽ रि' ऽ सां, रि' रि' सां निसां नि ऽ सां नि घ' निघ' ऽ नि निघ' म' म' ऽ घ' सां रि' ग' ऽ रि' ऽ सां,

नि ऽ सां नि घ' ऽ निघ' म' ऽ घ' म' ग' ऽ म' ग' रि' ऽ सा ।

(१७) साहिगुम्बनिवाहि' ग' ऽ रि' ग' ऽ रि' ऽ सां, साहिगुम्बनिसां ऽ सा, रिगुम्बनिरि' ऽ रि, गुम्बनि

रि' ग' ऽ ग', म' निरि' ग' म' ऽ म, म' घ' सां ऽ निसां, सां ऽ रि' सां निघ' ऽ घ' ऽ ऽ निघ' म' ग' ऽ म' ऽ ऽ घ' म' ग' रि' ऽ ग' ऽ

म' ग' रि' सा ।

ममगमगर् धधमधमग निनिधनिधम् सा।निसानिध रि'रि'सार्नि'नि नं'नृ'नृ'नृ'सां रि'रि'सार्नि'सांनि'निध् सांनि'निध्
 निनिधनिधम् धधमधमग ममगमगर् गगर्गर्गि'मा, सारि'गम् धनि'सार्' सांनिधम्'भगर्सा। निरि'गम्'म' मगर्सा।
 रि'गम्'ध' धमगर्, गम्'धनि'डनि'निधम्, मूध'निसा'डसां सांनिधम्, धनि'सार्'डरि' रि'सांनिध्, सांनिधम् निधम्
 धमगर् मगर् सा रि'गर् सा धनिधम् रि'नृ'सां सांनिधम् मगर्सा। सारि'गम् धनि'सार्' ग'गर्'सां सांनिधम्
 मगर्सा। ग'गर्'सां सांनिधम् मगर्सा ग'ग'डरि' सांनिधम् मगर्सा, रि'ग'रि'ग'डरि' सांनिधम्
 मगर्सा। गगर्सा निनिधम् ग'ग'रि'सां सांनिधम् मगर्सा। ग'रि'गगर्सा निध'निनिधम् ग'रि'ग'ग'रि'सां
 सांनिधम् मगर्सा। ग'रि' गगर्सा, निध'निनिधम्, ग'रि'रि'ग'ग'रि'सां सांनिधम् मगर्सा।
 सारि'गम् मगर्सा म'धनि'सांनिधम् सारि'गम्' म'ग'रि'सां सांनिधम् मगर्सा। निरि'गम्'म' मगर्सा,
 म'धनि'सांनिधम्, निरि'गम्'डम' मगर्सां सांनिधम् मगर्सा। मगर्सा सांनिधम् म'ग'रि'सां सांनिधम्
 मगर्सा। निरि'गम्'धनि' निरि'गम्' ध'धम्'ग'रि'सां सांनिधम् मगर्सा। निरि'गम्'धनि' निरि'गम्'धनि'
 सांनिधम्' म'ग'रि'सां सांनिधम् मगर्सा।

नोट :—ऊपर लिखी तानों में ही बीच बीच में कहीं-कहीं निम्नलिखित टंग से पंचम का प्रयोग करने से पंचम
 वाली तोड़ी (मिर्चा की तोड़ी) का रूप बन सकेगा।

पम्'धम्प रि'ग'रि'सानि'सा, प'डम्'धम्प रि'ग'रि'सा, म'धम्प म'धम्प मगर्सा। पम्'धम्प निध'सांनिध्प
 गम्'धम्प मगर्सानि'सा। पम्'धम्प निध'सानि रि'सानि'सा धम्प म'धम्प मगर्ग'रि'सानि'सा। निरि'गम्'धनि'
 सारि'सानिधम् म'धम्प मगर्ग'रि'सानि'सा। निरि'गम् धनि'सार्' ग'ग'रि'सां सारि'सानिध्प म'धम्प'म'ग'
 रि'ग'रि'सा।

×

५

साँ - - -	- - निसाँ -	साँ - - -	निसाँ - - -	रिसाँ निष - -	साँ - नि रि' साँ रि'	रि' ग' - म'	ग' ग' रि' - -
हा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ • • ऽ	री ऽ ऽ ऽ	• • ऽ ऽ ऽ	दे • • ऽ ऽ	• ऽ • र • •	क • ऽ •	र • • ऽ ऽ

•

१३

साँ - - -	साँसाँ - साँ रि'	नि - ष -	म - ग -	म - रि -	ग - - -	म - ग -	- - म ष
ऽ	• • ऽ • • ऽ	म ऽ न ऽ	र ऽ ग ऽ	• ऽ • ऽ	• ऽ ऽ ऽ	ह ऽ म ऽ	ऽ ऽ चे •

×

५

साँ - -	रि' साँसाँ नि साँ रि'	साँ नि नि ष - नि	षमम ग -	रि' ग' म ष नि ष	षमम ग रि' ग' म	रि' - - -	सा - रि साँ रि
री ऽ ऽ ऽ	• • • • लम	श्या • • • ऽ	म • • • ऽ ऽ	या • • • •	म • • • • ष •	या ऽ ऽ ऽ	• ऽ • म •

भाग्ये श्याई की मूर्ति रहेगा ।



राग गुर्जरी तोड़ी

त्रिताल

गीत

स्थायी—रंग बिन डारो, भीजे मोरी चुनरिया ।

अन्तरा—छरक शपक गदि गदि यदु नदन,

“प्रणवरग” केसरिया, दुम हो नवल खेतरिया ॥

स्थायी

X	२								१३						
										नि	ध्	म्	गू	रि	
सा	-	रि	-	गू	-	म्	-	ध्	ध्-म्	ध्	नि	ध्	म्	गू	रि
दा	५	०	५	०	५	०	५	०	०	रो	र	०	ग	बि	न
सासा	-	रि, रि	-	गू, गू	-	म्, म्	-	ध्	गू, म्	ध्	नि	ध्	म्	गू	रि
दा०	५	००	५	००	००	००	५	०	०	रो	र	०	ग	बि	न
सा	गै	-	रि	नि	ध्	म्	ग	रि, गू	गू, म्	म्	ध्नि	निध्	ध्, म्	म्, गू	रि, रि
मी	जे	५	मो	०	०	री	धु	न	रि	या	र	००	ग	बि	न

अन्तरा

X	२								१३						
										सा	सा	सा	रनि	रि	सा
म्	म्	गू	गू	म्	म्	ध	ध्	ध्-म्	ध्	सा	सा	सा	रनि	रि	सा
ख	प	क	स	प	क	ग	दि	ग	दि	य	धु	न	००	द	न

X		५		०		११								
रि'सा	निध्	ध्	सा	-	सा	गै	रि'	सा	नि	-	ध्	नि	म्	ध्
प्र०	ण०	य	रं	ऽ	ग	के	०	स	रि	या	ऽ	ड	म	हो०
म्ध्	ध्सा	सरि'	रि'ग'	रि'	नि	ध	म्	ग्	रि	सा	नि	ध्	म्	ग्
न०	ब०	क०	खे०	ल	रि	या	०	०	०	०	रं	०	ग	लि

ताने

X		५		०		११							
१)						सारि'	ग्	रि'सा	रं	ऽ	ग	लि	न
२)						सारि'	ग्म्	म्ग्	रि'सा	"			
३)					सारि'	ग्म्	ध्ध्	म्ग्	रि'सा	"			
४)				सारि'	ग्म्	ध्नि	निध्	म्ग्	रि'सा	"			
५)			सारि'	ग्म्	ध्नि	सानि	ध्म्	म्ग्	रि'सा	"			
६)		सारि'	ग्म्	ध्नि	सारि'	सानि	ध्म्	म्ग्	रि'सा	"			
७)		सारि'	ग्म्	ध्नि	सारि'	गै'रि'	सानि	ध्म्	म्ग्	रि'सा	"		

×	५										०					१३				
८)	सारि	ग्म्	घनि	सारि	ग्म्	गृरि	सनि	धम्	मग्	रिसा	”	”	”	”	”	”	”	”	”	”
९)	सारि	गृरि	रिग्	मग्	म्	धम्	मघ्	निनि	धम्	मग्	रिसा	”	”	”	”	”	”	”	”	”
१०)	सनि	घनि	निघ्	मघ्	धम्	ग्म्	मग्	रिग्	गृरि	गग्	रिसा	”	”	”	”	”	”	”	”	”
११)	सारि	गग्	रिग्	रिसा	रिग्	मग्	ग्म्	गृरि	गग्	धघ्	मघ्	मग्	मघ्	निनि	घनि	धम्	”	”	”	”
	घनि	सांसा	निता	निघ्	निता	रि'रि'	सारि	सनि	धनि	सांसा	निता	निघ्	मघ्	निनि	घनि	धम्	”	”	”	”
	गग्	धघ्	मघ्	मग्	रिग्	मग्	ग्म्	गृरि	सारि	गग्	रिसा	र	ऽ	ग	बि	न	”	”	”	”
१२)	गग्	रिग्	रिसा	मग्	ग्म्	गृरि	घ्व	मघ्	मग्	निनि	घनि	धघ्	सांसा	निता	निघ्	ग्'ग्'	”	”	”	”
	रि'ग्'	रि'सा	रि'रि'	सारि	सनि	सांसा	निता	निघ्	निनि	घनि	धम्	धघ्	मघ्	मग्	मग्	गग्	”	”	”	”
	गृरि	गग्	रिग्	रिसा	सारि	ग्म्	घनि	सनि	धम्	मग्	रिसा	र	ऽ	ग	बि	न	”	”	”	”
१३)									सारि	ग्म्	- म	मग्	रिसा	रिग्	मघ्	- घ्	”	”	”	”

x	५										१३						
घम्	गृ	गम्	घनि	- नि	निध्	मृग्	मृष	निता	- सा	सनि	घम्	घनि	साहि	- रि	रि'सा		
निघ्	मघ्	निता	- सा	सनि	घम्	गम्	घनि	- नि	निघ्	मग्	रिग्	मघ्	- घ्	घम्	गरि		
साहि	गम्	- म्	मृग्	रि'सा	गृ -	रि'ग्	- रि	सा -	गृ -	रि'ग्	- रि	सा -	गृ -	रि'ग्	- रि		
					रं ङ	ग जि	ङ न	डा ङ	रं ङ	ग जि	ङ न	डा ङ	रं ङ	ग जि	ङ न		
१४)												गृ	रि'सा	मृग्	गृ		
घम्	मृग्	निघ्	घम्	स न	निघ्	रि'सा	स नि	गृ'रि'	रि'सा	रि'सा	सनि	सनि	निघ्	निघ्	घम्		
घम्	मृग्	मृग्	गृ	गृ	रि'सा	- रि	गृ	घ् -	घ्, घ्	निघ्	मृग्	रि -	रि, गृ	मृग्	रि'रि		
					रं	ङ ग	जिन	डा ङ	रो, रं	• ग	जिन	डा ङ	रो, रं	• ग	जिन		
१५)	गृ	मृग्	रि'सा	रि'ग्	मृघ्	घम्	गृ	गृ	घनि	निघ्	मृग्	मृघ्	निता	सनि	घम्		
साहि	गृ	मृग्	रि'सा	रि'ग्	मृघ्	घम्	गृ	गृ	घनि	निघ्	मृग्	मृघ्	निता	सनि	घम्		
घनि	साहि	रि'सा	निघ्	मृघ्	निता	सनि	घम्	गृ	घनि	निघ्	मृग्	रि'ग्	मृघ्	घम्	गृ		
साहि	गृ	मृग्	रि'सा	साहि	गृ	घनि	साहि	सनि	घम्	मृग्	रि'सा	नि	घ्	घ्	मृग्		
					रं	ङ	ग जि	ङ न	डा ङ	रो	ङ	रं	ङ	ग जि	ङ न		
सा	-	सा	-	नि	घ्	मृ, गृ	- रि	सा	-	सा	-	नि	-	मृ ग	- रि		
डा	ङ	रो	ङ	रं	ङ	ग जि	- न	डा	ङ	रो	ङ	रं	ङ	ग जि	ङ न		

×	११																		
१६) सादि	गम्	साम्	मग्	दिवा,	दिग्	मध्	दिष्	धम्	गृदि,	गम्	ध्नि	गृनि	निष्	मग्,	मध्				
निस	मर्सा	सानि	धम्,	ध्नि	सादि	ध्रि	दि'सां	निष्,	मध्	निसां	मर्सा	सानि	धम्	गम्	ध्नि				
गृनि	निष्	मग्,	दिग्	मध्	दिग्	धम्	गृदि,	सादि	ग	साम्	मग्	दिवा,	सादि	गम्	ध्नि				
सादि	'म'	म'ग'	दि'सां	सानि	धम्	मग्	दिवा	नि	-ष्	ध्	-म्	म्	-ग्	ग्	-दि				
२०) सादि	दि	गृ	सा	-ग्	गृदि	दिवा,	दिग्	म'दि	-म्	मग्		नम्	मृ	ग्	-ष्				
नि	मृ	-दि	निष्	धम्,	ध्नि	सां	ध्	-सां	सानि	निष्,	निसां	दि'नि	-दि'	दि'सां	सानि,	सादि	गृ'सां		
-ग्'	गृ'दि'	दि'सां,	दि'सां	सानि,	स	निष्,	निष्	धम्,	ध	मग्,	मग्	गृदि,	गृदि	दिवा,	सादि				
दिग्	गम्	मध्	ध्नि	निसां	सादि	दि'ग'	दि'सां	सानि	निष्	धम्	मग्	गृदि	दिग्	गृदि	गृदि	गृदि	रंग	बिन	
२१) सादि	दिग्	गृदि	दिवा,	दिग्	गम्	मग्	गृदि,	गम्	मध्	धम्	मग्,	मध्	ध्नि	निष्	धम्,				
ध्नि	निसां	सानि	निष्,	सां	सां	दि'सां	सानि,	स दि'	दि'ग'	गृ'दि'	दि'सां,	दि'ग'	गृ'दि',	सांदि'	दि'सां,				
निसां	सानि,	ध्नि	निष्,	मध्	धम्,	गम्	मग्,	दिग्	गृदि,	सादि	दिवा	गृदि	गृदि	गृदि	दिग्	रंग	रंग	बिन	बिन

राग गुर्जरी तोड़ी

ध्रुवपद—प्रलवाल

गीत

अस्यायी—तेरे मन में केतो गुन रे
जेतो होइ, तेतो प्रकाश कर रे ॥

अन्तरा—कहूँ तोसे बार बार मूरल मन रे ।
बोई सुर भावे सोई रर रे ॥

संवारी—खरल रिलव गान्धार मन्धम,
वैवद निषाद सुर को मर रे, मर रे, मर रे ।

आमोग—कहे वैजू बावरे, सुनो हो गोपाल नायक
नाद-विद्या अयाह काहूँ सों न अर रे, न अर रे, न अर रे ।

स्यायी

X			५		७			
सा	सा	नि	ध्रु	नि	वा रि	मू रि	ग	-
र	•	ध्रु	•	म	न •	में	•	५
म	म	मू	मू	मू रि	रि गू	मू रि	-	सा
के	•	सो	•	ध्रु	न	रे	५	•
सा	-	रि	मू रि	गू	गू	गू	मू गू	ध्रु मू
ले	५	सो	सो	•	ह	ते	• •	तो
मू	नि	नि	ध्रु	ध्रु नि	नि ध्रु	मू मू	मू गू	गू रि
प्र	का	•	ध्रु	क	र	रे	•	•

अन्तरा

X	०	५	७	०	५	७	०	५	७
गृ	मृ	गृ	षू	नि	नि	नि	सां	-	-
क	रि	•	मृ	षू	•	से	•	५	५
सां	रि	रि'	रि'	-	गृ	मृ	गृ	रि'	सां
धृ	सां	•	गृ	•	र	बा	•	•	र
बा	नि	सां	नि	रि'	सां	सां रि'	गृ	-	-
सां	षू	र	ल	म	न	रे •	•	५	५
मृ	•	र	गृ	रि'	सां	सां	रि' सां	धृ	-
मृ	-	रि'	•	रि'	र	भा	• •	वे	५
बो	५	इ	•	रि'	मृ	मृ	गृ	रि	सां
मृ	धृ	मृ	घ	मृ	षू	र	•	•	•
मृ	•	इ	•	र	र	रे	•	•	•

संचारी

X	०	५	७	०	५	७	०	५	७
सा	सा	सा	रि	रि	रि	गृ	-	-	गृ
ख	र	ख	रि	ख	व	गा	५	५	न्वा
-	गृ	गृ	-	मृ	मृ	नि	-	धृ	धृ
५	र	म	५	ख	म	रि	५	व	व
धृ	नि	-	नि	सां	सां	मृ	सां	नि	रि'
नि	वा	५	द	ड	र	को	•	•	•

×	०	५	७	७	०	०	०	०	
सां	दि'	दि'	गं	-	सां गं	दि'	नि	पू	मू पू
•	•	•	•	८	म	र	रे	•	• •
नि	ष	म	गू	दि गू	मू	गू	दि	-	सा
म	र	रे	•	• •	म	र	रे	८	•

आमोग

×	०	५	७	७	०	०	०	०	
सा	सां	-	सां	-	सां	दि'	गं	दि'	सां
क	हे	८	वे	८	जू	बा	•	व	रे
दि' सां	सां धू	-	सां	-	दि'	सां	सां	दि' गं	गं
सु •	नो	८	हो	८	गो	पा	•	•	स
मू दि' -	-	सां	सां	दि' ष	नि	सां	दि'	गं	गं
ना ८	८	य	क	ना	•	•	•	•	द
दि'	-	सां	-	नि ष	नि	पू दि'	सां	-	सां
वि	८	या	८	अ	•	•	या	८	द
मू	धू	नि	सां	-	सां दि'	गं	दि'	नि	पू
का	•	ह	सौ	८	न •	अ	र	रे	•
मू पू	नि	धू	मू	गू	दि गू	मू	गू	दि	सा
न •	अ	र	रे	•	न •	अ	र	रे	•

राग पूर्वी

आरोह-अवरोह—^{रि}नि रि ग म् घ् नि सां, सां नि ष् प ड म् ग म ग ड म् ग रि सा।
जाति—षाड्ज-शुक्र सम्पूर्ण ।

मह—निषाद ।

अंश—पूर्वाङ्ग में कोमल षड्ज; उत्तरांग में कोमल धैवत उपास ।

न्यास—गाधार ।

अपन्यास—पञ्चम ।

विन्यास—मध्य षड्ज ।

मुख्य-अंग—^{रि}ग म ग, ^{रि}ग म ड ग, ^{रि}प ड म् ग म ग ।

समय—सायंकाल सूर्यास्त के समय ।

प्रकृति—द्रष्टव्य विरोध विवरण ।

विशेष विवरण

पूर्वी एक सायण्य पूर्वाङ्ग प्रधान राग है। इसमें 'रि-घ्' कोमल, और दो मध्यम लगते हैं। सूर्यास्त के पूर्व, पूर्वा, पूरिया धनाभी आदि रागों में 'नि रि ग' इन स्वरों का अंग मुख्यतः प्रयुक्त होता है। सायंकाल में सूर्यास्त के पूर्व निसर्ग की अवस्था भान्त मादम होती है, और 'रि-घ्' कोमल के साथ तीव्रतर मध्यम के प्रयोग से वह अवस्था रागों के द्वारा अभिव्यक्त की जाती है। प्राकृतिक शैथिल्य इन स्वरों में प्रतिबोधित होता है। प्रातःकाल में प्राणिमात्र की जो उत्कृष्ट स्थिति होती है, सायंकाल में उससे विपरीत वातावरण रहता है। उसी का प्रतिबिम्ब तीव्रतर मध्यम और कोमल 'रि-घ्' स्वरों के संबन्ध से निखर आता है।

इस राग का आरोह-अवरोह निम्नोक्त है :—

नि रि ग म् घ् नि सां—सां नि घ् प ऽ ऽ म् ग म् गे, म् ग रि सा । इसका ग्रह-स्वर निपाद है, क्योंकि अक्षाप और तान का आरम्भ निपाद से होता है । पूर्वांग में कोमल ऋषभ और उत्तरांग में कोमल धैवत इसके अंग और उपांग स्वर हैं । न्यात गान्धार, अपन्यास पञ्चम और विन्यास मध्यपट्ट होगा । इसके अतिरिक्त पूरिया धनाभी से पूर्वा को पृथक् रखनेवाली शुद्ध मध्यम को एक विशेष क्रिया है, जो इसे वैशिष्ट्य प्रदान करती है । वह यों है, ग म ग, नि रि ग म् ग, रि ग म् प ऽ म् ग म् ग, प घ् म् प ऽ ऽ म् ग म् ग, इत्यादि । गुरुमुख से यह विशेष क्रिया गले में बिठा केनी चाहिए । अन्यथा 'प म् ग म् ग' कहते समय बिहाग या परज दीख जाने की समावना है । 'प म् ग म् ग' कहते समय किन स्वरो के कण से बिहाग होगा, किनसे परज, किनसे पूर्वा, यह केलन में समझाने पर भी कुछ अस्पष्ट रहने की समावना है । (द्रष्टव्य 'परज' का विवरण) । इसलिये इन तीनों रागों की क्रियाएँ गुरुमुख से सील कर आत्मसात् करने से ही सम्पूर्णात् स्पष्ट होंगी ।

इस में पूरिया धनाभी से बचने के लिए 'म् ग म् रि ग' यह स्वरावलि कतरे न छुई जाय । साथ ही अवरोह करते समय 'रि' नि घ् प' 'नि रि' नि घ् प' इन प्रयोगों से भी बचकर ही इसकी अज्ञातचारी कां जाय ।

तद्वत् 'सा रि नि' नि सा रि नि, रि सा रि नि, सा रि सा रि नि, इस प्रकार मन्द्र 'नि' पर कमी न ठरें । इस प्रकार 'नि' का ठहराव 'गौरी' का आविर्भाव करेगा । वैसे ही 'नि रि नि ग ऽ म् ग ऽ नि रि ऽ सा', इस दग से राग के स्वरो का उच्चारण कमी न किया जाए, अन्यथा उससे पूरिया का आविर्भाव हो जायगा । पूर्वा के अपने अङ्ग के निदर्शन के लिये निम्नोक्त स्वरावलि कठस्थ कर लें ।

'नि रि ग म् ग, ग म् रि ग्म ऽ ग' ग म् प-म् ग म् रि ग्म ऽ ग, नि रि ग म् घ् म् प ऽ म् ग म् रि ग्म ऽ ग, म् ग रि ऽ सा ।

इसके पूर्वा, पूर्वी, पूर्वा, पौरवी ऐसे अलग अलग नाम पाये जाते हैं । यह मध्य गति में गाया जाता है । थकान, निरुत्साह, टैन्य अदिक भाव इसके स्वरो में निदर्शित होते हैं ।

राग पूर्वी

मुक्त आलाप

१, रिनिनि ऽ सा, सा ऽ सा नि ष् सा, सा ऽ निष् ऽ म् ष् सा, रिस्तिनि सा ऽ

निष् सा, निरिग ऽ गमग ऽ म्गरिषा ।

(२) निरिग ऽ मग, रिनि ऽ रि ग ऽ मग, ष् निरिग ऽ मग, निरि रिग ऽ मग, ष् नि निरि रिग ऽ

रि नि मग ऽ, म् ग रिषा ।

(३) रिस्तिनि सा ऽ निरिग, गरि रिनि ऽ रि ग ऽ मग, गरि रिनि निष् ष् नि निरि रिग ऽ मग,

गरिनिनि ऽ रिनिनिष् ऽ ष् निनिरिगिग ऽ मग, निरिगमग, रिनिनि ऽ रिगमग, नि ऽ रिनि रि ऽ गरि गमग, ष् ऽ निष्

नि ऽ रिनि रि ऽ गरि गमग, म्गरिषा ।

(४) नि रि ग म् प ऽ ऽ म् गमग, ग्मुर ऽ म् गमग, गदे म्ग पम् प ऽ म् गमग, रिनि गरि म्ग

पम् प ऽ म् गमग, गमग रिगमुर ऽ म् गमग, ममग रिगमुर ऽ म् गमग, गगदे म्मस परम् ष्मुर ऽ म् गमग,

नि नि रि सा निरि गमुर ऽ म् गम ग, म्गरिषा ।

(५) नि रि ग म् प ष् रि नि रि ग म् प रि

ॐ ष् दि ॐ प म् ॐ ष् दि
पम्प ऽ म् ऽ म् गम ग, प ऽ म् ष् प ऽ म् म् गम ग, गम् पम् ऽ म् ष्

ॐ ष् दि ॐ ष् दि
ऽ म् म् गम ग, निगदि रिमत् गवम् म्प ऽ म् मे गम ग, निदिगदि रिगम्

ॐ ष् दि ॐ ष् दि नि
गम्पम् म्प ऽ म् म् गम ग, निदिमम्प रिगम्प ऽ म् म् गम ग, म् ग रि षा ।

ग म् प म् ॐ रि ॐ रि
(५) नि रि ग म् ष्प ऽ म् गम ग, म् ऽ ष्प ऽ म् गम ग, रिगम्प ऽ गम्पम् ऽ म्प ऽ म्

दि म् ॐ रि ॐ रि
गम ग, म्पम्प ऽ म् गम ग, गम्पम्प ऽ म्पम्प ऽ म् गम ग, रिगम्पम्प ऽ गम्पम्प ऽ म्पम्प ऽ

ॐ रि ॐ रि ग म् म् ॐ रि
म् गम ग ऽ, निदिग निगदि रिगम्पम्प ऽ गम्पम्प ऽ म्पम्प ऽ म् गम ग, गम् म्प ऽ म् गम ग,

रि ग म् म् ॐ रि नि रि ग म् ॐ रि नि
रि गम् म्प ऽ म् गम ग, निरि रि गम् म्प ऽ म् गम ग, म् ग रि षा ।

(६) म्पम्प, गम्-गम्-म्प, रि-रि-गम्-गम्-म्प, निरि-निग-दि-गम्-पम्प,

ॐ रि
प ऽ म् गम ग ऽ रिगम्प ऽ ग, नि ऽ रिग ऽ रि ऽ गम्प ऽ ग, ग ऽ म्प ऽ म् ऽ ष्प ऽ म् गम रि-गम्प ऽ ग,

गम्-गम् रि-गम्प ऽ ग, म्प-म्प गम्-गम् रि-गम्प ऽ ग, प्प-पप-म्प-म्प गम्-गम् रि-गम्प ऽ ग,

निरि-निरि रिग-रिग गम्-गम् म्प-म्प पप-पप म्प-म्प गम्-गम् रि-गम्प ऽ ग, नि रि ग म् प

ॐ नि
ऽ म् गम रि-गम्प ऽ ग, म् ग रि षा ।

(७) निरिग्मृष्य ऽ म् गम ग, गं म्प ऽ ऽ म् ध्रुमप ऽ म् गम ग, रिग् ऽ रिग्मृ ऽ ग म्प ऽ म्

पध्रुमप ऽ म् गम ग, रिग् ग ऽ रिग्मृ म् ऽ ग म्प ऽ म्पध्रुमप ऽ म् गम ग, गरि रि भ्रुगप म्पध्रुमप ऽ म्

ग्म ग, गम रि ग्म ऽ ग ऽ म्प म्पध्रु ऽ ऽ ऽ म् गम ग, रिग्मप ऽ म् गम ग, म्परि सा ।

ग म्प नि
(८) नि रि ग म् ध्रु नि ऽ ध्रुमप ऽ म् गम रि ग्म ऽ ग ; नि ऽ गरि ऽ रि ऽ म्ग ऽ ग ऽ ऽ म् ऽ म् ऽ ध्रुप ऽ

ध्रु ऽ निष् ऽ सानिष् ऽ म् गम रि ग्म ऽ ग, नि रि रि ग म् ध्रु नि ऽ सानिष्प ऽ म् गम रि ग्म ऽ ग,

रिनिनि ऽ ग रि रि ऽ म्गम ऽ ध्रुमप ऽ ध्रुप ऽ निष्प ऽ सानिष्प ऽ म् गम रि ग्म ऽ ग, म्पनि ऽ ध्रुनि रि निष्प ऽ म्

गम रि ग्म ऽ ग, ग ऽ म्ग म् ऽ ध्रु ध्रु ऽ निष् नि ऽ रि नि ऽ ऽ म् गम रि ऽ गम ऽ ग, म्पनिष् ऽ

नि रि निष्प ऽ म् गम रि ग्म ऽ ग, म्परि सा ।

नि रि ग म् ध्रु नि रि ग म्प नि षां नि रि रि ग म् ध्रु नि षां नि रि रि ग रि ग्म

ग म् म्प ध्रु नि ग म्प म्पनि ध्रुनिष् ऽ निष्, नि रि ग रि ग्म ऽ ग म्प ऽ म्पनि ऽ ध्रुनिष् ऽ निष्, नि गरि रि म्ग गध्रु

म्पनिष् षां निष्, नि रि रि ग म् ध्रु ध्रु नि षां निष्, षां ऽ नि रि निष्प ऽ म् गम गे ऽ

रि नि रि ग्म र ऽ म् गम ग ऽ म्परि सा ।

(१०) नि रि ग्म ध्रु नि रि गे ऽ रि षां, नि रि गे ऽ रि षां, रि नि नि रि रि गे ऽ रि षां

^{रि'} गं ऽ रि'छा, निष् चानि रि'छा गं रि' गं गं ऽ रि'छा, मूष्निष् धनिषानि निरि'गं रि' गं गं ऽ रि'छा,
रि'रि'छानि रि'गं ऽ मे गं ऽ रि'छा, निरि'गं गं गं, धनिरि'गं गं गं, ष् ऽ निष् नि ऽ रि'नि रि' ऽ गं रि' गं गं ऽ
 मं गं रि'छा, रि'रि'छानि ऽ नि रि'निष ऽ म् गमग, म्गरि'छा ।

(११) निरि'गम् धनिरि'गं म् ष' ऽ म् ममम गं गं गं, म् ममम गं गं गं, गं गं ऽ म् ष' म्
^{रि'} मं गं गं म् मं गं रि' गं म् ष' ऽ म् ष' म् ममम गं गं गं, निरि' ऽ नि रि' गं ऽ रि' गं गं ऽ गं ष' म्
ममम गं गं गं ऽ ऽ मं गं रि'छा ऽ स निष् ष ऽ म् गमग ऽ म्गरि'छा ।

(१२) निरि'गम् धनिरि'गं ऽ स, निरि'गम् धनिरि'गं म् ष' ऽ ष, निरि'गम् धनिरि'गं म् ष' ऽ म् ष' म्
^{सा} म ष ऽ म् ष' म् म, निरि'गमधनि रि'गं म् ष' ऽ म् ष' म् ऽ गं गं गं, ष ऽ म् ष' म् ऽ गमग ऽ म्गरि'छा ।



राग पूर्वी

विलम्बित रूपाल—विलवाड़ा

गीत

स्थायी—वियरवा की बाँह सो भोहे भावे,
लगे गरवा ए विया ।

अन्तरा—तू जिन लजावही, तो सी तू बड़भागन,
मुलछनी मार, वियरवा ॥

स्थायी

११

					-- मूष्	मू-ग-	रिसासानि-रि ग रि		
					ऽऽ वि०	य ऽ र ऽ	वा ••••ऽ•• की		

X

५

ग	प	ग	प	प	ग	ग	मूष्	मू
म---	ग---	प-धूपमू-	-- प धू	पधूम-	ग-रि गम	ग---	- मूष् मू	
वा ऽऽऽ	ह ऽऽऽ	सो ऽ••••ऽ	ऽऽ मो हे	भा ••••ऽऽ	•ऽ•••	वे ऽऽऽ	ऽ हा • गे	

०

१३

ग	रि ग रि	सा	रिसासानि - - रि	ग	-- मूष्	मू ग - -	रिसासानि - रि ग रि
ग ऽऽऽ	र • • • ऽ	वा ऽऽऽ	ए ••••ऽऽ वि	वा ऽऽऽ	ऽऽ वि •	य र ऽऽ	वा ••••ऽ•• की

अन्तरा

११

				मू-घ	सां-सो	सां-सां	निद्रि
				ड ड वू ड •	बि ड न ड	ल ड बा ड	ड ड • व

x

५

सां---	-नि-घ	नि---	-घनि निद्रि'नि	घ्---	प---	पघ्मप -- म्ग	रि, ग रि, गम
ही ड ड ड	ड ता ड सी	वू ड ड ड	ड व • • • ड	मा ड ड ड	• ड ड ड	•••• ड ड ••	ग • • • •

१३

ग---	मूघ घनि निद्रि'नि	घ्-प-	पघ्मप - म्ग	रि, ग रि, गम	ग-, मूघ	म्-ग-	रिसासानि - रि, ग रि,
न ड ड ड	सु • ल • छ • •	नी ड • ड	ना • • • ड ड • •	र • • • •	• ड, वि •	व ड र ड	वा • • • • ड • • की

ताने

४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७		
१)			पघ्	पम्	गम्	द्विग	मग	व	रि	ए०	०	मै	०	का	०
२)			निरि	गम्	पम्	गम्	रिग	"	"	"	"	"	"	"	"
३)	नृदि	गम्	प-	-म्	गम्	रिग	मग	रिसा	"	"	"	"	"	"	"
४)			पघ्	प, म्	पम्	गम्	रिग	३	"	"	"	"	"	"	"
५)		निरि	गम्	पघ्	मप	गम्	रिग	"	"	"	"	"	"	"	"
६)	निरि	रिग	मप	पघ्	पम्	गम्	रिग	"	"	"	"	"	"	"	"
७)	पम्	प, प	प	मप	म, म्	पम्	गम्	रिग	"	"	"	"	"	"	"
८)	गम्	पम्	मप	धप	प	पम्	म	रिग	"	"	"	"	"	"	"
९)	पम्	प	मप	मप	गम्	गम्	रिग	मग	"	"	"	"	"	"	"

X ५ १३

२०) सात्ता - रि' साति धृप मृप - मृ गम रिग " " " " " " " " " "

२१) सात्ति रि'सा पम् धृप साति रि'सा पम् धृप गम रिग अरि ये • में • का - प२
पम् गम रिग अरि ये • में • का - प३ पम् गम रिग अरि ये • में • का

२२) त्रिदि गम् धृनि सात्ति' साति धृप प३ मृप गम रिग मृग रि'सा अरि ये • में • का
- धृमप - अरि ये • में • का - धृमप - अरि ये में • का • स व स प
हो • • ५ हो • • ५

२३) त्रिदि गरि रिग मृग गम् पम् मृप धृप मृप निधृ धृनि साति निसा रि'सा धृनि साति
मृप निधृ मृप धृप गम् पम् गम रिग अरि ये • अरि ये • अरि ये • में • का

२४) त्रिदि गम् धृनि साति धृप मृग रि'सा त्रिदि गम् धृनि सात्ति' साति धृप मृग रि'सा त्रिदि
गम् धृनि निरि' गंगे रि'सा साति धृप मृग रि'सा त्रिदि गम् धृनि सा • • • में • का

२५) त्रिदि त्रि, रि रि, रि, गग ग, मृ मृप, पृप धृ, नि निनि, रि'रि' रि, ग गंगे, रि'सा साति धृप मृग
रि'सा, त्रिदि त्रि, ग गग, निनि नि, ग गंगे रि'सा साति धृप मृग रि'सा अरि ये • में • का

X -	५										६				
२६)				निरि	गम्	पध्	पम्	ध्	पम्	पध्	पम्	गम्	रिग	मग	रिग
पध्	प, प	धप,	मप	म्, म्	पम्	गम्	ग, ग	मग	रिग	मग	रिग	निरि	निरि	रिग	रिग
गम्	गम्	मप	म प	पध्	पध्	मप	मध्	पध्	मप	गम्	गम्	रिग	रिग	मग	रिग
३. रि	ये •	मै	का •	:	ब	अरि	ये •	मै •	पा •	स	ब	अरि	ये •	मै •	पा •

राग श्री

आरोह-अवरोह—सा ग रि३ प ऽ ऽ प म् घ् ऽ प, घ् नि रि३ नि ध् ऽ प म् घ् ऽ म् ग रि३ प रि३
ग रि३ सा ।

जाति—औडव वक्र सम्पूर्णा ।

ग्रह—श्रृषम ।

श्रंश—श्रृषम, उपाद्य धैवत ।

न्यास—पञ्चम ।

अपन्यास—श्रृषम ।

विन्यास—पञ्च ।

मुख्य-अंग—रि३ प ऽ प रि३, रि३ ग रि३ सा, घ् ऽ नि ध् ऽ प ।

समय—सन्ध्या ।

प्रकृति—द्रष्टव्य विशेष विवरण ।

विशेष विवरण

राग-रागिनी की वर्गीकरण परम्परा में 'श्री' राग का प्रमुख पुरुष रागों में स्थान पाया जाता है। शरद के पाँच मुखों से अन्य पाँच रागों की एव पार्वती के 'श्रीमुख' से इस छोटे राग की उत्पत्ति मानी जाने के कारण इस राग का नाम 'श्री' है, ऐसी मान्यता प्रचलित है। इस राग का चलन कठिन है। इधीलिप विशेष योग्यता वाले गुणी ही इसको बरतते हुए देखे जाते हैं। 'रि-प' 'प-रि' के सवाद-रहित खर सगतिषों और रि३ ग रि३ सा, घ नि ध् ऽ प, ऐसे आधात के खरोपार वाली सिमार्प देखते हुए यह भयानकरस का छोटक राग प्रतीत होता है। इसमें 'रि-घ' कोमल है और मध्यम तीव्रतर है, आरोह में गान्धार ऽञ्चम वर्ज्य हैं। कुछ परम्परा ऐसी भी हैं जिन में गान्धार धैवत वर्ज्य करके रि३ म् प निर्या यो इरुषा आरोह बिषा जाटा है; हमारी परम्परा रि३ म् घ् निर्मा ही जाने की आशा देती

है। साथ ही हिं ड ग रिं ड सा, घू ड निघू ड प अथवा मू घू निघू ड प और मू घू मू ग रिं—ये क्रियाएं जो कि मुख्यतः रागवाची हैं, 'रिं मू प नि' के आरोह की स्वीकृति नहीं देती हैं। कण्टिक प्रदेश में बिस प्रकार के 'भी राग' का प्रचार है, जो हमारे 'सारंग' से मिलता जुलता है, उसके आरोह में 'रिं म प निरा' जाना समुचित है। किन्तु हमारे 'भी' के खरो को और चलन को देखते हुए 'रिं मू प नि सा' का आरोह ग्राह्य नहीं है। 'रिं मू प नि' का आरोह करना उतना कठिन नहीं है, जितना 'रिं मू घू नि' कष्ट साध्य है। जो राग कंठन माने गये हैं, उनमें मुख्यतः स्वरों की कष्ट साध्य अवस्था को दृष्टि में रखकर ही वैसी गन्ता बनी है। इस राग का सामान्य चलन निम्नोक्त है।

हिं ड ग रिं ड सा, सा नि रिं ड ग रिं ड सा, रिं मू रिं, रिं प ड रिं, रिं प मू घू ड मू ग रिं,

रिं प ड रिं ड ग रिं ड सा।

रिं प, मू घू ड निघू ड प, प मू घू ड निघू ड प, रिं प मू घू ड निघू ड प, रिं मू घू नि,

हिं नि घू ड प, मू घू ड मू ग रिं, परिं ड ग रिं ड सा।

रिं मू घू नि हिं ड ग रिं ड सा, सा नि हिं ड ग रिं ड सा, नि रिं ड नि घू ड प, मू घू ड

मू ग रिं, प रिं ड रिं ड सा।

इस राग के जो मुक्त आलाप दिए हैं, उनमें 'रिं मू प नि सा' के आरोह का भी दिग्दर्शन कर दिया गया है।

इसके चलन को देखते हुए ऋषभ इसका मूह, अंग और उपन्यास स्वर है, धैवत उ का उभेध और पञ्चम यास है। ऋषभ पचम, पचम ऋषभ की शर-संगतियाँ इसके रागत्व को अभिव्यक्त करती हैं। 'रिं - प' 'प - रिं' के सहस्य रिं - घू 'घू - रिं', 'रिं - मू', 'मू रिं' से भी 'भा' की अभिव्यक्ति होती है, क्योंकि ये स्व-संगतियाँ अन्य किसी राग में नहीं ली जाती। रिं ड ग रिं ड सा, निघू ड प, निरिं नि घू ड प, मू घू मू ग रिं ये स्वर क्रियाएँ, इस राग की अभिव्यक्ति में सहायक हैं।

यह राग शाम को, सन्ध्या की वेला में गाया बजाया जाता है। सन्ध्या-वेला में प्रकृति मन्त्रान्त और शान्त रहती है। ऐसे वातावरण में इस भीषण राग रूप का प्रयोग क्यों किया होगा, भावदृष्टि से यह विचारणीय है। तंत्रिकों की दृष्टि में सन्ध्या काल पेशाचिक क्रियाओं के लिए उपयुक्त माना गया है। शंकर के गणों का यह जाग्रति काळ है। इसीलिए तो इस भीषण राग को इस काल में उपयोग नहीं होता होगा ? शंकर के घोर ताण्डव नृत्य का यही काळ माना गया है। इस भयानक राग के साथ उसका तो कोई संबंध नहीं है ?

प्राकृतिक नियमानुसार सूर्योदय के समय जो प्राणी जाग्रति का अनुभव पाते हैं, वे सभी सूर्यास्त के बाद शान्त होकर विभ्राम की कामना करते हैं, और निद्रा की गोद में जाना चाहते हैं, किन्तु प्राणिमात्र का जो विभ्राम काव है, यही उलूक जैसे पक्षियों का जाग्रति काळ है। निशाचरों का यह उदय काळ है, चाहे- प्राणिमात्र का वह अस्त-काळ हो। महर्षियों ने इन सब पहलुओं को देखकर तो इस रागके लिये यह समय निर्धारित नहीं किया होगा ?

संगीत के क्षेत्र में जितने ही अनुसन्धान कार्य हैं, जिनमें यह भी एक है। कोई द्रष्टा उसे देखेगा, जीवन के तप से खोजकर, इन रागों की विशेषताओं के रहस्य को उद्घाटित करेगा और रसगत् को प्रदान करेगा।

राग श्री

मुक्त आलाप

(१) सा, रि, ऽ गुरि, ऽ ऽ सा, नि^{ति} सा रि, ऽ गुरि, ऽ ऽ सा, सा ऽ नि रि, ऽ ऽ गुरि, ऽ ऽ सा,

नि ऽ घ्, सा ऽ नि रि, ऽ ऽ गुरि, ऽ सा, सा ऽ नि नि ऽ घ्, सा ऽ नि रि, ऽ ऽ गुरि, ऽ ऽ सा, सा नि नि घ्,

सा नि रि, ऽ ऽ गुरि, ऽ ऽ सा ।

(२) सा, रि नि घ्, ऽ घ्, प् ऽ म्, ऽ नि ऽ नि ऽ नि घ्, ऽ ऽ घ्, म्, प् घ्, ऽ नि ऽ नि घ्, ऽ घ्,

घ्, प् घ्, ऽ घ्, सा नि रि, ऽ ग ऽ गुरि, ऽ ऽ सा, म्, प् घ्, ऽ नि सा नि रि, ऽ ग ऽ गुरि, ऽ सा, ग ऽ गुरि, ऽ सा नि, नि घ्,

ऽ घ् सा नि रि, ऽ गुरि, ऽ सा, ग ऽ गुरि, ऽ नि ऽ नि घ्, ऽ घ्, ऽ घ्, म्, ऽ घ् सा नि रि, ऽ ग ऽ गुरि, ऽ ऽ सा ।

(३) सा रि नि सा, ऽ नि रि, ऽ ग ऽ गुरि, ऽ ऽ सा, प् घ्, म्, प् सा रि नि सा, ऽ नि रि, ऽ ग ऽ गुरि, ऽ सा, रि, ऽ नि

घ्, नि ऽ घ्, घ्, ऽ घ्, म्, घ्, म्, नि घ्, सा नि रि, ऽ ग ऽ गुरि, ऽ ऽ सा, रि नि नि, नि घ्, घ्, ऽ नि घ्, प्, घ्, म्, म्,

घ्, म्, म्, नि घ्, घ्, सा नि रि, ऽ ग ऽ गुरि, ऽ सा ।

(४) नि सा सा रि, ऽ ग ऽ गुरि, ऽ, म्, प् घ्, ऽ नि सा सा रि, ऽ ग ऽ गुरि, ऽ, म्, प् घ्, घ्, नि नि सा सा रि,

ऽ ऽ ग ऽ गुरि, ऽ, प्, म्, म्, ऽ नि घ्, घ्, ऽ सा नि रि, ऽ रि, ऽ गुरि, ऽ सा ।

(५) सा दि दिसानिसा दि ऽ गऽगदि ऽ, ध्रुं पमप ध्रुं ऽ नि ऽ निध्रुं ऽ गऽगदि ऽ, दिदिसानिसा

दि ऽ सा नि दि ऽ गऽगदि ऽ, ध्रुं पमप ध्रुं प म ध्रुं ऽ निऽनिध्रुं ऽ गऽगदि ऽ, नि ध्रुं ऽ सा नि

दि सा ऽ गऽगदि ऽ, नि ऽ निध्रुं ऽ गऽगदि ऽ, ध्रुं ध्रुं म् ऽ नि ऽ निध्रुं ऽ रिऽरिनि ऽ गऽगदि ऽ सा ।

(६) सा सा रि रिऽनिसा रि म् रिऽ, रि म् रिऽ, निम रि म् नि नि

नि म् रिऽ, निम रि म् रिऽ, म् पु नि ध्रुं नि सा म् रिऽ, रिऽनिसा रि म् रिऽ,

ध्रुं पमप निसा ऽ दिदिसानिसा रि म् रिऽ, सानिदिसा म् रिऽ, पम ध्रुं प सानिदिसा म् रिऽ, निसा

नि म् रिऽ, म् पु पसा ऽ निसा साम् रिऽ, दिसासा म् रिऽ, सानिनि दिसासा म् रिऽ,

पम म् ध्रुं प सानिनि दिसासा म् रिऽ, पम म् ध्रुं प सानिनि दिसासा म् रिऽ, म् पु पनि

ध्रुं नि सा रि म् रिऽ ऽ गऽगदि ऽ सा ।

(७) सा, नि दि ऽ रि प रिऽ, गऽगदि ऽ प ऽ रिऽ, रि म् म् प ऽ ध्रुं प ऽ रिऽ,

पारि रि रि म् म् प ध्रुं प ऽ रिऽ, रि प म ध्रुं प रि ऽ ऽ प ऽ रिऽ ऽ गदि ऽ सा ।

(८) सा ऽ निरि नि ष् ऽ ष् ऽ सा ऽ प ऽ ऽ रि, सा रि नि सा ऽ प ऽ ऽ रि, प ष् ष् ष् ष् ऽ

सा रि नि सा ऽ प ऽ ऽ रि, रि नि नि ऽ गरि रि ऽ प ऽ ऽ रि, रि प ष् ष् ष् ष् ऽ म् ग रि ऽ ऽ प ऽ ऽ रि ऽ ऽ गरि ऽ सा ।

(९) सा ऽ रि ऽ प ऽ म्, नि सारि म् रि ऽ प ऽ म्, नि सारि म् ऽ नि सारि प ऽ म्,

नि सारि नि सारि म् ऽ नि सारि नि सारि प ऽ म्, रि ऽ रि सा ऽ ग ऽ गरि ऽ प ऽ म्, गरि—नि सारि प ऽ म्,
रि रि नि नि ष् ष् ष् ष् ऽ प ऽ म्, गरि—रि नि रि ऽ प ऽ म्, गरि रि मि नि ष् रि नि रि ऽ
प रि प ऽ म्, गरि रि मि नि ष् ष् मि ष् रि नि रि ऽ प ऽ म्, गरि रि नि ऽ रि नि नि ष् ष् ष् ष् प म् ऽ

प ऽ म्, प म् ष् ष् ष् ष् ऽ रि, प ऽ रि ऽ ग ऽ गरि ऽ सा ।

(१०) रि रि सा नि सा रि ऽ प ऽ म्, रि ऽ गरि ऽ प ऽ म्, रि ग—गरि ऽ प ऽ म्, सा रि रि सा

रि गरि प ऽ म्, रि रि सा सा गरि रि ऽ प ऽ म्, प म् ष् ष् ष् ष् ऽ रि ऽ प ऽ रि ऽ गरि ऽ सा ।

(११) नि सारि म् ऽ म् ग रि ऽ प ऽ म्, म् ष् ष् नि रि प

नि नि ष् सा सा नि मम् रि म् प
मु ष् सा सानि नि ऽ नि सा रि रि सा सा ऽ नि सा प प म् म् ऽ रि ऽ प ऽ ऽ म्, मपू ऽ म् ग रि ऽ प
रि प ऽ रि ऽ ग रि ऽ सा ।

(१२) रि प म् ष् ऽ नि ष् ऽ प व सा नि रि ऽ रि प म् ष् ऽ नि ष् ऽ प व सा नि रि ऽ ग रि ऽ रि प म् ष् ऽ

नि ष् ऽ प ष ष् म् ष् ऽ नि ष् ऽ प ष ष् म् ष् ऽ नि ष् ऽ प रि रि सा सा ऽ नि रि ऽ ग रि ऽ ष ष् म् ष् ऽ मपू ऽ
नि ष् ऽ प रि रि सा सा ऽ नि रि ऽ ग रि ऽ ष ष् म् ष् ऽ नि ष् ऽ प सा नि रि सा ग रि प म् ष् ऽ
नि ष् ऽ प प म् ष् ष् सानि रि सा ग रि प म् ष् ऽ नि ष् ऽ प मपू ऽ ग रि ऽ प ऽ रि ग रि ऽ सा ।

(१३) सा प म् ष् ऽ रि प म् ष् ऽ नि सा रि म् ष् ऽ मपू नि सा रि म् ष् ऽ नि ष् ऽ प प म् ष् ऽ मपू ऽ ग रि ऽ

ग रि ऽ प म् ष् ऽ मपू रि प ऽ रि ग रि ऽ सा ।

(१४) सा रि प ऽ रि प म् ष् ऽ प म् ष् ऽ प म् ष् ऽ नि सा, नि सा रि म् ष् ऽ प म् ष् ऽ प म् ष् ऽ नि सा, नि रि रि रि

सा ग रि रि प म् ष् म नि नि ष् ऽ प म् ष् ऽ प म् ष् ऽ नि सा; नि सा सा रि रि मपू म नि ऽ नि ष् ऽ प म् ष् ऽ प म् ष् ऽ नि सा,

नि रि ऽ नि ष् ऽ प मपू रि प ऽ रि ग रि ऽ सा ।

(१५) द्विद्विसानिषादिमूषनि ऽ, धृष्वपमुप नि ऽ, द्विद्विसानिषा म् ऽ धृष्वपमुप नि, पमम् नि, गरिदि,

पमम् धृष्वप नि, सानिनि द्विषासा गरिदि पमम् धृष्वप नि, सां ऽ निषां, निदि^प ऽ निष्व ऽ प ऽ मूष ऽ म्गदि^प ऽ
प ऽ दि^प ऽ गदि^प ऽ सा ।

(१६) निषादिमूषनि ऽ सां ऽ निषां, दिम्व सां ऽ निषां, पधुमुप ऽ पसां ऽ निषां, दिम्व मूष^{मू} पनि ऽ

धमम् ऽ प सां ऽ निषां, दिदि^{धृ} ऽ निष्व ऽ प, मूष ऽ म्ग^प दि^प ऽ प ऽ ऽ रि^प ऽ गदि^प ऽ सा ।

(१७) निषादिप ऽ ऽ रि, दिम्वधृ ऽ ऽ रि, मूषनिषां ऽ रि, धृनिषां दि^प ऽ रि, प सां, द्विषासा

गरिदि प ऽ रि, गरिदि पमम् धृ ऽ रि, पमम् धृष्व सां ऽ ऽ रि प सां ऽ निषां, सादि दिम्व मूष^{सा} ऽ रि,

ग रि^म मू^प
दिम्व मूष^प प ऽ रि, मूष पनि निषां ऽ रि^प ऽ पसां ऽ निषां, सरिनिषा पधुमुप ऽ ऽ रि, पधुमूष सादिनिषां ऽ ऽ रि,

सादिनिषा पधुमुप सां ऽ निषां, निदि^{धृ} ऽ निष्व ऽ प, मूष ऽ म्ग^प रि^प ऽ रि^प ऽ ऽ रि^प ऽ गदि^प ऽ सा ।

(१८) धपम् ऽ नि^प सां ऽ निषां, धमम् ऽ पसां ऽ निषां, धमम् ऽ धृ ऽ निष्व ऽ प, सां ऽ निषां,

दिनिदि ऽ गदि^प ऽ पधृ ऽ निष्व ऽ पसां ऽ निषां, निषादिमूष सां ऽ निषां, निषा सादि^{मू} रि^{मू} मूष^{मू} पसां ऽ निषां,

गिरिनिनि गिरिदि पमम् पप्य सां ड नितां, निरिगदि ड म्पनिच् ड सां ड नितां, गदिदि गदिदि ड निष्च् निष्च् ड
 सां ड नितां, सानिदि' ड गं ड गदि' ड सां, नि ड निष्च् ड गं ड गदि' ड सां, ग ड गदि' ड नि ड निष्च् ड गं ड गदि' ड
 सां, गदि'दि'—दि'निनि ड दि'निनि—निष्च् ड गं ड गदि' ड सां, गदि'दि'—दि'निनि ड दि'निनि—निष्च् धम्—निष्च्
 सानिनि दि'सां गं ड गदि' ड सां, सां ड प ड सां ड दि' ड गं ड गदि' ड सां, दि ड म् ड नि ड दि' ड गं ड गदि' ड
 सां, निहि' ड निष्च् ड प, म्प ड म्प दि ड प ड दि ड गदि ड सा ।

नोट :- जिस प्रकार मध्य सप्तक में आहाप-विस्तार दिखाया गया है, वही प्रकार वाग सप्तक में भी करना चाहिए ।

राग श्री

सुक्त ताने

रिग् गरि सासा, रिग्म रिग्गदिसा, रिग्प रिग्गदिसा, रिग्ग रिग्म रिग्प रिग्गदिसा । रिसासा गदिरि
 पम्प घूप म्ग रिग गरि सासा । सासा रिदिरि म्प पप सासास्य रिदिरि म्पम्प पपप म्गदिरि गदिसासा ।
 सासासा रिदिरि सासासा म्पम्प सासासा पपप म्गदिरि रिग्गदिसासा । रिग्पम्प रिग्गदिसासा, रिग्पप म्पम्प
 निनिघूपम्प रिग्गदिसासा । रिग्पप म्गदिसा रिदिरि'दिरि' निघूपम्प रिग्गदिसा । रिग्म म्पम्प म्ग रिग्गदिसा, म्पम्प रिदिरि'
 निघूपम्प रिग्गदिसासा । रिसासा घूप रिग्गदिसासा, रिसासा घूप रिदिसासा घूप रिग्गदिसासा, रिदिरि रि
 धूपध् रिदिरि'दिरि' गंगेगदिसासा रिनिघूप म्ग रिग्गदिसासा । रिदिरि'दिरि' म्पम्प म्ग रिग्गदिसासा, पदसाद
 रि'निनि निघूप म्पम्प म्ग रिग्गदिसासा, रिदिरि'दिरि' पपप म्ग रिग्गदिसासा । ग्गदिरि' गगदिसासा, निनिघ
 निनिघूप, गंगेगदिसासा, निनिघ् निनिघूप, गगदिरि' गगदिसासा । रिदिरि'दिरि' म्पम्प निनिनि घूप म्पम्प
 म्ग रिग्गदिसासा, निनिनि रिदिरि'दिरि' म्पम्प निनिनिघूप म्पम्प म्ग रिग्गदिसासा, म्पम्प घूपध् रिदिरि'दिरि'
 निनिनि घूप म्पम्प म्ग रिग्गदिसासा । रिदिरि'दिरि' म्पम्प म्ग रिग्गदिसासा, पदसाद रिदिरि'दिरि' निघूप म्पम्प म्ग
 रिग्गदिसासा, रिदिरि'दिरि' गंगेगदिसासा निरि'दिरि' निघूप म्पम्प म्ग रिग्गदिसासा, रिदिरि'दिरि' पपप म्ग रिग्गदिसासा ।
 रिदिरि'दिरि' घूपध् रिदिरि'दिरि' निघूप म्पम्प म्ग रिग्गदिसासा । गगदिसा निनिघूप गंगेगदिसासा निरि'दिरि' म्पम्प
 रिग्गदिसासा । गगदिरि'दिसासा निनिघूप गंगेगदिसासा निनिघूप गगदिरि'दिसासा, रिदिरि'दिरि' पपप म्पम्प म्ग
 रिग्गदिसासा । गगदिरि' गगदिरि' गगदिसासा, निघूप निघूप निघूप निनिघूप, गंगेगदिरि' गंगेगदिरि' गंगेगदिसासा,
 रिग्गदिसासा । रिदिरि'दिरि' म्पम्प रिदिरि'दिरि' पपप रिदिरि'दिरि' घूपध् रिदिरि'दिरि' निनिनि रिदिरि'दिरि'
 रिदिरि'दिरि' निरि'दिरि' निघूप म्पम्प म्ग रिग्गदिसासा ।

अन्तरा

	१			११	
	मू - मू - ष ऽ रि ऽ	मू ^१ सां - सां - ष ऽ छ ऽ	सां - सां - छि ऽ न ऽ	- सांनि दि ^१ - ऽ मा • • ऽ	
X	•	•	•	•	•
सां - - - ई ऽ ऽ ऽ	निषां - - - • • ऽ ऽ ऽ	दि ^१ सांसांनि - - - यो • • • ऽ ऽ ऽ	- - - दि ^१ गं - - - ऽ ऽ ऽ • • • ऽ ऽ ऽ	दि ^१ - दि ^१ सांनिसां - - - बो ऽ • • • • • ऽ ऽ	- - - मू घू ऽ ऽ ऽ त
•	६	११	११	११	११
घू ^१ निदि ^१ नि - - त • • • ऽ ऽ	घूमू - घू - हौ • • • ऽ - ऽ	घू दि - - - अ ऽ ऽ ऽ	दि ^१ - - - • ऽ ऽ ऽ	सां - - - छो ऽ ऽ ऽ	नि घू नि - या • • • ऽ
X	•	•	•	•	•
घूमू - घू - मै • • • ऽ • • • ऽ	- - - ग दि ऽ ऽ ऽ का	दि ^१ नि - - - • ऽ ऽ ऽ	- - सां दि ^१ ऽ ऽ म कि	दि ^१ निनिषू - ये • • • ऽ	- - - ग दि ऽ ऽ ऽ को
•	६	११	११	११	११
दि ^१ - - - उ ऽ ऽ ऽ	सां - - - न ऽ ऽ ऽ	दि - गदु - र ऽ ही • • ऽ	सा - - ग • ऽ ऽ ग		

अन्तरा

x		५								१३						
		म	मू	सो	-	सां	सां	-	-	-	नितां	-	निदि	-		
		ख	ष	ते	ऽ	वि	या	ऽ	ऽ	ऽ	••	ऽ	प•	ऽ		
सां	-	-	दि'सांसांनि	-	दि'	गं	गदि'	गं	दि'	दि'	सां	नि	-दि'	नि	ष	
र	ऽ	ऽ	दे••••	ऽ	स	•	ग•	व	•	न	•	•	ऽ•	की	•	
पमू	-	-	पू	नि	-दि'	स'	दि'	पू	दि'	नि	ष	-	प	-	मू	-
नो••	ऽ	ऽ	दे	ह	री	•	न	दी	•	•	ऽ	दो	ऽ	••	ऽ	ऽ
पू	-	-	म	ग	-	दि	ग	दि	सा		दि	मू	पू	नि	-	
••	ऽ	ऽ	•	•	ऽ	थै	•	व	•	ऽ	वे	थी	ह	लो	ऽ	

नोट :—जो लोग भी के आरोह में 'दिमपनि' बरतते हैं, वे इस गीत में भी 'दिमपनि' के स्थान पर 'दिमपनि' लेते हैं।

तानें

५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
१)		सासा	सा, रि	रि, रि	पप	प, रि	गग	रि, सा	ए	री		तो	•
२)		नि, सा	रि, म्	पघ्	मर	रि, ग	रि, सा	नि, सा	”	”	”	”	”
३)		सासा	सा, रि	रि, रि	मर	घग्	मग	रि, सा	”	”	”	”	”
४)		गरि	रि, प	मर, रि	घग्	ग	रि, सा	मि, सा	”	”	”	”	”
५)		नि, सा	रि, म्	घ्नि	नि, घ्	नि, नि	घग्	मग	रि, सा	परी	ऽ ह्रँ	”	”
६)		नि, सा	रि, म्	घ्नि	स नि	घग्	मग	रि, सा	ए	री	”	”	”
७)		रि, म्	घ्नि	मघ्	घ्नि	घग्	मग	रि, सा	”	”	”	”	”
८)		रि	-	-	मघ्	घग्	मग	रि, सा	”	”	”	”	”
९)	रि, रि	रि, प	पप,	रि, रि	रि, म्	मर	घग्	मग	रि, सा	”	”	”	”

X											१३				
१०)	रिदि	दि, म्	मम, रिदि	दि प	पप,	रिदि	दि, ध	ध्	मग	रिसा	”	”	”	”	”
११)	रिग	दि, दि	गदि,	रिग	गदि	मध्	म, म्	ध्	मध्	मग	रिसा	”	”	”	”
१२)	निसा	रिम	धनि	नि, ध्	निनि	मध्	ध्, म्	ध्, ध्	मग	रिसा	निसा	”	”	”	”
१३)	निनि	नि, रि	रिदि	मम्	म, ध्	ध्	निनि	ध्	म ध्	मग	रिसा	”	”	”	”
१४)	निसा	रिम	ध्नि	सां -	नि	ध्	मग	रिसा	ध्	मग	रिसा	”	”	”	”
१५)	रिदि	दि, प	पप,	रिदि	दि, नि	निनि	रिदि	दि, रि	रि'दि'	सानि	ध्	मध्	मग	रिसा	हूँ तो
१६)	रिदि	दि, म्	मम, रिदि	दि, प	पप,	रिदि	दि, ध	ध्, रिदि	दि, नि	नि'न	रिदि	रि, रि'	रि'दि'	निध्	
	निनि	धम्	ध्	मग	मम्	गदि	गग	रिसा	निसा	रिम	ध्नि	सां -	ए	री	हूँ तो ५
१७)	निसा	रिम	रिम	मग	रिसा,	रिम	पव	रिध्	ध्	गदि	मध्	निसा	मठा	सानि	ध्, धनि
	सादि'	ध्दि'	रि'नि	ध्, म्नि	निध्	मग,	रिध	ध्	गदि	निम	मग	रिसा	ए री	हूँ तो -	

x

२

०

१३

१८) दिग् ग, रि गग र्ग रिसा, म्म प, म् पप म्म म्म, रि'गे गे, रि' गंग रि'गे रि'सा, निसा

सां, नि सांसां निरि' निष्, म्म प, म् पप म्म म्म म्म रिग रिगा निसा ए.ी ऽहूँ तो ६

१९) दिग् ग, रि गग रिसा, म्म प, म् ध्ध म्म, निसां सां, नि रि'रि' निष्, रि'गे गं, रि' गंग रि'सां,

निसां सां, नि रि'रि' निष्, म्म प, म् ध्ध म्म रिग ग, रि गग रिगा ए री हूँ तो

२०) गंदि रि, ग रिदि गग रिसा निसा, निष्, ध्, नि ध्ध निनि ध्ध म्म गंदि रि, ग रि'रि' गंग

रि'सां निसां निष्, ध्, नि ध्ध निनि ध्ध म्म गंदि रि, ग रि'रि' गग रिगा निसा हूँ तो

२१) रिदि रि, प पर म्म म्, ध ध्ध, पप प, सां सांसां, निनि नि, रि' रि'रि' रि'रि' रि, प पंप रि'गे

रि'सां निसां सांरि' सांनि ध्ध, म्ध् म्म रिग रिगा निसा ये री • हूँ तो •

२२) गंदि रि, ग रिदि ध्ध प, ध् पप, गंदि रि, ग रिदि सांनि नि, सां निनि गंदि रि, ग रिदि रि'सां

सां, रि' सांसां, गंदि रि, ग रिदि गंदि' रि', गं रि'रि' रि'नि नि, रि' निनि निष्, ध्, नि ध्ध, ध्ध म्, ध् म्म, म्म ग, म् गग, गंदि रि, ग रिदि रिगा ग, रि सासा ये री • हूँ तो •

x	५										१३				
२३) गद्दि	दि, ग	रिदि,	रिसा	सा, रि	सासा,	ध्व	प, ध्	पप	पम्	म्, प	मम,	मग	ग, म्	गग,	गद्दि
दि, ग	रिदि,	रिसा	सा, रि	सासा,	सानि	नि, सां	निनि	निध्	ध्, नि	ध्ध्,	प	प,ध्	पप,	पम्	म, प
मम्,	मग	ग, म्	गग	गद्दि	दि, ग	रिदि	रिसा	सा, रि	सासा,	गद्दि	दि, ग	रिदि	रिसा	सा, रि	सासा,
सानि	नि, स	निनि	निध्	ध्, नि	ध्ध्,	ध्प	प, ध्	पप,	पम्	म, प	मम्,	मग	ग, म्	गग,	गद्दि
दि, ग	रिदि,	रिसा	सा, रि	सा, मा,	सा	सां	-	सा	सां	-	सा	सां	-	ध्	नि
					ये	री	ऽ	ये	री	ऽ	ये		ऽ	ह्	तो
२४) निग	गद्दि,	रिसा	सा, रि	सा सा,	रिद	पम	मग	ग, ग	रिदि,	रिध्	ध्प	पम्	म, म्	गग,	मनि
निध्	ध्व	प, प	मम्,	पसां	सानि	निध्	ध्, ध्	पप,	पदि	रि'सां	सानि	नि, नि	ध्ध्	रि'ग	गद्दि
रि'सां	सां, सां	निनि,	निध्	ध्, ध	पप,	पम्	म, म्	गग,	गद्दि	दि, रि	सासा	ये	री	ह्	तो
२५) दि	-प	-प	रिम	रिसा	निसा,	म् -	- ध्	- ध्	मध्	मग	रिसा,	प -	- सां	- सां	निदि'
निध्	मम्	रि' -	- पं	- पं	रि'मं	रि'सां	निमां,	नि -	- रि'	- रि'	निदि'	निध्	मम्	म् -	- प्
- ध्	मम्	मग	रिम	ये	गी	ह्	तो	-	-	ह्	तो	-	-	ह्	!

राग श्री

ध्रुपद—सलताल

गीत

स्थाची—गौरी भरवांग, नाचत समीत, शकर त्रिपुर हर ॥

अन्तरा—विशुल डमरू नाद, व्यामाम्बर अम्बर,
राज चमाम्बर परिवानकर ॥

स्थापी

४	•		५		७		०		
नि	-	सां	- रि॑	नि	घ्	म्	प	घ्	प
गौ	ऽ	री	ऽ •	अ	र	धा	•	•	ग
रि				प			ग		
म्	घ्	म्	ग	रि॑	-	-	रि॑	-	सा
ना	•	च	त	स	ऽ	ऽ	गौ	ऽ	त
रि॑				प			ग		
प	-	प	प	रि॑	रि॑	रि॑	रि॑	-	सा
रा	ऽ	क	र	नि	पु	र	ह	ऽ	र

अन्तरा

म्	घ्	नि	सां	रि॑	रि॑	सां	नि	सां	सां
रि॑	•	र	छ	र	म	र	ना	•	र

X	०	५	७	०
त्रि	।	त्रि	सं	त्रि
श्री	•	श्री	•	•
प	प	प	प	त्रि
स	ख	व	र	•
प	प	प्र	सू	त्रि
प	रि	षा	•	क
				र



(८८)

राग श्री

ध्रुवपद—चौताल

गीत

स्थायी—प्रथम नाद सुर साधे, -
भाराधे सोई गुनियन में गावे ॥

अन्तरा—सप्त सुर, तीन ग्राम, प्रकील मूर्च्छना,
तिन के न्योरे तब कहु पावे ॥

संचारी—आरोही अवरोही उलट पुलट के शैल
द्रुत मध्य बिलम्बित भावे ॥

आभोग—“तानसेन” के प्रसु प्रसाद हीजे ।
ताते गायन विद्या कंठ करावे ॥

स्थायी

४	०	५	०	६	११							
ग	ग	सा	प	-मू	धू	नि	धू	मूग	प	ग	ग	सा
दि	दि	सा	प	-मू	धू	नि	धू	मूग	प	ग	ग	सा
प्र	य	म	ना	५०	द	कु	र०	०	०	सा	०	धे
सा	नि	-	ग	ग	सा	दि	प	मू	धू	मू	ग	
धा	०	५	य	०	धे	सो	०	६	०	गु	नि	
नि	दि	नि	धू	मू	ग	दि	धू	ग	ग	ग	दि	सा
य	न	में	०	०	०	गा	०	०	०	०	वे	०

अन्तरा

×	०	५	०	५	०	५	११
प	म्	ध, घ	नि	सां	सां	गं दि	सां
स	०	स	खु	०	र	ली	०
नि	सां	दि	गं दि	गं दि	सां	नि	दि
ए	०	०	की	०	स	मू	०
दि	ध,	म्	ग	प दि	-	सा	-
नि	न	के	०	ब्यो	ऽ	रे	ऽ
नि	दि	नि	ध्	म्	ग	दि	ध्
पा	०	०	०	०	०	वे	०

संचारी

सा-नि	दि	-	ग दि	ग दि	सा दि	प-म्	ध्	-	नि ध्	नि ध्	प
आ ऽ०	०	ऽ	रो	०	ही	अ ऽ०	व	ऽ	रो	०	ही
प	म्	ध्	नि ध्	नि ध्	प	नि	सां	दि	गं दि	गं दि	सां
उ	ख	ट	पु	ळ	ट	के	०	०	हो	०	त
नि	सां	दि	नि	सां	दि	नि दि	नि	ध्	प-म्	ध्	प
ह	व	०	म	०	ध्य	वि	ळ	०	निवऽ०	०	स
दि	दि	नि	ध्	म्	ग	दि	ध्	ग म्	ग	प दि	सा
आ	०	०	०	०	०	वे	०	०	०	०	०



आभोग

x	०	५	०	९	११						
सा-नि वा ऽ०	रि ०	दि न	प-मू से ऽ०	घ् ०	घ् न	सा-नि के ऽ०	रि' ०	- ०	गं म	रि'गंरि' मु००ॽ	वां ०
नि	नि	रि'	रि'	गं रि'	गं रि'	सां	-	नि	रि	नि	घ्
प्र	सा	०	द	दी	०	जे	ऽ	वा	०	ते	०
मू	घ्	मू	ग	गरि'	-	सा	-	रि	प	मू	घ्
गा	०	य	न	बि	ऽ	धा	ऽ	कं	०	ठ	क
नि	रि'	नि	घ्	मू	ग	रि	घ्	ग मू	ग	प रि	सा
रा	०	०	०	०	०	दे	०	०	०	०	०

पूर्व कल्याण

आरोह-भवरोह—निद्रिगम् धनिसा, सानिचपमृगरिसा ।

जाति—षाडव-संपूर्ण ।

मह—निपाद ।

अंश—पञ्चम । ऋषभ, धैवत भनुगामी ।

न्यास—पञ्चम । धैवत के उच्चार के बाद ही पञ्चम पर न्यास ।

अपन्यास—गात्रवार । धैवत वा दीर्घोच्चार ।

विन्यास—मध्य षड्ज ।

मुख्य-अंग—त्रिद्रिगमूषऽप ।

समय—सूर्यास्त के बाद रात्रि के पूर्व । मारवा के बाद और कल्याण के पूर्व ।

रस, भाव—अभिहित । द्रष्टव्य विरोध विवरण ।

विशेष विवरण

पूर्वकल्याण सायसवन का राग है। सूर्यास्त के बाद रात्रि के पूर्व यह राग बरता जाता है। इसका नाम धन्य ही पर सूचित जाता है कि कल्याण के पूर्व पर उपबद्धन होता है। कुछ लोग इसे पूर्वा या पूर्वाकल्याण भी कहते हैं। कुछ भग्य लोग इसे पूरियाकल्याण करते हैं। किन्तु एक परंपरा ऐसी भी है जिस में यह माना जाता है कि जिस प्रकार 'पूर्वकल्याण' में पंचम से कल्याण-अंग परकृत किया जाता है, उसी प्रकार पूरियाकल्याण में छद्म ऋषभ से कल्याण-अंग दिलाया जाता है। यथा—त्रिसाग ऽ मृगऽ गमन्वगमूऽग, मूषनि ऽऽ वमम् ऽऽ ग, मृगरि ऽ सा । इसप्रकार इस राग को पूरियाकल्याण न कह कर पूर्वकल्याण कहना चाहिए। इन दोनों रागों की भिन्नता स्पष्ट है, क्योंकि पूर्वकल्याण में पञ्चम द्वारा तथा पूरियाकल्याण में शुद्ध ऋषभ द्वारा कल्याण अंग की अभिव्यक्ति होती है। कर्नाटक संगीत में पूर्वकल्याण को ही 'गमनाभम' कहते हैं।

इसमें ऋषभ कोमल और मध्यम तीव्रतर लगते हैं। अन्य सब स्वर शुद्ध हैं। इसके आरोह में पञ्चम का स्थाग है।

इस राग में 'रि - मू', 'ग - घ' और 'मू - नि' ये संवादी स्वर-जोड़ियाँ हैं। आरंभ में 'सा' कहने के बाद 'सा ऽ नि ध नि रि नि ध ऽ प' ये स्वर समूह लेते ही पूर्वकल्याण का रूप आविर्भूत हो जायगा।

'निरिग' लेने के बाद यदि 'रिगिगि' लिया जायगा तो पूरिया या पूरिया-बनाभी से बचा सकेंगे। ऋषभ लेते ही शीघ्र ही पटल पर आ जाएँ। अधिक माना में ऋषभ लेने से भी राग के रागत्व को हानि पहुँचेगी, क्योंकि 'मारवा' अपना सिर ऊँचा करेगा। इस प्रकार पूरिया, मारवा तथा पूरिया-बनाभी से बचने के लिए प्रायः निरिग ऽऽनिरिगि (पूरिया), निरिगि ऽऽगमरिगि ऽऽ (मारवा) एवं निरिगि ऽ मरिगि ऽ मूगमरिगि ऽऽ (पूरिया बनाभी) इन स्वर रूपांगों से सदैव सावधान रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त यथाशीघ्र पूर्वांग को छोड़ कर उत्तरांग के शुद्ध धैवत को दिया कर पञ्चम पर ग्यास करना चाहिए। उतीने कल्याण अंग प्रस्तुति होगा और पूर्वकल्याण का रूप कर्णगोवर रहेगा।

निरिगमूषऽप, मूगमूषऽप, मूगरिगमूषऽप, निरि रि ग मू षऽप, मूषमूष ऽ मू ग रि ग मूषऽप, मूगऽऽरिगिऽसा । इन स्वरावलिषो से यह राग स्वयंतया परिष्कृत होगा। मारवा के सदृश यह भी उत्तरांग की ओर ही अधिक मुक्तता रहेगा और उसे उत्तरांग की ओर छत्रता रखने से ही अन्य समप्रकृतिक रागों से उसे दूर रखने में अधिक सरलता होगी।

कुछ गुणी लोग रथूल-भाष से यह कहते हैं कि मारवा में पंचम लगाने से और ऋषभ कम बरतने से पूर्वकल्याण होता है।

इसमें पञ्चम 'कल्याण' की अभिव्यक्ति करता है तो 'रि' 'कल्याण' अंग को तिरोहित करता है। शुद्ध 'ब' 'पूरिया बनाभी' से मिलत्व प्रदान करता है तो पञ्चम इसे 'मारवा' अंग से बचाता रहेगा।

यह द्विधा प्रवृत्ति का राग प्रतीत होता है। पूर्वांग में ऋषभ कोमल तथा तीव्रतर मध्यम के प्रयोग से कुछ अमान वा अनुभव होता है और उत्तरांग में शुद्ध धैवत के साथ पंचम पुर ठहराव होने से कुछ जाग्रति का भाव पड़ा होता है। इसलिए इसके रस का निर्णय नहीं हो पाया है।

(७) निरिग्मरा रिग्मवऽप, धनिरिग्मरि धनिरिग्मवऽप, मुधुनिनिधु मु धु नि रि ग् म् वऽप,

ग नि घृता निरि निग रिग्म गप म्पऽप, वपम् म्ऽ ग म् वऽप, पमग गऽ रि ग् म् वऽप, गरिनिनि ऽ

रि ग् म् वऽ

नि रि ग् म् वऽप, वपमग ऽ पमगरि ऽ मगरिस्ता ऽ निरिग्मवऽप, धपम् ऽ मग ऽ रिग्मगरिऽप ।

(८) निरिनिधि रिगरिग गमगम् म्पम्प म्पवष ष, निरिनिधि ऽ रिगरिग ऽ गमगम् ऽ म्पम्प ऽ म्पवष ऽ ष,

वपम्पऽप, वपमग ऽ पम्पऽप, वपमग ऽ गरि म्ग पम् धऽप, धपमग ऽ रिनि गरि म्ग पम् वऽप, म्पवपमग ऽ,

गम्पम् ऽ म्पवपमग ऽ, रिगमग ऽ गम्पम् ऽ म्पवपमग ऽ, निरिगरि ऽ रिगमग ऽ गम्पम् ऽ म्पवपमग ऽ, वपमग ऽ

पम्पमग ऽ म्गमरि ऽ म्ग पम् वऽप, निगरि रिमग गपम् म्पव, निरि रिग गम् म्प ऽ म्पवऽप ऽ धपमग ऽ रिगमग ऽ रिग ऽ रिस्ता ।

(९) नि रि ग् म् व नि ऽ निव ऽ ष, निनिध ष ऽ नि ऽ निव ऽ ष, पपम् म्ऽ ष निनिध ष ऽ नि नि ऽ

निव ऽ ष, म्गग ग ऽ म्पपम् म्ऽ ष निनिध ष ऽ नि नि ऽ निव ऽ ष, सासानि नि ऽ म्गग ग ऽ पम्प म्

ऽ धप ष ऽ निनिध ष ऽ नि ऽ निव ऽ ष, निवपमगरि ग एवनि ऽ निव ऽ ष, निव धप पम् म्ग गरि म्ग पम् वप

नि ऽ निव ऽ ष, वपपमग ऽ म्ग ऽ रिगमग ऽ रिग ऽ रिस्ता ।

(१०) रिनि गरि म्ग पम् धप निव नि, निध निम् निव नि, पम् वप निव नि, निध धप पम् म्ग ऽ

गरि म्ग पम् वप निव नि, धनिनि ऽ म्पव ऽ म्पव ऽ गम्पम् ऽ रिगमग ऽ रिगमवनि, निरिग्मवनि रि निवऽप, म्पऽप, वपमग ऽ रिग ऽ रिस्ता ।

(११) निद्रिगम्बनि ऽ ति, गद्दि गम् बनि ऽ ति, निषपम्गद्दिनिष निद्रिगम्बनि ऽ ति, निषऽपऽ षप ऽ

बम् ऽ पग ऽ रिगम्ब ऽ रिगऽदिऽसा ।

(१२) घनिद्रिग ऽ गद्दिनिष ऽ गि गम्ब ऽ षपम्ब ऽ गम्बनि ऽ निषमग ऽ म्गद्दिनि ऽ दिनिषप ऽ प, घ ऽ

निष ऽ प, घम्ब ऽ म्ग ऽ, पऽऽम्ब षम्ब ऽऽ म्ग ऽ, म्गऽऽ पऽऽम्ब घम्ब ऽ म्ग, गऽऽद्दि म्गऽऽ पऽऽम्ब षम्ब ऽ म्ग,

द्दिऽऽनि गऽऽद्दि म्गऽऽ पऽऽम्ब घम्ब ऽऽ म्ग, रिगम्ब ऽ षप ऽ म्ग ऽ गद्दि ऽ रिऽसा ।

(१३) निद्रिगम्बनि ऽ घम्ब ऽ म्ग म् घ सा ऽऽ निऽसा, म्ग्गद्दिगम्बनि ऽ षम्ब ऽ म्ग ऽ म् घ सा ऽऽ

निऽसा, सांनिषपम्गद्दिगम्बनि ऽ षम्ब ऽ म्ग म् घ सा ऽऽ निऽसा, रि'निषरऽ म्गद्दिऽसा ऽ रिनिषप ऽऽ प सा ऽऽ निऽसा,

ःऽऽनि षपम्ब ऽ पऽऽम्ब म्गद्दिऽसा ऽ साऽऽनि षपम्ब ग गे रि'गद्दि'ऽसा, घनिद्रि'निषऽप, म्बऽप घम्ब ऽ म्ग ऽ रिग ऽ रिऽसा ।

(१४) निद्रिगम्बनिद्रि'गे ऽ गद्दि'सांनिषपम्ब, 'निद्रिगम्बनिऽसा ऽ सांनिषपम्गद्दिऽसा, सांनिष म्बघनिद्रिग ऽ

गम्बनि ऽऽ घनिद्रि'गे ऽ गद्दि' ऽ रि'नि ऽ निष ऽ षप ऽ पम्ब म्ब ऽ गे ऽ गद्दि' रि'नि निष षप पम्ब म्ब ऽ गे ऽऽ

द्दि'गद्दि'ऽसा, घनिषऽप, रि'गद्दि'ऽसा ।

पवपध धनिधनि निसानिसा धनिधनि पधपध म्भम्भ गम्यम् रिग्गिग् म्भरिस्सा, रिग्गिग् गम्यम् म्भम्भ पवपध
 धनिधनि निसानिसा सारि' सारि' निसानिसा धनिधनि पवपध म्भम्भ गम्यम् रिग्गिग् म्भरिस्सा, रिग्गिग् गम्यम्
 रिग्गिग् म्भरिस्सा, रिग्गिग् गम्यम् म्भम्भ पवपध धनिधनि निसानिसा सारि' सारि' रि'ग्गि'ग् सारि' सारि'
 निसानिसा धनिधनि पवपध म्भम्भ गम्यम् रिग्गिग् म्भरिस्सा । रिग्गिग् म्भरिस्सा, धनिधनि सानिरा, रि'ग्गि'ग्
 म्भरि'स्सा सानिधप म्भरिस्सा । गि'ग्गि'ग् म्भरि'स्सा, निवडनि सानिधप, गि'ग्गि'ग् म्भरि'स्सा सानिधप म्भरि'स्सा ।
 रि'ग्गि'ग् म्भरि'स्सा, धनिधनि धनिधनिधप, रि'ग्गि'ग् म्भरि'स्सा म्भरि'स्सा सानिधप म्भरि'स्सा । निनिनि गगग,
 रि'ग्गि'ग् म्भम्भ, गगग परप, म्भम्भ धवध, म्भम्भ निनिनि, धवध सानिसा, निनिनि रि'ग्गि'ग् म्भरि'स्सा
 सानिधप म्भरि'स्सा । निरि'ग्गि'ग् रि'ग्गि'ग् म्भरि'स्सा, गम्यधम् म्भरि'ग्गि'ग् म्भरि'ग्गि'ग् म्भरि'ग्गि'ग् धनिधनिधप, धनिधनिधप
 निसारि' सानिध, धनिधनिधप म्भरि'ग्गि'ग् म्भरि'ग्गि'ग् म्भरि'ग्गि'ग् म्भरि'ग्गि'ग् म्भरि'ग्गि'ग् म्भरि'ग्गि'ग् म्भरि'ग्गि'ग्
 निसानि, धनिध धनिध, पवप पवप म्भम्भ म्भम्भ गम्य गम्य, रि'ग्गि'ग् म्भरि'स्सा । निरि'ग्गि'ग् रि'ग्गि'ग्
 रि'ग्गि'ग् गम्य रि'ग्गि'ग्, गम्यधप म्भम्भ गम्य, म्भरि'ग्गि'ग् धनिध पवप, धनिधरि'ग्गि'ग् निसानि धनिध, सारि' स्सा
 निसानि धनिध पवप म्भम्भ गम्य म्भरि'ग्गि'ग् ।

राग पूर्वकल्याण

ख्याल—विलम्बित आढ़ा चौताल •

गीत

स्थायी—बुला ला आली, श्यामसुन्दर वनमाली ।

अन्तरा—देखें नैन भरी, रसिया की सोहनी सुरत
निराली मतवाली ॥

स्थाई

११

--- निसा
S S S बु •

मू-मूरि ग -- घ घमगम --
लाS•••SS • S •••SS

नि निचमष - स-सनिचनि --
• S •••• SS • S •••• SS

--- ष निरि निच
SSS • •• ला •

x

३

नि - निच -
आ S •• S

प - मष -
ली S •• S

मू-मूरि गमष -
श्या S••••• S

पघमू - - मूघम - S
म ••S S •••SS

रि श्या ग मू मू ग
सु •••••••• •

७

रि - - -
द S S S

सा - - -
S S S

रि सा निच निसाम् -
ष •••••• •

११

मू ग - - - न ऽ ऽ ऽ	मू मू - ग - मा ऽ • ऽ	ग रि - सा निसा ली ऽ • हु •	मू-मूगरिग - - घ घमूगमू - - साऽ ••••• ऽऽ • ऽ ••••• ऽऽ
--------------------------	----------------------------	----------------------------------	---

नि-निघमूव - - सा-सनिघनि - - • ऽ ••••• ऽऽ • ऽ ••••• ऽऽ	--- घ निरि' निघ ऽऽऽ • • ली •		
--	---------------------------------	--	--

अन्तरा

११

		घपमूग - - - दे ••• ऽ ऽ ऽ	प मू घप ख • हु •
--	--	-----------------------------	---------------------

निघ - - - निमू - - - नै • ऽ ऽ ऽ ••• ऽ ऽ ऽ	- - घ मू ऽ ऽ न म		
--	---------------------	--	--

घनिसां - - - री ••• ऽ ऽ ऽ	निसां - - - ••• ऽ ऽ ऽ	रि' - रि' सां निसां - - - निघ र ऽ ••••• ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ सि •	घनिरि' गी - - - या ••••• ऽ ऽ ऽ
------------------------------	--------------------------	---	-----------------------------------

७

रि' - सां - की ऽ • ऽ	सां - - रि' सनिघप मूग - सो ऽऽ • ह • नी • •• ऽ ऽ	ग रि' मू ग प मू घ प ख • र • त • नि •	निनि - निघ - घप - पम - रा • ऽ ••••• ऽ ••••• ऽ ••••• ऽ
-------------------------	--	---	--

११

मू-मूगरिगमूव - - मूग छोऽ ••••• ऽ ऽ मव	रि गमू र ग रि मू मू ग या ••••• •	रि - सा निमा छो ऽ • हु •	
--	-------------------------------------	-----------------------------	--

अन्तरा

x											१३					
मू	-	मू	ष	सां	-	सां	सां	नि	ष	नि	रिं	नि	घ	प	प	
का	ऽ	री	•	षा	ऽ	ष	र	बौ	•	री	•	घू	•	म	र	
मू	ग	रिं	ग	ष	मू	ग	म	नि	घ	मू	घ	सां	नि	घ	नि	
दे	•	हो	•	प्र	ण	ब	गो	पा	•	•	ल	न	•	द	डु	
रिं	सां	नि	सां	ष	नि	ष	रिं	सां	नि	घ	प	मू	ग	ग	रिं	
ला	•	•	ल	ळ	व	र	क	ंहे	•	या	•	•	•	डु	द	

राग पूर्वकल्याण

तराना—त्रिताल

गीत

स्वायी—ना दिर दिर दानि तदानि ता देरे ना,
 ना दिर दिर दानि, तु दिर दिर दानि, दिर दिर दानि,
 तननन देरे ना, वारे वदारे दानि, घा किट तक घुन किट तक गदि गन,
 घागे बिगन घा, घागे बिगन घा, घागे बिगन घा ।

अन्तरा—ना दिर दिर दिर तु दिर दिर दिर दिर दिर दिर दिर दिर दिर दिर दिर,
 यललि यालि यललि यालि यलला,
 नग घेत् बिरकिट तक घा, धीना तिर किट नग धिर किट तक,
 धान धान घा, धान धान घा, धान धान घा ॥

स्वायी

४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
								सा	निनि	षष	नि	घ	प	म्	गम्	
								ना	दिर	दिर	दा	नी	त	दा	नि०	
प	-	मृग	म्	ग	रि	सा	-	सा	निनि	दि रि	ग	-	ग	ग	रि रि	
सा	ऽ	००	दे	०	रे	ना	ऽ	ना	दिर	दिर	दा	ऽ	नि	तु	दिर	
गग	म्	-	मृ	गग	मृमृ	घ	ष	म्	नि	ष	नि	प	प	म्	म्	
दिर	दा	ऽ	नि	दिर	दिर	दा	नि	त	न	न	न	दे	रे	ना	०	
न	रि	ग	म्	ग	रि	सा	सा	सा	सासा	सासा	गग	गग	गग	मृम्	मृम्	
वा	०	दे	व	दा	दे	दा	नि	वा	किट	तक	धुम	किट	तक	गदि	गन	

राग वसन्त

आरोह-अवरोह—सा मऽमः, म् घ् सी ऽ नि ष् ऽ ऽ प घमप ऽ म्ग म् ऽ ऽ ग, नि म् ग हि ऽ सा ।

जाति—औडव वक्र-संपूर्ण । क्योंकि आरोह में 'रि - प' का प्रयोग नहीं होता और अवरोह वक्र रहता है ।

ग्रह—आलाप में मध्यम, और तान-त्रिशा में गान्धार ।

अंश—तार पद्म । ऋषभ, चैवत उपास ।

न्यास—पञ्चम ।

अपन्यास—गान्धार ।

विन्यास—षड्भ ।

मुख्य-अंग—मूर्त्ती ऽ निषूय, चम्प ऽ म्ग मऽग ।

प्रकृति—गंभीर श्रीर तरल मिथ ।

समय—वसन्त ऋतु में चौबीसों घंटे एवं सामान्य रूप से। मध्य रात्रि के पश्चात् ।

विशेष विवरण

वसन्त एक बड़ा प्रसिद्ध राग है । इस राग के गीतों में वसन्त ऋतु का वर्णन पर्याप्त मात्रा में मिलता है । राग रागिनी के वर्गीकरण को स्वीकार करने वाले कई एक ग्रंथों में वसन्त को मुख्य पुरुष रागों में गिनाया गया है ।

इस राग में ऋषभ-चैवत कोमल, दो मध्यम (शुद्ध और तीव्रतर) एवं अन्य स्वर शुद्ध लगते हैं । परम, गौरी, पूर्वी वगैरह रागों में भी सामान्यतः यही स्वर लगते हैं । किन्तु इन स्वरके चरन में,

स्वरो के उच्चार में, स्पर्श में, उद्गम में काफ़ी अन्तर है । इसका आरंभ प्रायः म् घ् सी ऽ नि ष् ऽ प, इस प्रकार मध्यम से होता है, और आरोह करते समय प्रायः निषाद को छाँटकर ही तार पद्म पर पहुँचते हैं, साथ ही तार पद्मसे गंभीर मीठ के साथ निषाद-चैवत का प्रयोग करते हुए, पंचम पर कुछ देर ठहरते हैं । उत्परचाद् 'म्ग म् ऽ ग' कहकर गान्धार पर अपन्यास करते हैं और फिर म् ग हि सा कहकर विन्यास यानी पुर्याकारण करते हैं । तथा म् घ्

साँड नि ष ड प, ध्रुम ड मृ ग मू ड ग, मृ ग रि ड सा । साँम-मू ड मृ ग, मू नि ष ड प, पध्रुम ड मृ ग मू ड ग, मू ष्रि' नि ष ड प, ध्रुम ड मृ ग मू ड ग, मृ ग रि ड सा ।

'वसन्त' का निकटवर्ती राग 'परज' है। 'परज' का पूरा विवरण तो, उगी राग के प्रकरण में देस केना चाहिए। यहाँ वसन्त एव 'परज', दोनों में भिन्नत्व दिखाने के लिए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि पञ्च के पूर्व और उत्तर दोनों अंगों में 'रि' साँ रि' नि साँ ड, ध्रुम ड मृ ग मू ड ग' यों 'काठिन्नदा' के टंग से स्वरो के उच्चार क्रिये जाते हैं। इस प्रकार परज के स्वर त्वरित गति से बिना मीढ के उच्चार जायेंगे और वसन्त के समी स्वर विद्वन्वित गति से मीढ सहित उच्चार जायेंगे। इससे दोनों की प्रकृति में भी भेद हो जाता है, और राग के अंग में भी परिवर्तन पाया जाता है। वसन्त गंभीर है, परज चंचल है। वसन्त की दूसरी विशेषता यह है कि—मू ष्रि' साँ ड रि' नि ष ड प यों पञ्च पर उतरने के बाद, द्रुन्त ही ध्रुम ड मृ ग मू ड ग यों 'मृ ग मू ड ग' का पुनरुच्चार किया जाता है। इसमें एक बार 'मृ ग' कहना पर्याप्त नहीं होता, दो बार 'मृ ग मू ड ग' कहना आवश्यक है। क्योंकि यह भी इस राग की अभिव्यक्ति का एक अंग है। जैसे उपर्युक्त 'मू ष्रि' साँ' वाले स्वर वसन्त की अभिव्यक्त करते हैं, वैसे ही 'मृ ग मू ड ग' यह त्वरित्रिया भी इसमें रागवाची है। जब मध्य-सतर के 'सा' पर पहुँचना होगा, तब 'मृ ग मू ड ग' के पुनरुच्चार के बाद आलाप में 'मृ ग रि ड सा' करना होगा। पद्वज के बाद पुनः उत्तरांग की ओर जाते समय साम ड मू ड मृ ग, यों साँ सा ललित का आभास देकर मू नि ष ड प, मू ष्रि' साँ, यों पुनः तार पद्वज पर जाना पड़ेगा। वसन्त को छोड़कर ललितसङ्ग का यह छोटा-सा टुकड़ा अन्य किसी राग में नहीं ज्ञाया जाता है। कुछ गुणीजन इस टुकड़े को लिये बिना भी 'वसन्त' को प्रस्तुत करते हैं। इसलिये प्रचार में यह स्वरराग सर्वमान्य होने पर भी, ऐसा नहीं मानना चाहिए कि इस टुकड़े के बिना वसन्त हो ही नहीं सकता। पूर्वी, गौरी या परज में दो मध्यम लगाने के टंग निर्दले हैं। तीनों में ही विशेष टंग से दो मध्यम लगाये जाते हैं, और इन तीनों से वसन्त का शुद्ध मध्यम लगाने का उरीका विद्वक्कुल मिल है। इन स्वरो के लगाव को प्रत्यक्ष गुरुमुख से सुन कर अपनेको बार गुरु के सम्मुख ही गा लेना चाहिए। और गले में उनी विशेषताएँ बिठा केनी चाहिए। तभी र गों के रूप को आत्मसात् किया जा सकता है।

कुछ लोग 'नि ध्रुम' या 'गमू नि ध्रुम' यों पञ्चम को छोड़कर जब ऐसे टुकड़े लगाते हैं, तब शुद्ध धैवत का उपयोग करते देखे गये हैं। संभवतः ऐसे टुकड़ों में शुद्ध धैवत का स्पर्श अनजाने हो जाता है और इसीलिए व्यवहार में यह त्रिया प्रचार-सम्मत मानी गयी है। फिर भी इस प्रयोग से बचने में ही कुशलता है। इस राग वा चलन यों होगा।

मू ष्रि' साँ ड नि ष ड प, ध्रुम ड मृ ग मू ड ग, मू ष्रि' ड नि ष ड प, ध्रुम ड मृ ग मू ड ग,

ध्रुमू नि ष्रि' साँ ड नि ष ड प, ध्रुम ड मृ ग मू ड ग मृ ग रि ड सा ।

रिदिसानिद्या मम् म्ग, गम् नि घ् ऽ प, म् घ् रि' नि घ् ऽ प, घम्प ऽ म्ग म् ऽ ग, गम्

म् नि घ् म् ग ऽ म् ऽ ग रि' ऽ सा, म ऽ म्ग ऽ म् घ् सा, म् घ् रि' ऽ नि घ् ऽ प ।

सामान्य रूपसे इसकी आलापचारी म् घ् सा ऽ नि घ् ऽ प, यो मध्यम से ही आरंभ होती है। इसलिये तीव्र तर मध्यम इसका ग्रहस्वर माना जायगा। हाँ, तानक्रिया में गान्धार से उठना सुविबाजनक होता है। इसलिये आलति में मध्यम स्वर ब्रह्म मानना चाहिए और तानक्रिया में गान्धार। इसका चलन अधिकतर उत्तराग में ही होता है। इस दृष्टि से तार-खड्ज इसका अंश-स्वर होगा, पचम-न्यास और गान्धार अनन्यास स्वर होगा। चैवत और ऋषभ उपांश स्वर दोगे। म् घ् सा ऽ नि घ् ऽ प और म् ग म् ऽ ग म् ग रि' ऽ सा एव पूर्वोक्त में ली जानेवाली षड्भाग की शुद्ध मध्यम की क्रिया—ये स्वर क्रियाएँ इसमें रागवाची हैं।

इसकी प्रकृति कहीं चबल, कहीं गमीर यो मिश्र रहती है। तारगति होने से तरल भाव सूचित होता है और भीड़ प्रयोग वा बाहुल्य होने से यह गभीर-भाव धारण करता है। ऋषभ, चैत, कोमल, तीव्रतर मध्यम और तारगति इनसे विप्रलम्भ गार, बसन्त में प्रिय का वियोग, और तज्जन्म भावनाओं का दर्शन इस राग में मुख्य रूप से प्रतीत होता है। बहार में बसन्त का जो उल्लास है, वह उल्लास बसन्त में दिखाई नहीं देता, हाँ, केवल शुद्ध मध्यम दिखाते समय, कुछ क्षण के लिए उल्लास का दर्शन हो जाता है, फिर भी पुनः वही कोमल 'रि' घ्' और तीव्रतर मध्यम स्वरों से विरहावस्था के भाव कर्ण-गोचर होने लगते हैं। बसन्त ऋतु में यह राग चौबीसों घण्टे गाया जाता है, और सामान्य रूप से इसे मध्य-रात्रि के पश्चात् गाने बजाने का प्रचार है।

राग वसन्त

मूक आलाप

(१) म् घ् सां ऽऽ नि घ् ऽऽ प, घुम्प ऽ म्ग म् ऽऽ ग ऽ म्गदिसा, रिनिष्ठा म ऽ म् म्ग ऽ ग नि

घ् ऽऽ प म् घ् सां ऽऽ नि घ् ऽऽ प, घुम्प ऽ म्ग म् ऽऽ ग ऽ म्गदिसा ।

(२) म्ग घ्म् निघ सां, म्ग ऽ घ्म् ऽ निघ् सां ऽऽ घुम्प ऽ म्ग म् ऽऽ ग ऽ गम्नि घ् ऽऽ प,

घ् घुम्प ऽ म्ग म् ऽ ग, म्ग घ् सां ऽऽ निघ् ऽऽ प, घ्म् निघ् सां ऽऽ निघ् ऽऽ प, म्ग घ्म् निघ् सां ऽऽ नि

घ् ऽऽ प, सानिदिष्ठा म्गघम् निघ् सां ऽऽ नि घ् ऽऽ प, घुम्प म् ऽ घ् सां ऽऽ नि घ् ऽऽ प, म्ग घ्म् निघ्

सां ऽऽ नि घ् ऽऽ प, रिनिष्ठानिष्ठा म्घ् सां ऽऽ नि घ् ऽऽ प, घ् घ् पम्प ऽ म्ग म् ऽऽ ग ऽ म्गदिसा ।

(३) रिनिष्ठा म ऽऽ म् ऽ ग ऽ, रिनिष्ठानिष्ठा म ऽऽ म् ऽ ग ऽ, पघुम्प ऽऽ म्ग म् ऽऽ ग ऽ,

रिनिष्ठा म ऽऽ म् ऽ ग ऽ म्घुम्प ऽ म्ग म् ऽऽ ग ऽ, सानिदिष्ठा म् ऽऽ ग प ऽऽ म् घुम्प ऽ म्ग म् ऽऽ ग ऽ,

गम्निघ् म्ग म्गदि ऽ सा ।

(४) रिनिष्ठानिष्ठा म ऽऽ म् ऽ ग ऽ, गम् निघ् ऽऽ प, घुम्प ऽ म्ग म् ऽऽ ग ऽ, सां म् ऽ ग रि ऽ सा,

म् घ् सां ऽऽ नि घ् ऽऽ प, म्ग म् ऽऽ ग म्गदि ऽ सा ।

(५) सान्निहिता म् ऽऽ ग, घम् निघ् सान्निहिता म् ऽऽ ग, सान्निहि हितासा म् ऽऽ ग, हिहितासा

म् ऽऽ ग, सासान्निघ् नि हितासा म् ऽऽ ग, म्गदि ऽ सा ऽ म ऽ म्ग ऽ, म्घ्सां ऽऽ निघ् ऽऽ प, घ्घ्मम् ऽ म्ग

म् ऽऽ ग, गम् निघ् ऽ प ऽ घ्मम् ऽ म्ग म् ऽऽ ग, म्गदि ऽ सा ।

(६) हिहितासा म् निघ्मम् सां ऽऽ नि घ् ऽऽ प, सान्निहिता म् घ्म निघ् सां ऽऽ नि

घ् ऽऽ प, सान्निहितासा म् घ्मम् निघ् सां ऽऽ नि घ् ऽऽ प, सान्निहितासा ऽ हितासा ऽ म्गघ्मम् ऽ

घ्म निघ् ऽ सान्निहितासां ऽ सां ऽऽ नि घ् ऽऽ प, घ्घ्मम् ऽ म्ग म् ऽऽ ग म्गदि ऽ सा ।

(७) घघ् म्घ् सां ऽऽ नि घ् ऽऽ प, घ्घ् म्घ् सां ऽऽ नि हितासां ऽऽ नि घ् ऽऽ प, हिहितासा

म् ऽऽ निघ्मम् सां ऽऽ नि हितासां ऽऽ नि घ् ऽऽ प घ्मम् ऽ म्ग म् ऽऽ ग ऽ म्गदि ऽ सा ।

(८) सान्निहिता म् ऽ म् ऽ म्ग ऽ, घम् निघ् सां ऽ नि हितासां ऽऽ नि घ् ऽऽ प, घ्घ्मम् ऽ म्ग म् ऽऽ ग,

म घ् घ् म्घ्दि सां ऽऽ नि घ् ऽऽ प, घ्म निघ् सान्निहितासां ऽऽ नि घ् ऽऽ प, निघ्मम् सांनिघ् न हितासां

ऽऽ नि घ् ऽऽ प, म्घ्मम् ऽ म्गम् ऽऽ ग ऽ म्गदि ऽ सा ।

(९) निषा म्ग घ्म निष् सानि द्विंसां म्' ळ' ग' म्' ळ' ग' द्विं' सां, द्विं' सानिंसां म्' ळ' म्' ग' ळ',

सानिद्विं' सां म्' ळ' म्' ग', सां ळ' नि नि ळ' द्विं' ळ' सां ळ' म्' ळ' ग', नि ळ' घ्' घ्' ळ' सां नि नि ळ' द्विं' ळ' सां ळ' ळ'

म्' ळ' ग', म्' ळ' म्' ग' ळ' द्विं' ळ' सां, निषां म्' ळ' ग', म्' ळ' ग', म्' ळ' ग' म्' ग' द्विं' ळ' सां, म्' ग' द्विं' ळ' सा ।

(१०) म्' ग' घ्' म्' निष् घ्' सानिनि द्विं' सां म्' ळ' ग', सां' म्' ळ' म्' ग', द्विं' सां' म्' ळ'

म्' ळ' म्' ग', म्' ग' द्विं' ळ' सां, द्विं' सानिंसां ळ' म्' ळ' घ्' सां ळ' नि घ्' ळ' प, घ्' म्' ळ' म्' ग', म्' ग' द्विं' ळ' सा ।



राग वसन्त

मुक्त ताने

साहिसा म्गमगदिसा, हिसाहिसानिसा म्गमगदिसानिसा, म्गम म् म्गमगदिसा । निनिसाम् म्गदिसा,
 निनिसाम्गदिसानिसा, म्गम म्गम म्गमगदिसा, हिसाहिसानिसा म्गमगदिसा । हिसा म्गम ध्म् ध्म् म्गमगदिसा । म्घ्सा-
 निष्प म्गमगदिसा । हिसा सा'डनिष्प म्गमगदिसानिसा, हिसा म्मम् निनिष्प म्गमगदिसा, हिसा म्मम म्म म्म
 निनिष्प म्गमगदिसा ! म्घ्सा'डनेध् म्गमग म्गदिसा । सासासा परप म्घ्सा'डनिष्प म्गमगदिसा, निनिसाम् घ्सा'डने
 ध्प म्गमगदिसा । घ्मम् निध् घ् सा'निहि'सा'डनिष्प म्गमगदिसा । घ्मम् घ्मम् निध्सा'नि हि'सा'डनिष्प म्गदिसा ।
 सासासा मम म्ममग म्गमगदिसा । घ्मम् निध् निध् निध् निध्पघ्मम् म्गमग म्गदिसा । पध्मम् म्गमग म्गदिसा, घ्मम्
 घ्मम् म्गमग म्गमगदिसा । निनिसाम्घ्सा'निहि'सा'निध् म्ममगदिसानिसा । घ्मनिध् सा'निहि'सा'निध् म्गमग
 म्गदिसा । सासासा गगग म्गमगमग म्गदिसा, घ्मनिध् सा'निहि'सा'निध् सा'निध् घ्मम् म्गदिसा । सासासा
 म्मम् गग निनिष्प म्गदिसा । सासा म्ममग निनिध् घ्सा'निहि'सा'निध् म्गमग म्गदिसा । घ्नि घ्सा'निहि'-
 सा'निध्पमग, म्घ्मनि घ्सा'निहि'सा'नि ध्पमग, गम्गघ् म्निघ्सा'निहि'सा'नि ध्पमग, साम् गनि घ्सा'निहि'सा'निध्पमग,
 म्गमग म्गदिसा । निध् घ्सा'डने'सा'निध्पमग म्गदिसा, घ्मम् निध् घ्सा'निहि'सा'डनि घ्पमग म्गदिसा, म्गम घ्मम्
 निध् सा'निहि'सा'डनि घ्पमग म्गदिसानिसा । हिसासा म्गम घ्मम् निध् घ्सा'निहि'सा'डनि घ्मम् म्गदिसानिसा । सासासा
 गगग म्ग घ्म निध् सा'निहि'सा'निध्प म्गदिसा । म्गम म्गम म्ग, निध्प निध्प निध् सा'निहि'सा'निध्प म्गदिसा ।
 गगग निनिनि गग् म्गदिसा'सा'नि प म्गमग म्गदिसा । साम्मगदिसा, म्सा'निध्प म्गदिसा । प्गदिसा सा'निध्प
 म्गदिसा'सा'निध्प म्गमग म्गदिसा' । म्गमग म्गदिसा म्ग'मग' म्ग'दिसा'सा'निध्प म्गदिसा । साम्म म्ग'मग' म्ग'मग'
 म्ग'दिसा'सा'निध्प म्गदिसा । सासासा म्मम् म्मम् म्गदिसा, म्मम् निनिनि निनिनिनि ध्पमग, निनिनि म्म'म'
 म्ग'दिसा'सा'निध्प म्गदिसानिसा । निनिसाम् म्गदिसा, म्घ्मसा'निध्प, निनिसाम् म्ग'दिसा'सा'निध्प म्गदिसा । निनिसासा
 निनिसासा निनिसानिम म्गदिसा, म्घ्मसा'निध्प, निनिसाम् म्ग'दिसा'सा'निध्प, निनिसासा निनिसासा निनिसानिम म्ग'दिसा'
 सा'निध्प म्गदिसा । निनिसा निनिसा साम्मम् म्गदिसा, म्घ्मसा'निध्प, निनिसासा'निध्प, निनिसासा'निध्प म्ग'दिसा'
 सा'निध्प म्गदिसा ।

राग वसन्त

खयाल—तिलवाड़ा

गीत

स्यायो—कूची री बरत बदरिया,
प्यारे की छवि देखी मन में ।

अन्तर—बेला, चमेली, गोंदा, शलाघ, जाद, लुदी,
और बेलरिया मन में ॥

स्थाई

११

					-- म-घ	घसा निसा •	-- निघ
					५५ कू • ५	की • • • ५ ५	५ ५ री व

X

५

नि-घ •	मू प - प प	पघमू प -- मग	म- ग -	मगदिसा	निसा -- सा	दि - इसा निसा --	म -- म
स • ५ • ५	• • ५ त व	हा • • • ५ ५ रि •	यां ५ • ५	प्या • • •	• • ५ ५ रे	की ५ • • • • ५ ५	• ५ ५ छ

१३

मममममग --	• म-घ	घसा • निसा •	-- निघ	नि प -	प-म-घ	घसा निसा --	-- निघ
• • • • • ५ ५	५ ५ दे ५ •	की • ५ • • ५	५ ५ म न	में ५ • ५	• • कू ५ •	की • • • ५ ५	५ ५ री व

१३

			पघमप - - मग	मू - ग मू - घं	घसा - -	--- निसा
			वे ••• S S ••	ला S • च S •	मे • S S	S S S ••

x

५

सा - - -	निसा - - -	रि'सा'सनि - मू' -	मू' गे' - - मू'	गे - रि' -	सा - - सा	सा'रि'निसा' नि - ध -	निघप •
ली S S S	•• S S S	गे' ••• S • S	रा S S गु	ला S • S	• S S घ	जा ••• ङं S लु S	री •••

१३

पघमप - - मग	मू • मू ग	रि सा - सा'रि'सा'सा' - - निध	न - ध -	प •, म - घ	घ - निसा - -	--- नि	
ओ ••• S S र •	वे • ल रि	या S • S •••••	S S च न	मे S • S	• S, ङ S •	हा ••• S S	S S री •



ताने

x	५					०					१२					
१)			निसा	द्वि'सा	निसा	फ	ग	वा	ऽ	त्रि	च	दे	०	ख	न	
२)			मृष्	निसा	द्वि'सा	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	
३)	मृष्	निष्	धनि	स न	निसा	द्वि'सा	"	"	"	"	"	"	"	"	"	
४)	मृ	-	-	-प	सानि	ध्र	"	"	"	"	"	"	"	"	"	
५)	द्वि'सा	सा, द्वि'	सासा	प	प, प्	पप	"	"	"	"	"	"	"	"	"	
६)	मृ'गं	मृ'गं	द्वि'सा	सानि	सानि	ध्र	"	"	"	"	"	"	"	"	"	
७)	मृ'ग	द्वि'सा	सानि	प	मृ'गं	द्वि'सा	"	"	"	"	"	"	"	"	"	
८)	सासा	सा, मृ	मृम	निनि	निमृ'	मृ'मृ'	मृ'गं	द्वि'सा	सानि	ध्र	मृ'ग	द्वि'सा	सानि	ध्र	मृ'ग	द्वि'सा
९)	वां नि	ध्र	मृ'ग	द्वि'सा	ध्रनि	सानि	फ	ग	वा	ऽ	त्रि	च	दे	ऽ	ख	न

x	५										१३				
१) सादि	मा,सा	द्वि'सां	नि'सां	नि,नि	स न	ध्नि	ध्, ध्	निध्	पध्	प, प	ध् प	मर	म,म	पम	मम
ग,ग	मग	गम्	निनि	धप	मग	द्वि'षा	पग	ऽ वा	ऽ	त्रि	ज	दे	ऽ	ख	न
१०) म्ग	ग,म	गग	म्ग	म्ग	म्ग	म्ग	रिमा	सा'नि	नि'सां	निनि	सा'नि	सा'नि	सा'नि	सा'नि	ध्प
म्'गं	गं,म'	गं'गं	म्'गं	म्'गं	म्'गं	म्'गं	द्वि'सां	सा'नि'	ध्प	मग	द्वि'सा	म्'गं	द्वि'सां	स'नि	धप
मग	द्वि'सा	म्'गं	द्वि'सां	सा'नि	ध्प	मग	द्वि'सा	फ	ग	वा	त्रि	ज	दे	ख	न
११) गं	-	-	म्'म'	म्'गं	द्वि'सां	सा'नि	ध्प	मग	द्वि'सां	ग	-	मम	मग	द्वि'सा	
गं	-	-	म्'म'	म्'गं	द्वि'सां	सा'नि	ध्प	मग	द्वि'सा	पग	ऽ वा	ऽ त्रि	ज दे	ऽ ख	ऽ न

राग वसन्त

द्रुत एकताल

गीत

स्वायी—पेण्ढी पेय्ढी गेण्ढी गेण्ढी फिरे ज़बनार गोरी,
 गरवा बागो, रंग बरसे इत वसन्त में आली
 भोवन माती बैस (वयस) मोरी ॥

अन्तरा—सोब्ह सिंगार करि आमरन, पहर पहर भूलन,
 भूँद भूँद भूँद प, भविर गुजाळ लिए मर शोरी ॥

स्वायी

X	०	१	०	६	११						
पे •	सां	नि	धू	प	प	प	प	मृग	मू	-	१
	•	ढी	पे	•	ढी	गै	•	ढी •	गै	५	ढी
मू	ग		धू	नि	सां	सांदि ^१	निसां	नि	मू	-	धू
फि	•	रे	•	म	ख	ना •	• •	र	गो	५	री
मू	मू	प	न	सां	स	धूनि	निदि ^१	नि	धू	मू	ग
ग	र	वा	बा •	•	गो	र •	ग	ब	र	से	•
गाम्	नि	धू	मू	ग	मू	ग	-	-	दि	-	सा
• ब	त •	प	सं	•	त	मै	५	५	ध्रा	५	ढी
सा	दि	सा	ग	-	ग	मू	-	धू	धूनि	मू	म
ओ	• ब	न	म	५	ठी	के	५	स	यो •	•	री

अन्तरा

५	०	५	०	५	०	५	०	५	०	५	०	
मू	धू	मू	धू	सां	सां	सां	सां	सां	नि	द्रि'	सां	सां
सो	ख	ह	सि	गा	र	क	रि	आ	म	र	न	
सां	सां	सां	सां	सां	सां	धूनि	द्रि'	-	नि	घ	-	
प	ह	र	प	ह	र	भू	•	ऽ	ज	न	ऽ	
मू	-	धू	धूनि	निद्रि'	नि	धूभू	मू	धू	ग	मू	-	ग
गू	ऽ	द	गूं•	••	द	गूं	•	द	गं	ऽ	द	
ग	मू	नि	नि	धू	मू	ग	मू	ग	द्रि	सा	सा	
ए	•	•	•	•	•	•	•	•	•	•	•	
सां	गं	द्रि'	मू'	गं	द्रि'	सां	सां	नि	द्रि'	नि	मू	धू
भ	की	र	शु	सा	ल	बि	ए	म	र	श्री	थी	

राग परज

आरोह-अवरोह :—त्रिं सा ग, ग म् घ् नि सा, निद्रिं निसां नि ष्प ^{म्} ऽ गमग, म् ग रि
जाति :—श्लोडय वक्र सम्पूर्ण ।

मंड :—मन्द्र निपाद और मध्य तीव्रतर मध्यम । द्रष्टव्य :—विशेष विवरण ।

श्रंश :—पूर्वांग में गान्धार और उत्तरांग में निषाद ।

उपारा :—ऋषभ, धैवत ।

न्यास :—गान्धार, पञ्चम ।

श्रपन्यास :—गार षड्ज ।

विन्यास :—मध्य षड्ज ।

मुख्य श्रंग :—द्रिं सां द्रिं निसां ध्पध्म ^{म्} ऽ गमग ।

समय :—शेष रात्रि ।

प्रकृति :—धंचल ।

विशेष विवरण

स्थूल दृष्टि से परज की स्वरावलि और वसन्त की स्वरावलि एक-सी दिखाई देती है। दोनों में 'द्रिं' कोमल और दो मध्यम लगते हैं। स्वरावलि की समानता होने पर भी दोनों राग अपने स्वजन से भिन्न हैं। यदि स्थूल मान से वसन्त और परज की भिन्नता दिखानी हो तो यो कह सकते हैं कि वसन्त के स्वर विळम्बित गति, मीड, दीर्घ-उच्चार से प्रयोग में लाये जाते हैं, और परज में भीड रहित स्वरों के द्रुत उच्चार किये जाते हैं ।

परज के स्वरों-उच्चार की एक विशेष चाभी यह है कि उसके स्वर कालिङ्गवा के सदृश उच्चारि जायें, यानि प ऽ म् ग म ग, म् प ध् म्प ऽ ग म ग, द्रिं सां द्रिं नि सां, नि द्रिं सां द्रिं नि सां ऽ नि ष प, ध् प ध् म प ऽ ग म ग, म् ग रि सा । 'ध् प ध् म् प' में यो धीम मध्यम वा भी उचोग होता है। इस प्रकार की स्वरावलियों के श्लोडयार से परज का भविर्भाव होगा ।

बसन्त में 'मू घू सां ऽ नि घू ऽ प इन स्वरावलिओं के दीर्घान्वार से राग का दर्शन होता है। ध्यान रहे कि परब में कमी भी 'मू घू सां ऽ मू घू रि' नि घू ऽ प', ऐसे दीर्घान्वार से स्वरों का प्रयोग न किया जाय, अतिवृत्त मू घू नि-सां, नि रि' सां रि' नि सां ऽ नि घू प, घू प घू मू ऽ गमग, यो द्रुतगति से बर लिये जायँ। पूर्वांग में

'मू ग मू ऽ ग' यो 'मू ग' की ओड़ी जैसे बसन्त में दुहरायो जाती है यैनी परब में न दुहरायो जाय, और उसके स्थान पर 'प ऽ ऽ ग म ग, घू प ऽ गमग, घू प घू मू प ऽ गमग, यो लिख जाय। इस 'प ऽ ग म ग' या 'घू प ऽ ग

म ग' में अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में लिखा हुआ तीव्रतर 'मू' रहता है। 'नोटेशन' में इसे ठीक से नहीं दिखा सकते। इसलिये 'प' के सामने लगे हुए अवग्रह के ऊपर तीव्रतर मध्यम दिला दिया गया है। साथ ही सामान्य मू मग, बसन्त में यह जो

छलिवांग का किंचित् आभास दिखाया जाता है, परब में इसका समूचा त्याग होगा। परब में जब भी शुद्ध मध्यम, ऊपर प्रयोग करना होगा 'प घू मू प ऽ ग म ग' यो ही किया जायगा। बसन्त के अवरोह में धैवत की दीर्घ करने के कारण निषाद दुर्बल शैलता है, परब में धैवत की श्रेयशा निषाद कुछ दीर्घ रहता है। परब का सामान्य आरोह अवरोह निम्नेक है :-

निसाग, भू घू नि सां, सां नि घू प म ग ग रि सा अथवा म ग रि सा नि - - - - -
 'प ऽ मू ग म ग' यह टुकड़ा, विहाग, पूर्वा और परब तीनों में प्रयुक्त होता है, किन्तु तीनों रागों में इसके प्रयोग और लकार का दग गिराळा है। यथा:-

सा	प	म	प	प					
प	-	मू	ग	म	ग				विहाग
सां		रि							पूर्वा
प	-	मू	ग	म	ग				परब
		मू							
		प	ऽ	गमग					

परब के मिला मिला पदों की रचना, ठनकां उठाव, और इस राग के उत्तरगि-चलन को देखते हुए, मन्द्र-निषाद और तीव्रतर मध्यम दोनों को ग्रह का स्थान देना उचित है।

इस राग का साग चलने तार मध्य स्थान में और मध्यद्रुतगति में ही होता है। मन्द्र स्थान, विलम्बित-गति, भीड, स्वरा-दोलन आदि सर्वथा त्याज्य है।

राग परज

सुक्त भालाप

(१) सा, ध्वम्प ^{म्} ऽ ऽ गमग, सादिनिषा ^{म्} पधम् ^{म्} ऽ ऽ गमग, निषाग, प ^{म्} ऽ ऽ गमग, ध्वम्प ^{म्} ऽ ऽ

गमग, सादिनिषा ग ऽ गमग, गदिषा ।

(२) दि । निषा ग, ध्वम्प ^{म्} ऽ ऽ गमग, सान्दिषा ऽ पम्प ^{म्} ऽ ऽ गमग, सान्दिषादि ग ऽ गग

गम्पम्प ^{म्} ऽ ऽ गमग ऽ गदिषा ।

(३) सादिसादिनि ऽ ऽ सादिग, पध्वप् ^{म्} प ^{म्} ऽ ऽ गमग, निषादिषा निषाग ऽ सागमग गम्प ^{म्} ऽ ऽ गमग,

गमग सागमप ऽ ऽ मध्वधम ^{म्} ऽ ऽ गमग, म्गगसागमप ^{म्} ऽ ऽ ध्वप् ^{म्} ऽ ऽ गमग ऽ सान्दिषामग ^{म्} ऽ पम्प ^{म्} ऽ ऽ गमग,
ग्गदिषा ।

(४) मध्व ^{म्} ऽ ऽ गमग, गमगप ^{म्} ऽ ऽ गमग, साग साग गप ^{म्} ऽ ऽ गमग, निषा साग साग गम्

गम् ^{म्} ऽ ऽ गमग, गम गग मध्व पध्व ^{म्} मप ^{म्} ऽ ऽ गमग, निषानिदि सदिनिषा, गमगप मध्वम ^{म्} ऽ ऽ गमग,

दिनिषा गसाग मगम पम्प ध्वधमप ^{म्} ऽ ऽ गमग, ग्गदिषा ।

(५) निषाग ^{म्} ऽ मध्वनि ^{म्} ऽ ध्वधमप, ध्वध्वमप नि ^{म्} ऽ ध्वध्वप, दिसादिषा ^{म्} ऽ ध्वध्वप, ध्वम् ^{म्} ऽ पध्वनि ^{म्} ऽ ध्वध्वप,

ध्व^{म्}ध्व^{म्} ऽऽ गमग, सागम^{म्}ध्व^{म्}ध्व^{म्} ऽऽ गमग, म्ग^{म्}ध्व^{म्}ध्व^{म्} नि ऽऽ ध्व^{म्}ध्व^{म्}, निताग^{म्} नि ऽऽ ध्व^{म्}ध्व^{म्} ऽऽ म्गमग^{म्} ऽऽ

ध्व^{म्}ध्व^{म्} ऽऽ म्ध्व^{म्}नि ऽऽ ध्व^{म्}, ध्व^{म्} ऽऽ गमग ऽऽ म्गद्वि^{म्}सा ।

(६) द्वि^{म्}सा ग ऽ म्ध्व^{म्}नि ऽ पम्ध्व^{म्} नि, ध्व^{म्}ध्व^{म्} ऽऽ गमग ऽ नि, ध्व^{म्}ध्व^{म्} ऽऽ मगमसाग^{म्} ऽऽ गमनि,

साद्वि^{म्}सा ऽ पध्व^{म्} ऽ ध्व^{म्}ध्व^{म्} नि, द्वि^{म्}सानि^{म्}सा ऽ ममगसाग^{म्} ऽ ध्व^{म्}ध्व^{म्} ऽऽ नि, ध्व^{म्}नि ध्व^{म्}नि पध्व^{म्} ध्व^{म्} म्ध्व^{म्} म्ध्व^{म्} गमग,

साग साग गम गम म्ध्व^{म्}ध्व^{म्} म्ध्व^{म्} म्ध्व^{म्} नि ऽऽ ध्व^{म्}ध्व^{म्} ऽऽ गमग, साद्वि^{म्}सा ऽ पम्ध्व^{म्} ऽ साद्वि^{म्}सा^{म्} ऽ

ध्व^{म्}ध्व^{म्} ऽऽ गमग, नि ऽ ध्व^{म्}ध्व^{म्} ऽऽ गमग, सादि^{म्} ऽऽ ध्व^{म्}ध्व^{म्} ऽऽ गमग, गम्ध्व^{म्}सादि^{म्} ऽ ध्व^{म्}ध्व^{म्} ऽऽ गमग, निध्व^{म्}

सादि^{म्}सा^{म्} नि ऽऽ ध्व^{म्}ध्व^{म्} ऽऽ गमग, सागमग^{म्} ऽ गम्ध्व^{म्} ऽऽ ध्व^{म्}ध्व^{म्} ऽऽ ध्व^{म्}नि^{म्}सा^{म्} न ऽ ध्व^{म्}ध्व^{म्} ऽऽ गमग, मग^{म्} ऽ पम्^{म्} ऽ

ध्व^{म्} ऽ सादि^{म्} ऽ ध्व^{म्}ध्व^{म्} ऽऽ गमग ऽऽ म्गद्वि^{म्}सा ।

(७) नि^{म्}साग^{म्} ऽ म्ध्व^{म्}नि ऽ नि^{म्}सा^{म्} न ऽ द्वि^{म्}सादि^{म्}सा^{म्}, द्वि^{म्}सा ग ऽ ध्व^{म्}ध्व^{म्} नि ऽ द्वि^{म्}सा^{म्} न ऽ द्वि^{म्}सादि^{म्}सा^{म्},

साद्वि^{म्}सा ग ऽ पम्ध्व^{म्} नि ऽ साद्वि^{म्}सा^{म्} न ऽ द्वि^{म्}सादि^{म्}सा^{म्}, द्वि^{म्}सानि^{म्}सा^{म्} ऽ द्वि^{म्}सानि^{म्}सा^{म्}, ध्व^{म्}ध्व^{म्} नि ऽ ध्व^{म्}ध्व^{म्}, द्वि^{म्}सा^{म्}

द्वि^{म्}सा^{म्} ऽ द्वि^{म्}सादि^{म्}सा^{म्} ऽ ध्व^{म्}ध्व^{म्} ऽऽ पम्ध्व^{म्} गमग, साग साग गमग^{म्} म्ध्व^{म्}ध्व^{म्} ऽऽ गमग ऽऽ म्गद्वि^{म्}सा ।

(८) द्वि^{म्}सानि^{म्}सा^{म्} ऽ ध्व^{म्}ध्व^{म्}नि^{म्}सा^{म्} ऽ द्वि^{म्}सादि^{म्}सा^{म्} न ऽ गम गम द्वि^{म्}सा^{म्} ऽ साद्वि^{म्}सादि^{म्}सा^{म्} नि^{म्}सा^{म्} नि^{म्}सा^{म्}

ध्व^{म्}नि ऽ पध्व^{म्} ध्व^{म्}ध्व^{म्} गमगमद्वि^{म्}सा, साद्वि^{म्}सा गमग म्ध्व^{म्}ध्व^{म्} पध्व^{म्} ध्व^{म्}नि^{म्}सा^{म्} नि^{म्}सा^{म्} साद्वि^{म्}सा^{म्}, साद्वि^{म्}सा^{म्} साद्वि^{म्}सा^{म्}

नि^{म्}सा^{म्} ऽ पध्व^{म्} ध्व^{म्}ध्व^{म्} म्ध्व^{म्} ऽ गमग गमग साग ऽ, साद्वि^{म्}सा गमग म्ध्व^{म्}ध्व^{म्} पध्व^{म्} ध्व^{म्}ध्व^{म्} ऽऽ गमग ऽ म्गद्वि^{म्}सा ।

राग परज

सुक्त ताने

त्रिशागग मधुनितां मधुमूर गमगग मगदिता । पध्वर्च् प गमगग मगमगदिता, त्रिशागग मधुमधुमधुमूर गमगग
 मगदिता, गमग गमग पध्वर्च्मूर गमगग मगदिता । त्रिशागग शागमूर् राम् प पध्वर्च्मूरमगगग मगदिता, मगग मगग
 पध्वर्च्मूर गमगग, गम गप मधु पध्वर्च्मूर गमगग, शागमग गमपमू, पध्वर्च् गमगग मगदिता । त्रिनिनि सासता गग
 मग मग मगदिता, मधुनितां धुनितांदि^१ नितांघनि पधमूर गमगग मगदिता । मूय पम् ध्व निघ् तांनि दि^१तां सांनिवप
 पध्वर्च् गमगग मगदिता । त्रिशागग धुनितांदि^१ सांनिघ्व पधमूय गमगग मगदिता, गमग गमग धुनिघ् धुनिघ् नितांनि
 नितांनि तांदि^१तां सांदि^१तां नितांनितां धुनिघ्नि पध्वर्च् मधुमूर गमगग मगदिता । मधुमूय गग मगदितात्रिशा,
 सांतांनि निऽदि^१सांनिघ्वमग, पध्वर्च्मूर गमगग मगदितात्रिशा । सायग गपमू मध्वर्च् पनिघ् च्छानि निदि^१तां सांदि^१तांदि^१
 सांनिघ्वमूय पधमूय गमगग मगदिता । मगदितात्रिशा सांनिघ्वमूय गमगग मगदितात्रिशा । त्रिशात्रि त्रिशात्रि गमग गमग
 मूयमू मूयमू पध्वर्च् पध्वर्च् मूयमू मूयमू गमग गमग, नितांनि नितांनि च्छनिघ् च्छनिघ् पध्वर्च् पध्वर्च् मूयमू मूयमू गमग
 गमग सादि^१तां सांदि^१तां नितांनि नितांनि च्छनिघ् च्छनिघ् पध्वर्च् मूयमू मूयमू गमग गमग मगदितात्रिशा । सांतांदि^१
 सांनिघ्वर्च् पधमूय गमगग, सांनिदि^१तां सांनिघ्वर्च् पधमूय गमगग सांदि^१तां सांदि^१नितां पधमूय गमगग, सांदि^१तां
 दि^१तांनितां सांदि^१सांनिघ्वर्च् पधमूय गमगग मगदिता, त्रिशागग पध्वर्च्नितां सांदि^१तांनि पधमूय गमगग
 मगदिता ।

तानं

४	५	०	१२									
१)	मृध्	निषा	- ध्य	मैं	ऽ	क्यो	ऽ	•	•	•	•	•
२)	मृध्	निषा	रि'सा	- नि	ध्य	मैं	क्यो	॥	॥	॥	॥	॥
३)	मृध्	निषा	सार्दि	सार्दि	निषा	- नि	ध्य	॥	॥	॥	॥	॥
४)	मृध्	निषा	धनि	सार्दि	निषा	- नि	ध्य	॥	॥	॥	॥	॥
५)	निषा	- नि	ध्य	पध्	पध्	म्य	गम	ग -	क्यो	॥	॥	॥
६)	म्य	रिषा	निषा	गम्	धनि	सा -	- मैं	- -	क्यो	॥	॥	॥
७)	सार्दि	ध्य	म्य	रिषा	मृध्	निषा	- -	मैं	॥	॥	॥	॥
८)	ध्य	धम	व -	- म्	गम	ग -	म्य	रिषा	॥	॥	॥	॥
९)	पध्	पध्	म्य	म्य	गम	ग, म्	म्य	रिषा	॥	॥	॥	॥

१०)											१३					
सांदि'	सांदि'	निसा'	निसा'	ध्नि	ध्नि	पध्	मध्	"	"	"	"	"	"	"	"	
सांदि'	सां,नि	सांनि	ध्नि	ध्, प	ध्प,	मध्	म, ग	मग	गम	मग	दिसा	क्यो-	गई	बध्	ना-	
१२)	ध्म	प, ध	मध्	निध्	ध, नि	ध्	ध्म	प, नि	धध्,	सांनि	नि, दि'	सांसां,	दि'नि	नि,नि	ध्ध,	धम
प, प	मध्,	पम	ग म	ग -	- म	मग	दिसा	क्यो	ऽ	क्यो	ऽ	क्यो-	गई,	बध्	ना-	
१३)	सांदि'	सांनि,	निसां	निदि'	सांनि,	ध्नि	ध्सां	निदि'	सांनि	मध्	मनि	ध्सां	निदि'	सांनि	सांदि'	सांनि
ध्प	पध्	मध्	गम	ग -	- म	मग	दिसा	क्यो ऽ	गई	बध्	ना ऽ	बध्	ना ऽ	बध्	ना ऽ	
१४)	सांदि'	सां,सां	दि'सां,	सांदि'	सांदि'	निसां	निदि'	निसां	ध्नि	ध्, ध्	निध्,	नि	ध्सां	निदि'	सांदि'	निसां
मध्	म, म	ध्म	मनि	ध्सां	निदि'	सांदि'	निसां	सांदि'	सांनि	ध्प	पध्	मध्	गम	ग -	बध्	
- ना	- -	पा •	- -	नी -	- -	बध्	- ना	- -	पा -	- -	नी -	- -	बध्	- ना	- -	
१५)	सांदि'	सांदि'	निसां	निसां	निदि'	सांदि'	निसां	निसां,	ध्नि	ध्नि	निसां	निसां	सांदि'	सांदि'	निसां	निसां
ध्नि	ध्नि	मध्	मध्	ध्नि	ध्नि	निसां	निसां	सांदि'	सांदि'	निसां	निसां	ध्नि	ध्नि	पध्	पध्	
मध्	मध्	गम	ग, ध्	पध्	मध्	गम	ग, ध्	पध्	मध्	गम	ख -	क्योऽ	गई	बध्	नाऽ	

(१३७)

राग परज

धमार

गीत

स्थायी—ठाळ गुल्लाळ जिन डारो, बरबोरी न करो खुनदन

छोरो बी हाय हमारो ॥

अन्तरा—झकझोये न मुक जाय बैया,

छुट जाय कचवारो, राम सखे थारे पैया परत

मेरो घूँषट पट न उपाये ॥

स्थायी

X		•	६	•	११	•							
सं	-	नि	व्	प	-	प	व	प-म्	ग	म	ग	-	-
वा	ऽ	ल	गु	ला	ऽ	ळ	जि	नऽ•	बा	•	री	ऽ	ऽ
सा	त्रि	सा	ग	-	म्	घ्	नि	सां	दि	नि	सां	नि	घ्
व	र	बी	री	ऽ	न	क	रो	य	इ	न	•	द	न
पू	दि	सां	दि	नि	सां	नि	म्	घ्	नि	घ्	सां	म्	घ्
छो	•	रो	बी	हा	•	य	ह	मा	•	रो	•	•	•

अन्तरा

म	ग	म्	प	-	प	म्	घ्	नि	नि	नि	नि	सां	नि
स	क	श्री	रो	ऽ	न	ध	र	क	बा	(नि	घ्	•	या
										ऽय	बै		

	५						१३									
५)	सादि ^१	निसा ^१	ध्नि	पध्	म्य	गम्	म्य	रिसा	क्यो	गई	क्यो	गई	क्यो	गई	ब्रमु	नाऽ
५)	सानि	नि,दि ^१	सांसां,	निध्	ध्, सां	निनि,	पम्	म,ध्	पप,	निध्	ध्,	सानि	नि,दि ^१	सांसां	सानि	ध्
पध्	म्य	गम	ग -	म्य	म्य	रिसा	मैं	क्यो
६)	धप	-ध्	पध्	म्य	गम	ग -	दि ^१ सां	- दि ^१	सादि ^१	निसां,	ध्प	- ध्	पध्	म्य	गम	ग -
म्य	रिसा	निसा	गम	ध्नि	सां -	निसा	गम	ध्नि	सां -	निसा	गम	ध्नि	स -	ब्रमु	नाऽ	
७)	म्य	ध्,म्य	पध्	पध	म्य	गम	ग -	निसां	दि ^१ ,नि	सादि ^१	सादि ^१	सानि	ध्प	पध	म्य	गम
ग -	-म्य	म्य	रिस	क्यो	गई	ब्रमु	ना •	क्यो	गई	ब्रमु	ना •	क्यो	गई	ब्रमु	ना •	
८)	पध	म्य	गम	ग -	-म्य	म्य	रिसा,	सादि ^१	निसां	ध्नि	पध्	म्य	गम	ग -	-म्य	म्य
रिसा	मैं	क्यो	गई	ऽऽ	ऽऽ	मैं	क्यो	गई	ऽऽ	ऽऽ	मैं	क्यो	गई	ब्रमु	-ऽऽ	

राग ललित

आरोह ऋवरोह—निर्दिगम् धनितां निषम् मगहिता । द्रष्टव्य—विशेष विवरण

जाति—पाडव पाडव ।

मह—मद्र निपाद और मध्य तीव्रतर मध्यम ।

अश—शुद्ध मध्यम, अनिर्वायं सद्बर्तौ वीत्र मध्यम । उपास पूर्वाङ्ग म गा बार, उत्तराङ्ग में धैवत ।

न्यास—शुद्ध मध्यम ।

विन्यास—पड्ज ।

मुख्य अंग—निर्दिगम मऽम ।

प्रकृति—गभीर ।

समय—शेष रात्रि ।

विशेष विवरण

ललित एक प्रसिद्ध और मधुर राग है। इसमें ऋषभ धैवत कोमल और स्तूत्र रूप से दो मध्यम का प्रयोग होता है, ऐसा माना जाता है। पञ्चन वा समूचा त्याग होने से, इस राग के प्रयोग के समय तानपूरे पर शुद्ध मध्यम ही मिला रहेगा। इसलिये शुद्ध मध्यम से पट् भुक्ति अ तर से सवाद करने वाला कोमल 'ध' इस राग में प्रयुक्त होता है। तदत् म म न' करते समय शुद्ध म' से एक धुक्ति के अन्तर पर स्थित तीत्र 'म' का प्रयोग हो जाता है। और 'मू ग रि सा' अथवा 'मू धू सा' ऐसी अन्त क्रिया करते समय शुद्ध म यम से दो ध्रुवनन्तर पर स्थित तीव्रतर मध्यम सद्बर्तु रू से जगता है—स्वरो के परस्पर सवाद सम्बन्ध के आधार पर ऊपर जिले वर अनास स्व भाविक-रीसग लग जाया करते हैं।

भारत भर में सभी हिन्दू मुख्यतः गायक बादक जो रुशल अङ्ग से गाते बजाते हैं, वे ललित में कोमल धैर्य का प्रयोग करते हैं। हमारी परम्परा में हमें ऐसे 'भू द' और 'बमार' की भी शिक्षा मिली है जिनमें धैवत कोमल ही बरता गया है, फिर भी भारत में कहीं कहीं कुछ 'प्रुव' गायक शुद्ध धैवत ही प्रयोग में लाते हैं। पञ्चन की ओर पचठ (हि। 'कलित पचम' नाम का जो राग प्रचार में है उसमें शुद्ध धैवत का प्रयोग होता है।

x														
			५			०			११					
पू	षा	नि	प	मू	गम	ग	मू	धू	नि	-	धू	सा	नि	
छ	•	ट	बा	ड	•	य	क	च	वा	ड	रो	•	•	
नि	-	द्रि	ग	ग	द्रि-ग	मू	ग	द्रि	सा	द्रि-सा	-द्रि	नि-सा	नि-पू	
रा	ड	म	स	खे	था	री	पै	•	या	पर	•	ने	रो	
पू	द्रि	सा	द्रि	नि	सा	नि	मू	धू	नि	धू	सा-नि	मू	पू	
पू	•	घ	ट	प	ट	न	उ	षा	•	रो	•	•	•	

राग ललित

मुक्त आलाप

(१) सा, नि^{दि}नि^मग^मरि^धम, म^मरु^नग^म ड म ड ग^{रु}म^{रु}रि^ड सा । सा ड नि^ध ड म ड म ड ग^मम^म, म^मध^धसा,

सा^{रि}नि^{सा} ड नि^ध ड म ड म, रि^{रि}सा^{नि}सा ड नि^ध ड म ड म, म^मनि^ध ड म ध सा ।

(२) सा, रि^{रि}सा^{नि}ध ड सा, ड नि^ध म^मम ड सा, सा ड नि^ध सा, सा ड नि^ध म^म ड सा, ध^धम^म ड म ड

सा, म^मनि^ध ड सा, नि^ध ड ध^धम^म ड म^म ड सा, नि^{नि}ध^ध म^धसा, ध^धम^मग^मम सा, रि^{रि}नि^ध ध^धम^म ध^धम

नि नि
ड म ध सा ।

(३) सा, रि^{रि}सा^{नि}ध ड सा ड नि^ध ड म ड म, ध^धम^मनि^ध सा, नि^ध ड म ड म ड नि^{नि}ध^धम^ध

सा, नि^ध ड म ड म ड म^ध ड म ड म, म^धसा ड नि^{नि}सा ।

(४) रि^{रि}सा^{नि}सा ड नि^ध ड म ड म, सा^{सा}नि^धनि ड रि^{रि}सा^{नि}सा ड नि^ध ड म ड म, नि^{नि}ध^धम^ध

ध^धनि नि सा
सा^{सा}नि^धनि रि^{रि}सा^{नि}सा ड नि^ध ड म ड म, म^धध^धम^धसा ड नि^{नि}सा ।

इस राग का दर्शन 'नु रि ग म म् ५ म' इतने ही स्वरों में पूर्ण रूप से हो जाता है। इसकी अभिव्यक्ति के लिए उत्तरांग के किसी स्वर की अपेक्षा नहीं है। ऊपर दिये अक्षरों का उच्चारण होते ही उत्तरांग प्रत्यक्ष हो जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि ललित पूर्वांग प्रधान राग है उत्तरांग प्रधान नहीं। जो रा। जिस अंग में स्थापित होता है, वही उसका प्रधान अंग है, चाहे वह पूर्व हो या उत्तर। पण्डित भतलण्डे ने इस राग को उत्तरांग प्रधान माना है, यद्यपि वह नितसन्देह पूर्वांग प्रधान है, जैसा कि ऊपर यह आये हैं। हाँ, यह दोष रात्रि के समय गाया जाता है, इसलिए उन्हें अपने ही धनाये हुए स्थूल नियम से बाध्य होकर इसे उत्तरांग प्रधान मनना पड़ा हो तो आश्चर्य नहीं है। बालन में तोड़ी, देवगिरि, देशी, भैरव आदि कई ऐसे राग हैं, जो पूर्वांग प्रधान ही हैं और प्रातः काल में गाये जाते हैं।

अपना कोई टॉचा बनाकर, उसी में सब रागों को टालन वा दत्त करने के साथ, राग के निजी रूप, प्रकृति, गति, अभिव्यक्ति यादि का विचार करके रागों का रचना में निहित नियमों को खोजना चाहिए, और उन्हें शाब्दिक रूप देना चाहिये। तभी लक्षण और लक्षण का समन्वय हो सकता है। दाख पहले नहीं, क्या पहले है, प्रचार पहले है।

पण्डित भातलण्डे ने इस को मारवा घाट में रखा है। ध्यान रहे, जिस मारवा घाट में शुद्ध मध्यम ही नहीं उससे ललित को समूत बताकर भी इसका वादी स्वर उन्हाने शुद्ध मध्यम ही कहा है। पण्डित भातलण्डे का विचार की असाति आश्चर्य में ललने वाली है, जिसकी ओर हम पाठकों का ध्यान खीचना चाहते हैं। जो मूल में ही नहीं, यह अक्षर में या फल फल में कहाँ से आया ? इससे यह स्पष्ट है कि उनकी घाट व्यवस्था भी असात, असमन्वय अवैज्ञानिक और अपूर्ण है।

'म म् ५ म' या 'ध् म् ५ म' यो दो मध्यमों का सहयोग इस राग की प्रथा जिया है। इस राग का प्रथम स्वर निपाद और तीव्र मध्य है शुद्ध मध्यम इसका ऋष रवर है और तीव्र म' उरुका अनिवार्य सहवर्ती है। न्यास-स्वर भी शुद्ध मध्यम ही है और पञ्च विधा है। इसकी प्रकृति शांत गम्भीर है। शुद्ध मध्यम वा अशक्त, दीर्घाञ्चार और त्रिपुल प्रयोग इस राग में सर्वथा प्रौढ़ गम्भीर भाव को अभिव्यक्त करने वाले तत्व हैं।

इसका आरोहावरोह 'नि रि ग् म् ध् नि सा नि ध् म्-म ग रि सा' होने पर इस राग के चलन में, उसकी आलाप चारी में 'ध् नि सा' कभी नहीं जाते हैं, अतिसु म् ध सा' ही जाना चाहिए। मन्द्र मध्य की आलापचारी में हमेशा 'म् ध् सा' ही होगा। और वहाँ पर 'म' तीव्रतर ही रहेगा। यही बक्ष्य है।

(८) नि ऽ रि नि रि ऽ ग रि ग ऽ म ग म ऽ म् म् ऽ ऽ ऽ म् म् ग ऽ, नि रि रि ग ऽ रि ग ग म ऽ ग म म् म् ऽ

घ् ग नि ः रि ः ग ः घ्
म ऽ ऽ म ऽ म् म् ग ऽ, नि रि रि ग ऽ रि रि ग ग म ऽ म् म् ऽ म् म् ऽ म् म् ग ऽ ग रि म् ग रि ऽ ः ।

नि नि रि नि रि ग ग
(९) नि रि रि ग ऽ नि रि रि ग ग म् ऽ म् ऽ म् म् ग ऽ, नि रि रि ग ऽ म् म् ग रि ऽ रि ग म् म् ऽ

म म् ग
म् म् ग ऽ ग म् म् ऽ घ् म् म् ऽ ग रि म् ग रि ः ।

नि रि
(१०) नि रि रि ग म् म् म्, म् म् म् म् ऽ म् ऽ घ् म् म् म्, ग म् म् म् ऽ म् म् म्, रि ग म्

ग रि ग म्, रि ग ऽ रि ग म् म्, नि रि रि ग ऽ ग म् म् ऽ म्, नि रि रि ग ऽ रि रि ग ग म् ऽ ग ग म् म् ऽ म् म् ऽ म्,

रि
म् म् म् ग म् ऽ ग रि म् ग रि ऽ ः ।

(११) नि रि रि ग म् म् म्, म् घ् ऽ नि घ् म् म् ऽ म्, म् म् ग म् घ् ऽ नि घ् म् म् ऽ म्, म म् ग म् म्

घ् ऽ नि घ् म् म् ऽ म्, ग ग रि म म् ग म् म् घ् ऽ नि घ् म् म् ऽ म्, रि रि रि ग ग रि म म् ग म् घ् ऽ नि घ् म् म् ऽ

रि
म, म ग रि म् ग रि ऽ ः ।

(१२) नि रि रि ग म् घ्, नि रि रि ग म् म् घ् नि घ्, नि घ् नि म् ऽ घ् नि घ्, घ् घ् घ् म् ऽ

नि घ् नि घ् ऽ घ् नि घ्, म् म् म् म् ऽ घ् म् म् म् ऽ नि घ् नि घ् ऽ म् नि घ्, ग रि रि रि ऽ म् ग म् ग ऽ म् म् म् म् ऽ

(५) निद्रिगदि म, रिनि ऽ गदि ऽ गनि ऽ गदि ऽ म, रिस्त्रानिषा गदिम, निद्रि रिग ग ऽ म, निद्रिगि ऽ

ग रि म् ध् सादि
द्रिमम ऽ गदि ऽ म, नि नध् म् ध् सा ऽ गगदिनिद्रि ऽ म, मगदिम ऽ सा निध् म् ध् सा, मगदि निद्रि म,

नि सादि ग रि ग
सानि ऽ नि ध् ऽ सा ऽ, मग ऽ गदि ऽ च, गदि म् गदि ऽ मा ।

नि सा सा दि साग ध् ध् नि नि सा सा दि दि
(६) रिद्रिस निषा गगदिनिद्रि ममगदिग ऽ गदि म, निनिध् म् ध् मा निध् नि रिद्रि गदिषा गगदिनिद्रि ऽ

गग ग रि ध् नि रि रि ङ्ग रि
ममगदिग ऽ गदि ऽ म, म् निनिध् ऽ ध् स सानि ऽ निगगदि ऽ म, म् ध् म् ध् सा ऽ निद्रिनिद्रिगि ऽ गदिम,

ध् रि दि रि ग रि
म् ध् सा सानि निध् ऽ निद्रिमम गदि ऽ म, म् ध् सानि ऽ निद्रिमग ऽ गदि म ऽ, म् म ऽ म् ग ऽ गदिमगदिसा ।

(७) निद्रिम म् म् म् म् म् म् ग, गदि ग म् म् म् म् म् म् म्, निद्रिम

म् म् म् म् म् म् म् ग, गदिगम म् म् म् म् म् म् म्, रिद्रिस, निद्रिम म् म् म् म् म् म् म्, रिद्रिसानि

गगदिनिद्रि ममगदिग ऽ म् म् म् म् म् म् म् म्, रिद्रि गदि मम म् म् म् म् म् म् म्, ग ऽ गदि ऽ

म ऽ म् ग ऽ म् म् म् म् म् म् म्, निद्रिगदि ऽ रिद्रिमग ऽ गममम ऽ म् म् म् म् म् म् म् म् म् म् म् म् म् म् म् म् म्

गदिमग दि ऽ सा ।

नि ङ्ग रि ङ्ग ग ङ्ग ग ङ्ग म् ङ्ग ध्
निङ्गा, गगदि दिऽऽग ममग गऽऽम म्मम मऽऽम् धधम् भऽध् निनिध् ध्ऽऽनि साऽनिता,

निगगऽऽ दि मगऽ गमम्नऽ मधधम्नऽ धनिनिध् ऽ साऽ निता, निगगदि दिनिऽ दिममग गदिऽ

गमम्न मगऽ म्मध्न् मवऽ धनिनिध् धम्नऽ ध्नासानि निध् ऽ साऽनिता, नि दि' निध्म् ऽ मग म ध्

ग नि
म्ऽ नऽ म्ऽ म्णऽ ग दि म्गदि ऽ सा ।

(१५) निदि' म्ध्वाऽ निता, निध् ऽ निम् ऽ निध् ऽ साऽ निता, नि दि ग म ध् नि
निध् साऽ निता, साऽ निध् म् ध् साऽ निता, साऽ सानिध् साऽ नानिध्म् ऽ साऽ सानिध्म् मगदिवा साऽ निता,

निध् साऽ निता, साऽ निध् म् ध् साऽ निता, साऽ सानिध् साऽ नानिध्म् ऽ साऽ सानिध्म् मगदिवा साऽ निता,

ग दि
निदि' निध्म्ऽ नऽ गदिमगदिऽ वा ।

(१६) साऽ दि' दि' सानिवाऽ निऽनिध्, साऽ दि' दि' सानिवाऽ साऽ सानिध्निऽ निऽनिध्; साऽ निदि' साऽ

निऽनिध्, साऽ ध्नानिऽ निदि' साऽ निऽनिध्, साऽ म्निध् ऽ ध्नानिऽ निदि' साऽ निऽ निध्, साऽ ममम् ऽ म्धम् ऽ

म्धिध् ऽ ध्सानिऽ निदि' साऽ निऽनिध्, म् ध् साऽ निता; निदि' साऽ निऽनिध् ऽ, ध्नानिदि' साऽ निऽनिध् ऽ,

म्निध्साऽ निदि' साऽ निऽनिध्, म्ध् म्निध्साऽ निदि' साऽ निऽ निध्, म् ध् साऽ, निदि' निध्म्ऽ नऽ, गदिमगदिऽ वा ।

ग म् घ् ङ् म् ग म् ङ् ङ् म् ग
ध्रुव् मऽ निधनि ध्रुऽ निऽ व्, निधनि ध्रुऽ ध्रुध्रु मऽ; ध्रुऽ म्निऽ ध्रु, निधनि ध्रुऽ ध्रुध्रुऽ म्

ग ग म् घ् ङ् म् ग ग रि नि
ममम् मऽ ध्रुध्रु मऽ निधने ध्रुऽ निऽ ध्रु, निधनि ध्रुऽ ध्रुध्रु म् म् मम म् मम गऽ गदिग रिऽ

रि ग ग म् घ् ङ्
मम गऽ ममम् म् म् ध्रु म् म् निधनि ध्रुऽ निऽ ध्रु, ध्रुध्रु निनिध म् ध्रु निऽ ध्रु, म्मम ध्रुध्रु निनिध्रु

ध्रु निऽ ध्रु, ममम म्मम ध्रुध्रु निनिध म् ध्रु निऽ ध्रु, गगदि ममम म्मम ध्रुध्रु निनिध म् ध्रु निऽ ध्रु,

निध्रुगदिऽ रिगमगऽ म्मममऽ म्मध्रुऽ म्मनिध्रुऽ निऽ ध्रु, म्ध्रुनि म्निध्रु म्मध्रु म्ध्रुनि म्निध्रु, गमम

ममध्रु म्ध्रुनि म्निध्रुऽ, निध्रुऽ ध्रुऽ म्ममऽ म्ममऽ गगऽ गदि म्गदिऽ ङ्।

रि ग म् नि
(१३) निऽ रि गम ध्रु नि ध्रु, रिनि गदि मग म्म ध्रुध्रु निध्रु निऽ ध्रु, रिनिनि गदि

मगम म्मम ध्रुध्रु निध्रुध्रु निऽ ध्रु, रिनिगदिऽ गदिनाऽ म्ममऽ म्मध्रुऽ ध्रुध्रुध्रु निऽ ध्रु,

ग म् म् घ् नि ध्रु
मिम रिऽ रिम गऽ गम् म्मऽ म्मऽ म्मऽ म्मऽ निध्रुऽ निऽ ध्रु, ध्रुध्रुऽ म्ममगऽ मममगऽ गदि म्गदिऽ ङ्।

नि
(१४) निरिग म ध्रुनि म्ध्रु ङ् निऽ, निरिऽ नि रिगऽ रि गमऽ ग म्मऽ म म्ध्रुऽ म् ध्रु

ध्रु निऽ, निरिगदि रिगमग गममम म्मध्रु म्ध्रुनिध्रु ङ् निऽ, निरिगदिऽ रिगमगऽ गमममऽ म्ध्रुनिध्रु

ध्रु ङ् निऽ, रिनि गदि मग म्म ध्रुध्रु निध्रु ङ् निऽ, रिनिनि गदि मगम म्मम ध्रुध्रु निध्रु ङ् निऽ

(१४८)

राग ललित

। विलम्बित खवाल—एकताल

गीत

स्वाधी—रैन का सपना,

कासे वहूँ मोरी आली ।

अन्तरा—सोवत सोवत आलि तुजी जव,

धोउ न पाओ अपना ॥

स्थायी

	१		११
			- ग म् ग ऽ रे • न
x	•	y	
म् --- ना ऽ ऽ ऽ	म --- म् • ऽ ऽ ऽ ऽ •	ग ग ममभग --- रि • • • ऽ ऽ ऽ •	रि - म् ग रि • ऽ • • •
•	१	११	
म् M हूँ M	म --- म् • ऽ ऽ मो •	म् ष नि ष ष म् • री • • ऽ आ ऽ • • ऽ	म म म ग - म म री • • • ऽ • •

राग ललित

त्रितल

गीत

स्थायी—विद्यु विद्यु करत पपीररा,

उड़ री कोपलिया कवन देस मेरे रिया को निउन कब होवे ।

अन्तरा—सिंगर सिंगर-दादुर भोजे, सुखा बोले बन बन के ।

आवन सुनी प्रीवन मन रग की, मगव भए सब पर के बियरा ।

स्थायी

				१	०				२२						
								ग	रि	ग	मू	ग	रि	रि नि	रि
								पि		पि	पु	क	र	त०	प
म	-	-	म	मू	-	म	-	मू	पू	मू	नि पू	सां	सां	सां	-
पी	८	८	ह	रा	८	०	८	उ	ब	रि	को	य	ळि	या	८
नि	नि	धू	नि	म	प	म	ग	मू	पू	भू	नि धू	सां	सां	पू नि	रि
क	ब	न	दे	०	स	मो	रे	रि	या	को	मि	ळ	न	०	०
						ग									
नि	पू	मू	पू पू	मू	-	म	ग								
क	ब	०	हो	८	०	बे									

- - अनुरा

४

निष् - निम् - धू	०	५	५
सो • ऽ • • • ऽ	०	५	५
सिं सां	०	सां	सां
व व	०	धो	व
		निमां - - - नि रिं -	निमां - - - नि रिं -
		• • • ऽ ऽ • • • ऽ	• • • ऽ ऽ • • • ऽ

६

रिं सां नि - - -	६	११	११
• • • • ऽ ऽ ऽ	६	११	११
गं	६	सां	सां
- रिं गं रिं	६	की	की
ऽ ख • ख	६	निमां • • - स रिं • • -	रिं सां निष् - नि
		• • ऽ ऽ • • • ऽ ऽ	धुम् धुम् - ष
		• • • ऽ • • • ऽ	• • • • ऽ •

४

मम् मम् - - - म्	४	५	५
• • • • ऽ ऽ •	४	५	५
ग	४	धू	धू
मम् मग - - -	४	निम् - - - धू	सां
• • • • ऽ ऽ •	४	५ को उ ऽ ऽ • न ऽ ऽ •	पा
			सां नि रिं -
			यो ऽ • • ऽ
			• • • ऽ ऽ ष प

११

नि - - रिं नि - - रिं निष् धू - - नि	११	११	११
• • • • ऽ • • • ऽ • • • ऽ • • • ऽ	११	११	११
धू - - नि धुम् म् - - ष म - - धू	११	११	११
• • • • ऽ • • • ऽ • • • ऽ • • • ऽ	११	११	११
		मम् म - - म् म - - म् म	
		• • • • ऽ • • • ऽ • • • •	

४

मम् मग - - मम्	४	५	५
• • • • ऽ • •	४	५	५
धू - - नि धू - धू म् - ग	४	रिं सां नि रिं म	
• • • • ऽ • • • ऽ • • • ऽ • • • ऽ	४	वा • • • • ष प	

वर्त

x	५						१३								
१)					रिग्	मग	रिग्	वि	डु	वि	डु	र	ट	व	प
२)			त्रिग्	गम	मग	रिग्	"	"	"	"	"	"	"	"	"
३)			त्रिग्	गम	मग	रिग्	"	"	"	"	"	"	"	"	"
४)			त्रिग्	गम	- म	मग	रिग्	"	"	"	"	"	"	"	"
५)		त्रिग्	गम	षट्	मम	मग	रिग्	"	"	"	"	"	"	"	"
६)	त्रिग्	गग्	रिग्	मग	गम	मम	गमग	रिग्	"	"	"	"	"	"	"
७)	त्रिग्	गग	रिग्	मम	गम	मम	गमग	रिग्	"	"	"	"	"	"	"
८)	गग्	त्रिग्	मग	रिग्	मम	गम	गमग	रिग्	"	"	"	"	"	"	"
९)	त्रिग्	रिग्	गम	मष	षट्	मम	गमग	रिग्	"	"	"	"	"	"	"

X	५							१३								
१०) रिगि	गि	गम	गमग	मम्	मम्	गमग	रिषा	,	"	"	"	"	"	"		
११) निरि	गम	गरि	रिग	मम्	मग	गमग	रिषा	"	"	"	"	"	"	"		
१२) गि	म	गा,	मम	म, म	मम्	मग	रिषा	"	"	"	"	"	"	"		
१३) गग	रिग	रिषा	मम्	मम्	मग	मग	रिषा	"	"	"	"	"	"	"		
१४) म्	म, म्	मम्	गमम	रिग, गे	गरि,	रिगग	रिषा	"	"	"	"	"	"	"		
१५) रिगग	रिग	गरि	निरि,	गमम	ग, म	मग,	रिग,	मम्	म, म्	मम्,	गम,	मम्	म, म्	मम्, म		
१६) म्	ग	मम्	गम	गमग	रिग	मग	रिषा	वि	यु	वि	यु	"	"	"		
१७) निरि	गम	षा	- नि	मम्	मग	रिषा	निषा	"	"	"	"	"	"	"		
१८) निरि	गम	षा	षानि	मम्	मग	रिषा	निषा	"	"	"	"	"	"	"		
१९) निरि	गम	- म	मग	रिषा	निग	मम्	निषा	- रि	षानि	मम्	मग	रिषा	गरि	गम्	गरि	निदि
													विद्यु	विद्यु	कर	वप

राग ललित

धमार

गोत

स्थायी—लाल हो कैसे जाड काली निकली नन्द की चोरी ।

अन्तरा—वा दिन को बर मरे हिरदिया (हृदय) में ता दि बाँह मगोरी ॥

स्थायी

X			°		३		°		११	°			
म	१	१	म	१	म	म	म	म	म	म	म	म	म
के	५	५	से	५	जा	उं	आ	ली०	००	५	नि	क	सी
जि	मि	नि	म	ध	म	ग	म	ग	ग	५	नि	५	ग
म	म	न	की	०	१	००	यो	१	री	५	५	५	हो

अन्तरा

म	ध	१	सां	१	सां	१	सां	१	१	सां	१	५	१
वा	०	५	दि	५	न	५	की	५	५	५	५	५	५

परिशिष्ट

(१५८)

X														
नि	८	-	दि'	-	ग	दि'	स	-	-	नि	दि'	नि	५	
में	८	८	रे	८	दि	दि	या	८	८	में	०	०	०	
म	५	म	य	-	म	-	सां	-	-	सां	-		-	
०	०	०	०	८	०	८	ता	८	८	दि	८	न	८	
नि	-	दि'	नि	ध्	म्	ध्	ग	म	ग	-नि	-दि	ग	म	
षां	८	०	ह	म	रो	०		०	रो	था	८छ	रो	०	
